दुःख द्वारा अचम्भित

मसीही जीवन में पीड़ा और मृत्यु की भूमिका

संशोधित और विस्तृत

आर.सी. स्प्रोल

अनुमोदन

"कलीसिया के लिए यह एक सच्चा उपहार है जब एक अनुभवी ईश्वरविज्ञानी, जिनके पास वर्षों के व्यक्तिगत अनुभव और बाइबलीय अध्ययन से प्राप्त अन्तर्दृष्टि है, दुःख जैसे कठिन विषयों पर शिक्षा देते हैं। इस पुस्तक में आप बाइबलीय दृष्टिकोण की उस बुद्धि को सुसमाचार की अनन्त आशा के साथ पाएँगे जो आपको अपने उद्धारकर्ता में विश्राम लेने में सहायता करेगी, यहाँ तक कि समस्या के समय में भी। मैं इस पुस्तक के नये संस्करण के लिए कृतज्ञ हूँ।"

—पॉल डेविड ट्रिप
अध्यक्ष, पॉल ट्रिप मिनिस्ट्रीज़
फिलाडेल्फिया

"एक कर्क-रोग विशेषज्ञ के रूप में, मेरे पास उन लोगों का ध्यान रखने का सौभाग्य है जो "मृत्यु के घोर अन्धकार की तराई" में से होकर चलते हैं। ऐसे समयों में विश्वास करने वाले लोग स्वयं को मानव अस्तित्व के सबसे कठिन प्रश्नों का सामना करते हुए पाते हैं, अर्थात् दुःख और मृत्यु द्वारा उठाए गए प्रश्न। *दुःख द्वारा अचम्भित* में, आर.सी. स्प्रोल संक्षिप्त में और संवेदनशीलता के साथ उन तीन सत्यों की पुष्टि करते हैं, जिनको मैं सोचता हूँ कि हमें पकड़े रहना चाहिए यदि हम दुःख और मृत्यु के मध्य बने रहना चाहते हैं। पहला है कि दुःख/मृत्यु एक अपरिहार्य *(inevitable)* बुलाहट है; दूसरा, दुःखों में परमेश्वर के सम्प्रभु छुटकारे के उद्देश्य; और तीसरा सत्य, अनन्त जीवन में परमेश्वर और हमारे सह-विश्वासियों के साथ सिद्ध संगति की निश्चयता। मुझे इस पुस्तक के प्रकाशन के विषय में सुनकर प्रसन्नता हुई, और इसे पढ़कर मैं इस बात के लिए पुनः आश्वस्त हुआ कि हम उन लोगों के समान क्यों शोक नहीं मनाते हैं जिनके पास कोई आशा नहीं है।"

—डॉ. जेम्स डब्ल्यू. लिंच जूनियर
चिकित्सा के प्राध्यापक
रुधिरविज्ञान और कर्क-रोग विभाग
यूनिवर्सीटी ऑफ फ्लॉरिडा कॉलेज ऑफ मेडिसिन, गेन्सविल, फ्लॉरिडा

"*दुःख द्वारा अचम्भित* में ऐसा प्रतीत होता है कि जॉन कैल्विन और फ्लॉरेन्स नाइटिंगेल एक साथ मिलते हैं। यह एक अनूठी पुस्तक है, जिसमें एक ईश्वरविज्ञानी और एक पास्टर दोनों के विचार हैं—एक पुस्तक जो दुःख को सीधे-सीधे देखती है और सिखाती, समझाती, चुनौती देती और सान्त्वना देती है। इसकी एक दर्जन प्रतियाँ ले लीजिए, क्योंकि आप इसे किसी ऐसे पीड़ित जन को दे रहे होंगे जो आपके आस-पास है।"

—रेव. जॉन पी. सार्टेल सीनियर

वरिष्ठ सेवक

क्राइस्ट प्रेस्बिटेरियन चर्च, ओकलैण्ड, टेनेसी

दुःख द्वारा अचम्भित

दुःख द्वारा अचम्भित

मसीही जीवन में पीड़ा और मृत्यु की भूमिका

आर.सी. स्प्रोल

मार्ग सत्य जीवन
क्रीष्टीय विचारों का संग्रह

Surprised by Suffering: The Role of Pain and Death in the Christian Life
© 2010 by R.C. Sproul

Previously published as Surprised by Suffering (1988) by Tyndale House Publishers.

Published by Ligonier Ministries
421 Ligonier Court, Sanford, FL 32771
Ligonier.org

All rights reserved. No part of this publication may be reproduced, stored in a retrieval system, or transmitted in any form or by any means—electronic, mechanical, photocopy, recording, or otherwise—without the prior written permission of the publisher, Ligonier Ministries. The only exception is brief quotations in published reviews.

First Hindi Translation and Print 2024
This Hindi edition is issued in arrangement with Ligonier Ministries, USA.
Translated and published in India by 'Marg Satya Jeevan'
for distribution and sales worldwide.
'Marg Satya Jeevan' is a brand of Hodalzo Services Pvt. Ltd. company which exists to print, publish & distribute resources for the Church in India.

Hindi ISBN: 978-81-969627-3-9 (Paperback)
Hindi ISBN: 978-81-969627-6-0 (eBook)

प्रथम हिन्दी अनुवाद एवं संस्करण 2024
'दुःख द्वारा अचम्भित' पुस्तक का हिन्दी संस्करण लिग्नियर मिनिस्ट्रीज़ के प्रायोजन से 'मार्ग सत्य जीवन' द्वारा अनुवादित एवं प्रकाशित किया गया है।

अधिक संसाधनों के लिए *मार्ग सत्य जीवन* की वेबसाइट पर जाएँ:
https://margsatyajeevan.com

मृत जन्मी शिशु,

अलिसा एरिन डिक के लिए,

स्वर्ग में मिलने की आशा के साथ

विषय सूची

प्राक्कथन xi

भाग एक: *मृत्यु तक*

अध्याय एक: दुःख, उलझन और निराशा 1

अध्याय दो: दुःख के मार्ग पर चलना 13

अध्याय तीन: दुःख उठाने का एक वैयक्तिक अध्ययन 25

अध्याय चार: दुःख उठाने का उद्देश्य 37

अध्याय पाँच: अन्तिम बुलाहट 47

अध्याय छः: विश्वास में मरना 57

भाग दो: *मृत्यु के उपरान्त*

अध्याय सात: मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में परिकल्पनाएँ 71

अध्याय आठ: यीशु और मरणोत्तर जीवन 85

अध्याय नौ: मरना लाभ है 103

अध्याय दस: आने वाली बातों का दर्शन 115

निष्कर्ष 133

परिशिष्ट: प्रश्न और उत्तर 135

वचन सूचकाँक 147

विषय सूचकाँक 151

प्राक्कथन

हम में से जो लोग पश्चिमी देशों में रहते हैं वे इतना अधिक आशीषित हैं जिनकी पिछली पीढ़ियों ने कभी कल्पना भी नहीं की होगी। अधिकाँशतः हम अच्छे स्वास्थ्य, सुखदाई जीवनशैली और सुरक्षा का आनन्द उठाते हैं। हम प्रतिदिन अपने अस्तित्व या यहाँ तक कि अपने स्वास्थ्य के प्रति कोई निकटस्थ *(imminent)* जोखिमों का सामना नहीं करते हैं।

परन्तु ये आशिषें हमें सुरक्षा की झूठी भावना में रखती हैं। जब हम कुछ समय के लिए कठिनाइयों से बच जाते हैं, तो हम अपेक्षा करने लगते हैं कि हम सर्वदा ही कठिनाइयों से बचे रहेंगे। इसलिए यदि किसी भी रूप में हम पर दुःख आता है—जैसे कि अस्वस्थता, चोट, शोक, हानि, सताव, विफलता—तो यह हमें अचम्भित कर देता है। इस पुस्तक के शीर्षक का यही कारण है।

इस पुस्तक को लिखने में मेरा उद्देश्य यह है कि जब आपके जीवन में दुःख आएँ, तो आप अचम्भित *न* हों। मैं चाहता हूँ कि आप देखें कि दुःख असमान्य नहीं है, साथ ही साथ यह भी कि यह उद्देश्यहीन भी नहीं है—यह हमारी सर्वश्रेष्ठ भलाई के लिए हमारे स्वर्गीय पिता द्वारा भेजा जाता है, जो सम्प्रभु और प्रेमी दोनों है। वास्तव में, मैं चाहता हूँ कि आप समझ जाएँ कि दुःख एक बुलाहट है, परमेश्वर की ओर से एक बुलाहट।

यह पुस्तक सबसे पहले 1988 में प्रकाशित हुई थी। इस नए संस्करण में दुःख के सम्बन्ध में परमेश्वर की सम्प्रभुता पर एक नया अध्याय (अध्याय 4) है, साथ ही पवित्रशास्त्र और विषयों की नई सूची हैं।

मेरी प्रार्थना है कि परमेश्वर *दुःख द्वारा अचम्भित* पुस्तक का उपयोग आपको उस घाटी में चलने हेतु तैयार करने के लिए करेगा जिसमें चलने हेतु अच्छा चरवाहा आपको बुलाएगा, यह जानते हुए कि वह स्वयं आपके साथ चलेगा।

—आर.सी. स्प्रोल
लेक मेरी, फ्लॉरिडा
जून 2009

भाग एक:

मृत्यु तक

अध्याय एक

दुःख, उलझन और निराशा

मसीही वे लोग हैं जिनका विश्वास ख्रीष्ट* पर है। हम सबकी इच्छा है कि हमारा विश्वास दृढ़ और चिरस्थायी हो। परन्तु वास्तविकता यह है कि विश्वास एक स्थायी वस्तु नहीं है। हमारा विश्वास तो सर्वोच्च उल्लास के क्षणों और निराशा के कगार पर ढकेलने वाले कठिन समयों के मध्य डगमगाता रहता है। सन्देह हमें संकट का आभास कराता है और हमारी शान्ति को जोखिम में डाल ने की धमकी देता है। ऐसे सन्त दुर्लभ ही मिलते हैं जिनकी आत्मा हर परिस्थिति में शान्तचित्त रहती है।

दुःख किसी भी विश्वासी के विश्वास के लिए सबसे बड़ी चुनौतियों में से एक है। जब पीड़ा, शोक, सताव, या अन्य प्रकार के दुःख आते हैं, तो हम स्वयं को अचम्भित, भ्रमित और प्रश्नों से भरा हुआ पाते हैं। दुःख विश्वास को उसकी अंतिम सीमाओं तक परख सकता है।

पौलुस ने संकट के समयों में अपने संघर्षों के विषय में हृदयस्पर्शी ढंग से लिखा: "हम चारों ओर से क्लेश सहते हैं, परन्तु मिटाए नहीं जाते; निरुपाय तो हैं, परन्तु निराश नहीं होते; सताए तो जाते हैं, परन्तु त्यागे नहीं जाते; गिराए तो जाते, परन्तु नष्ट नहीं होते। हम यीशु की मृत्यु को सदा अपनी देह में लिए फिरते हैं कि यीशु का जीवन हमारी देह में प्रकट हो" (2 कुरिन्थियों 4:8–10)।

* यद्यपि परम्परागत रीति से यूनानी शब्द *ख्रिस्टोस* को हिन्दी अनुवादों में 'मसीह' के रूप में अनुवाद किया गया है, इसके लिए 'ख्रीष्ट' शब्द अधिक उपयुक्त है। इसका कारण यह है कि 'मसीह' शब्द इब्रानी भाषा के *मशियाख* अर्थात् मसीहा शब्द से लिया गया है, जबकि नये नियम की मूल भाषा यूनानी है। अन्य भाषाओं के बाइबल अनुवादों में भी *ख्रिस्टोस* के लिए *ख्रिस्टोस* पर आधारित शब्दों का ही उपयोग किया गया है। इसलिए इस पुस्तक में 'मसीह' के स्थान पर 'ख्रीष्ट' शब्द का उपयोग किया गया है।

प्रेरित ने कहा कि वह "चारों ओर से क्लेश सहता है, परन्तु मिटाया नहीं जाता।" उसने अपनी पीड़ा को ढोंगी ईश्वरभक्ति में छिपाने का प्रयास नहीं किया। मसीही व्यक्ति कोई भावना-रहित (स्तोईकी-*Stoic)* नहीं होता है। न ही वह किसी ऐसे काल्पनिक संसार में भागता है जो उसके दुःख की वास्तविकता को नकारता है। पौलुस ने खुले रूप से उस दबाव को स्वीकारा जो उसने अनुभव किया था।

हम सब जानते हैं कि चारों ओर से दबाए जाने का क्या अर्थ है। हम अपने जीवन में तनावपूर्ण क्षणों के लिए *दबाव* शब्द का उपयोग करते हैं। हमारे कार्यक्षेत्रों की समस्याएँ, हमारे विवाहों की समस्याएँ और हमारे सम्बन्धों की समस्याएँ बढ़ सकती हैं और हमारी आत्माओं पर आक्रमण कर सकती हैं। यदि हम इन दैनिक दबावों के साथ किसी प्रियजन की दुःखद मृत्यु या लम्बे समय की अस्वस्थता को जोड़ दें, तो हम चारों ओर से और अधिक क्लेश सहने की अनुभूति करते हैं।

चारों ओर से क्लेश सहते हुए हमें ऐसे लगता है जैसे कि मानो हम पुरानी गाड़ियाँ हों जिन्हें कबाड़ के स्थान में फेंक दिया गया है और दबाव डालकर धातु का ढेर बना दिया गया है। चारों ओर से क्लेश सहने का अर्थ है, यह अनुभूति करना कि हमारे ऊपर एक बड़ा बोझ है जो हमें कुचलने की धमकी दे रहा है।

जब हम बड़े गम्भीर शोक को अनुभव कर रहे होते हैं, तो हम ऐसा कहने के लिए इच्छुक हो सकते हैं, "मैं कुचला गया हूँ।" परन्तु यह तो अतिशयोक्ति कथन है। हम कुचले हुए होने का आभास कर सकते हैं; हम कुचले जाने के बहुत निकट भी आ सकते हैं। परन्तु प्रेरित की साहसिक घोषणा है कि हम मिटाए (कुचले) *नहीं* जाते हैं।

अंग्रेज़ी की एक कहावत है "ऊँट की पीठ को तोड़ने वाली भूसी" *(the straw that breaks the camel's back)*। मैंने एक बार इस कहावत को वेट वाचर्स *(Weight Watchers)* की सभा में सुना। परिचय के पहले सत्र में, सब लोगों को विभिन्न वस्तुएँ दी गईं, जिनमें भोजन की सूचना पुस्तक, प्रतिदिन खाए जा रहे भोजन का लेखा लेने के लिए सारणी, व्यायाम पुस्तिका और एक पीने की नली सम्मिलित थीं। जब सभा का अन्त होने का समय आ रहा था और सारे निर्देश दिए जा चुके थे, तो प्रशिक्षक ने पूछा, "आपने वेट वाचर्स में जुड़ने का निर्णय क्यों लिया?" सभा के कई सदस्यों ने स्वेच्छा से उत्तर दिए। हर व्यक्ति का कारण अलग था: कुछ ने अपने नए चित्रों *(photographs)* को देखा और उन्हें उन चित्रों में अपनी छवि अच्छी नहीं लगी; कुछ को पहले की तुलना में बड़े वस्त्र लेने पड़ गए थे, और कुछ के चिकित्सकों ने कहा था कि उनको अपना मोटापा घटाना पड़ेगा। इस चर्चा के बाद प्रशिक्षक ने एक पीने की नली *(straw)* को हाथ में उठाया। उसने कहा, "आपके लिए यह है वो अंतिम भूसी *(straw)*।" यह नली उस कारण का प्रतीक है जिसके कारण आप इस कार्यक्रम में जुड़े हैं। इसे घर ले जाइए और एक ऐसे स्थान में रखिए जहाँ यह दिखे। इसे फ्रिज पर चिपकाइए। जब भी आप मोटापा घटाने की इच्छा में डगमगाने लगें, तब इसे देखिए। इसको देखकर स्मरण कीजिए कि आप यहाँ क्यों हैं।"

मैं नहीं सोचता हूँ कि किसी ऊँट की पीठ कभी किसी पीने की नली *(straw)* द्वारा टूटी होगी। इस चित्रण का उद्गम मध्य-पूर्व में हुआ था, जहाँ ऊँटों को आज भी लद्दू पशु के रूप में उपयोग किया जाता है। कटनी के बाद ऊँट से भूसा उठवाया जाता है। हर ऊँट की भूसा उठाने की क्षमता की एक सीमा होती है। प्रत्येक ऊँट की पीठ एक सीमा तक बोझ उठाने के पश्चात् टूट जाएगी। सहने योग्य बोझ और पीठ तोड़ देने वाले बोझ के मध्य का अन्तर एक भूसी मात्र का हो सकता है।

मैं नहीं जानता हूँ कि एक ऊँट कितना भार उठा सकता है। मैं नहीं जानता कि मैं कितना बड़ा बोझ उठा सकता हूँ। फिर भी हम सबकी प्रवृत्ति यह मानकर चलने की है कि हम इतना ही बोझ उठा सकते हैं, जबकि हमारी क्षमता उससे कहीं अधिक बोझ उठाने की होती है।

"मेरा बोझ हल्का है"

मेरे जीवन में ऐसे समय आए हैं जब मैंने मूर्खतापूर्ण प्रार्थनाएँ की हैं। जब मैंने चारों ओर से क्लेश का आभास किया, तब मैंने परमेश्वर को इस रीति से पुकारा है: "हे प्रभु, इससे अधिक नहीं। मैं एक और बाधा को नहीं सह पाऊँगा। एक भी और भूसी बढ़ी तो मैं समाप्त हो जाऊँगा।" ऐसा प्रतीत होता है कि जब भी मैं इस प्रकार की प्रार्थना करता हूँ तो परमेश्वर मेरी पीठ पर एक नया बोझ लाद देता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह यह कहते हुए मेरी प्रार्थना का उत्तर देता है, "*मुझे* मत बताओ कि तुम कितना सह सकते हो।"

परमेश्वर हमारी सीमाओं को हमसे कहीं उत्तम रीति से जानता है। एक अर्थ में हम कई बातों में ऊँटों के जैसे ही हैं। जब ऊँट पर लदा बोझ भारी होता है, तब वह स्वामी से और भार नहीं माँगता है। उसके घुटने लड़खड़ाते हैं और वह बोझ तले कराहता है, परन्तु फिर भी उसकी पीठ तोड़ देने वाले बोझ से पहले वह और अधिक बोझ ले सकता है। परमेश्वर की प्रतिज्ञा यह नहीं है कि वह कभी भी हमें हमारी इच्छा से अधिक बोझ नहीं देगा। परमेश्वर की प्रतिज्ञा यह है कि वह हमें कभी भी हमारी *क्षमता* से अधिक बोझ नहीं देगा।

ध्यान दें कि पौलुस ने यह नहीं कहा, "हम *थोड़ा* क्लेश सहते हैं।" उसने कहा कि हम चारों ओर से *क्लेश* सहते हैं। पहली दृष्टि में ये शब्द ख्रीष्ट की प्रतिज्ञाओं के विपरीत प्रतीत होते हैं। यीशु ने कहा, "हे सब थके और बोझ से दबे लोगों, मेरे पास आओ: मैं तुम्हें विश्राम दूँगा। मेरा जुआ अपने ऊपर उठा लो और मुझ से सीखो, क्योंकि मैं नम्र और मन में दीन हूँ और तुम अपने मन में विश्राम पाओगे। क्योंकि मेरा जुआ सहज और मेरा बोझ हल्का है" (मत्ती 11:28–30)।

मुझे सदैव ऐसा प्रतीत नहीं होता है कि जो बोझ हमें ख्रीष्ट देता है वह हल्का है। इन शब्दों से, लगभग ऐसा प्रतीत होता है कि यीशु झूठे दावे करते हुए हमारे पास आता है। परन्तु उसके वचन सत्य हैं। वह बोझ से दबे लोगों को विश्राम अवश्य देता है। सहज और हल्का शब्द तुलनात्मक

शब्द हैं। *कठिनाई* के मानक के तुलना में कोई बात *सहज* हो सकती है। भार के मानक की तुलना में कोई वस्तु *हल्की* हो सकती है। जिस बात को ख्रीष्ट के बिना सहना *कठिन* है, वह ख्रीष्ट के साथ सहने योग्य बना दी जाती है। जो बोझ अकेले उठाने के लिए भारी है, वह ख्रीष्ट की सहायता से एक हल्का बोझ बन जाता है।

यह ख्रीष्ट की उपस्थिति और सहायता ही है जिसके कारण हमारे लिए दुःख के समयों में दबाव के तले स्थिर खड़े होना सम्भव होता है। यह ख्रीष्ट के कारण ही था कि पौलुस विजयी रीति से यह घोषणा कर सकता था कि यद्यपि वह चारों ओर से क्लेश सह रहा था फिर भी वह मिटाया नहीं गया। हमें यह आभास हो सकता है कि हम कबाड़ में पड़ीं पुरानी गाड़ियाँ हैं जिन पर दबाव का हथौड़ा पड़ने वाला है परन्तु ख्रीष्ट उस आने वाले दबाव को हमें पूर्णतः ध्वस्त कर देने से रोकने के लिए एक ढाल के समान खड़ा हो जाता है।

ख्रीष्ट के बिना दुःख उठाने का अर्थ है पूर्ण रीति से ध्वस्त होने का जोखिम उठाना। मैंने बहुधा सोचा है कि लोग ख्रीष्ट में पाई जाने वाली सामर्थ्य के बिना जीवन के कष्टों को कैसे सहते होंगे। उसकी उपस्थिति और सान्त्वना इतनी अधिक अत्यावश्यक हैं कि मुझे आश्चर्य नहीं होता है कि अविश्वासी लोग मसीहियों पर आरोप लगाते हैं कि हम धर्म को बैसाखी के रूप में उपयोग करते हैं। हम कार्ल मार्क्स के आरोप "धर्म जनता की अफीम है" को स्मरण करते हैं। वह अफीम की बात कर रहा था, जो पीड़ा घटाने के लिए उपयोग किया जाने वाला मादक पदार्थ है। अन्य लोगों ने आरोप लगाया है कि धर्म वह शामक *(sedative)* औषधि है जिसे संकट के समय में निर्बल लोग उपयोग करते हैं।

कई वर्ष पूर्व मेरे घुटने की शल्यचिकित्सा *(surgery)* की गई। उसके पश्चात् स्वास्थ्यलाभ *(recuperation)* के समय में मैंने बैसाखी का उपयोग किया। मैंने उसका उपयोग किया क्योंकि मुझे उसकी आवश्यकता थी। उसी के समान बहुत वर्ष पूर्व मैं एक और शल्यचिकित्सा के लिए चिकित्सालय में था। शल्यचिकित्सा के पश्चात् मुझे हर चार घण्टे बाद पीड़ानाशक औषधि दी जा रहीं थीं। मुझे स्मरण है कि हर चौथे घण्टे के समय मैं घड़ी को देखता रहता था और तत्परता से प्रतीक्षा करता था कि कब मैं बटन दबाकर नर्स को बुलाकर औषधि की एक और मात्रा प्राप्त करूँ। मैं पीड़ानाशक औषधियों के लिए उतना ही कृतज्ञ था, जैसे कि मैं कुछ वर्ष बाद बैसाखी के लिए कृतज्ञ था।

इन सबसे अधिक मैं ख्रीष्ट के लिए कृतज्ञ हूँ। संकट के क्षणों में सहायता के लिए उसको पुकारना कोई लज्जा की बात नहीं है। हमारी पीड़ा के क्षणों में हमारी सेवा करना उसे भाता है। पीड़ितों के प्रति परमेश्वर की दया में कोई बुराई नहीं है। वह उस पिता के समान है जो अपने बच्चों पर दया करता है और जब उसके बच्चे पीड़ित होते हैं तो वह उनको सान्त्वना देने के लिए आगे आता है। परमेश्वर की सान्त्वना के बिना दुःख उठाने में कोई सद्गुण नहीं है। मार्क्स के विचारों के विपरीत परमेश्वर की सान्त्वना का सहारा लेना कोई अवगुण नहीं है।

दुःख द्वारा अचम्भित

पौलुस ने आगे कहा, "हम उलझन में तो हैं, परन्तु निराश नहीं होते।" प्रायः दुःख के साथ उलझन आती है। जब हम अस्वस्थता या शोक से ग्रसित होते हैं, तो हम बहुधा व्यग्र और भ्रमित हो जाते हैं। हमारा पहला प्रश्न होता है "क्यों?" हम पूछते हैं, "कैसे परमेश्वर मेरे साथ ऐसा होने दे सकता है?"

मुझे एक व्याकुल पिता की कहानी स्मरण आती है जो अपने पुत्र की मृत्यु के कारण अत्यधिक शोकित था। वह अपने पास्टर के पास गया और अपने व्यग्र क्रोध में उसने पूछा, "परमेश्वर कहाँ था जब मेरा पुत्र मरा?" पास्टर ने शान्त भाव से उत्तर दिया, "उसी स्थान पर जहाँ वह अपने पुत्र (यीशु) की मृत्यु के समय था।"

दुःख के साथ अचम्भे का एक तत्व जुड़ा हुआ है। हम बचपन में ही सीख लेते हैं कि पीड़ा जीवन का भाग है, परन्तु सीखने की प्रक्रिया प्रायः धीमी होती है। मुझे हँसी आती है जब मैं देखता हूँ कि मेरा तीन वर्ष का पोता पीड़ा को कैसे सहता है। जब उसे पीड़ा होती है तो वह कहता है, "दादू, मेरे पास एक 'आह!' *(ouch)* है।" वह *आह!* शब्द को एक संज्ञा के समान उपयोग करता है, मानो वह कोई वस्तु हो। यदि उसकी "आह!" छोटी है, तो एक चुम्बन उसे दूर कर देगा और यदि वह बड़ी है, तो वह चोट के लिए पट्टी की माँग करता है।

बचपन की अधिकाँश अस्वस्थताएँ और चोटें छोटी होती हैं। जब बच्चे के पेट में कोई विषाणु होता है, तो वह कर्करोग (कैंसर) के विषय में चिन्ता नहीं करता है। वह अति शीघ्र ही सीख जाता है कि बचपन के रोग की पीड़ा सरलता से समाप्त हो जाती है। परन्तु जब हम वयस्क हो जाते हैं, तो अस्वस्थता और पीड़ा के अलग स्तर आ जाते हैं। यद्यपि हम तैयारी के स्तरों में से होकर निकलते हैं, फिर भी जब हम किसी गम्भीर रोग से ग्रसित हो जाते हैं, तब हम कभी भी ठीक से तैयार नहीं रहते हैं।

मैं उस समय को स्मरण करता हूँ जब मेरी पुत्री पहली बार चिकित्सालय गई। वह छः वर्ष की थी और उसकी गलतुण्डिकाओं *(tonsils)* को निकाला जाना था। माता-पिता होने के नाते हमने उसको आने वाले अनुभव के लिए तैयार करने और उसमें सुरक्षित रहने के सभी उपाय किए। हमने उसके लिए चिकित्सालय जाने के विषय में बच्चों हेतु लिखी गई पुस्तकें पढ़ीं। हमने उसको आश्वासन दिया कि शल्यचिकित्सा के पश्चात् उसको उसकी प्रिय आइस्क्रीम दी जाएगी।

उस दिन चिकित्सालय जाना एक साहसिक अभियान के जैसा था। चिकित्सालय का बाल चिकित्सा विभाग अच्छे से सजा हुआ था। नर्सों ने हमारी बेटी और उसके कक्ष साथी का खिलौनों के साथ मनोरंजन किया। वह उमंग से भरी हुई थी और भय तो न्यून स्तर पर था।

जब लड़कियों को शल्यचिकित्सा *(surgery)* के लिए भीतर ले जाया गया, तब हम आरोग्य

कक्ष *(recovery room)* से उनके लौटकर आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। मैं अपनी पुत्री की उस दृष्टि को कभी नहीं भूलूँगा जिससे उसने जागने के पश्चात् मेरी ओर देखा था। वह एक दयनीय स्थिति में थी। उसके होंठों के किनारों में सूखा हुआ लहू था। उसका चेहरा रक्तहीन था। परन्तु सर्वाधिक पीड़ादायक तो उसके चेहरे पर दिख रहे भय, सदमा और विश्वासघात का भाव था। वह पीड़ा की नई सीमा का अनुभव कर रही थी। ऐसा लग रहा था कि वह मुझसे अपनी आँखों से कह रही थी: "आप ऐसा कैसे कर सकते हैं? आप जानते थे कि ऐसा होगा और आपने मुझ से झूठ बोला।" उस समय तो आइसक्रीम का विचार उससे कोसों दूर था। वह अपनी पीड़ा से अचम्भित थी, क्योंकि वह उसकी अपेक्षा के अनुसार नहीं थी।

मैं निश्चित हूँ कि मेरी पुत्री के पास भी मेरे विषय में वही प्रश्न रहे होंगे जिन्हें हम परमेश्वर पिता के विषय में तब पूछते हैं जब अचानक हमें पीड़ा का सामना करना पड़ता है। मेरी पुत्री के समान, हम प्रायः अचम्भित होते हैं कि परमेश्वर ने हम पर इतना गहरा कष्ट आने दिया। यह अचम्भा उन बातों के कारण नहीं होता है जिन पर विश्वास करने के लिए परमेश्वर हमारी अगुवाई करता है, वरन् उन बातों के कारण है जिन्हें हम भटके हुए शिक्षकों से सुनते हैं। ऐसे उत्साही व्यक्ति जो हमें दुःखों से मुक्त जीवन की प्रतिज्ञा करते हैं, उन्होंने तो अपना सन्देश पवित्रशास्त्र के अलावा किसी अन्य स्रोत से प्राप्त किया है।

वास्तव में तो पवित्रशास्त्र हमें स्पष्ट शिक्षा देता है कि हम इस बात को विचित्र या असाधारण *न* समझें कि हम पर दुःख आते हैं। पतरस ने लिखा: "हे प्रियो, यह दुःख-रूपी अग्नि-परीक्षा तुम्हारे मध्य इसलिए आई कि तुम्हारी परख हो—इसे यह समझकर अचम्भा न करना कि कोई अनोखी घटना तुम पर घट रही है। परन्तु जैसे-जैसे तुम ख्रीष्ट के दुःखों में सहभागी होते रहते हो, आनन्दित रहो, जिससे कि उसकी महिमा के प्रकट होते समय भी तुम आनन्द से उल्लसित हो जाओ" (1 पतरस 4:12–13)। ये शब्द पौलुस के उस कथन के समान हैं जो उसने ख्रीष्ट के क्लेशों की "घटी को पूर्ण करने" के विषय में कहा था (कुलुस्सियों 1:24), जो कि एक अनोखा पुष्टिकरण है जिसे हम अगले अध्याय में अधिक ध्यान से देखेंगे।

पतरस इन शब्दों को जोड़ता है: "किसी भी प्रकार तुम में से कोई हत्यारा, चोर, दुष्टता का कार्य करने वाला तथा दूसरों के कार्यों में हस्तक्षेप करके तंग करने वाला होकर दुःख न उठाए। पर यदि कोई मसीही होने के कारण दुःख उठाता है, तो वह लज्जित न हो, वरन् अपने इस नाम के लिए परमेश्वर की महिमा करे" (1 पतरस 4:15–16)। जब अपराधी अपने अपराध के कारण दुःख सहता है, वह व्यथित हो सकता है, परन्तु उसके पास उलझन में पड़ने का कोई कारण नहीं है। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि अपराध का परिणाम दण्ड होता है। इस प्रकार के दुःख के साथ लज्जा जुड़ी हुई है।

एक मसीही के रूप में दुःख उठाने में कोई लज्जा की बात नहीं है। पतरस निष्कर्ष निकालता है: "इसलिए वे भी जो परमेश्वर की इच्छानुसार दुःख उठाते हैं, उचित कार्य करते हुए अपने प्राण

को विश्वासयोग्य सृष्टिकर्ता के हाथों में सौंप दें" (1 पतरस 4:19)। यहाँ पतरस इस प्रश्न के विषय में सारे सन्देह मिटा देता है कि क्या कभी परमेश्वर की इच्छा होती है कि हम दुःख उठाएँ। वह "परमेश्वर की इच्छानुसार" दुःख उठाने वालों की बात करता है। इस स्थल का अर्थ है कि दुःख स्वयं में परमेश्वर की सम्प्रभु इच्छा का भाग है।

इससे पहले पतरस ने अपनी पत्री में हमारे दुःख उठाने के फल के विषय में बात की थी:

> इससे तुम अति आनन्दित होते हो, भले ही तुम्हें अभी कुछ समय के लिए विभिन्न परीक्षाओं के द्वारा दुःख उठाना पड़ा हो कि तुम्हारा विश्वास—जो आग में ताए हुए नश्वर सोने से भी अधिक बहुमूल्य है—परखा जाकर यीशु ख्रीष्ट के प्रकट होने पर प्रशंसा, महिमा और आदर का कारण ठहरे। तुमने तो उसे नहीं देखा, तौभी तुम उससे प्रेम करते हो। और यद्यपि तुम उसे अभी भी नहीं देखते, फिर भी उस पर विश्वास करते हो, और ऐसे आनन्द से आनन्दित होते हो जो वर्णन से बाहर और महिमा से परिपूर्ण है, और अपने विश्वास के प्रतिफल-स्वरूप अपने प्राणों का उद्धार प्राप्त करते हो। (1 पतरस 1:6–9)

यह खण्ड दिखाता है कि बिना निराश हुए उलझन में होना कैसे सम्भव है। हमारे दुःख उठाने के पीछे एक उद्देश्य है—यह हमारे विश्वास के लक्ष्य, जो कि हमारे प्राणों का उद्धार है की ओर ले जाने में हमारी सहायता करता है। दुःख एक भट्टी है। जैसे सोने को आग में तपाकर परिष्कृत किया जाता है, उसे उसकी गंदगी एवं अशुद्धियों से शुद्ध किया जाता है, वैसे ही हमारे विश्वास की परीक्षा आग द्वारा की जाती है। सोना नष्ट हो जाता है। हमारे प्राण नष्ट नहीं होते हैं। हम कुछ ही समय के लिए पीड़ा और दुःख का अनुभव करते हैं। जब हम आग में होते हैं तभी उलझन हम पर टूट पड़ती है। किन्तु इस आग का एक दूसरा पक्ष भी है। जैसे ही मैल जलकर समाप्त हो जाता है, वैसे ही विश्वास की वास्तविकता हमारे प्राणों के उद्धार के निमित्त शुद्ध हो जाती है।

निराशा और मरने की इच्छा

जब हम अपने दुःखों को निरर्थक—अर्थात् उद्देश्यहीन—देखते हैं, तब हम निराशा में पड़ने के बहकावे में आ जाते हैं। एक स्त्री जो प्रसव-पीड़ा का कष्ट सहती है वो ऐसा करने में इसलिए सक्षम होती है क्योंकि वह जानती है कि अन्त में इसका परिणाम एक नया जीवन होगा। परन्तु मरणान्तक रोग *(terminal illnesses)* से ग्रसित लोगों के पास बच्चे को जन्म देने वालों के समान अच्छे परिणाम की वही आशा नहीं होती है। यदि मृत्यु ही अन्त है, तो उसमें सम्मिलित दुःख को हमें पूर्ण और अन्तिम निराशा की ओर ले जाना *चाहिए।*

परन्तु ख्रीष्ट का सन्देश यह है कि मृत्यु हमें मृत्यु की ओर नहीं वरन् जीवन की ओर ले जाती है।

इसलिए प्रसव का उदाहरण यहाँ पर सटीक बैठता है। वास्तव में, इस उदाहरण का उपयोग ख्रीष्ट के दुःख उठाने और सम्पूर्ण सृष्टि के दुःख उठाने का वर्णन करने के लिए किया गया है। यशायाह ने लिखा था, "अपनी मनोव्यथा के परिणामस्वरूप वह उसे देखेगा और सन्तुष्ट होगा" (यशायाह 53:11)। इसी प्रकार पौलुस ने हम से कहा: "क्योंकि हम जानते हैं कि सम्पूर्ण सृष्टि मिलकर प्रसव-पीड़ा से अभी तक कराहती और तड़पती है। और न केवल यह, परन्तु स्वयं हम भी जिनके पास आत्मा का प्रथम फल है, अपने आप में कराहते हैं और अपने लेपालक पुत्र होने और देह के छुटकारे की बड़ी उत्कण्ठा से प्रतीक्षा कर रहे हैं" (रोमियों 8:22–23)।

हम उलझन में तो हो सकते हैं, परन्तु हमें निराश नहीं होना चाहिए। यदि हम उस छुटकारे के विषय में आश्वस्त नहीं होते जो हमारे सामने है, तो दुःख की पीड़ा ही हमें निराशा में डालने के लिए पर्याप्त है।

फिर भी, वह छुटकारा भी हमें निराशा की सीमा के पास जाने से रोकने में सदा पर्याप्त नहीं होता है। पवित्रशास्त्र बारम्बार निराशा के साथ सबसे महान् सन्तों के संघर्षों को प्रकट करता है। बाइबल में कई लोगों ने अपने जन्म-दिवस को धिक्कारा और मृत्यु के सौभाग्य के लिए विनती की।

मूसा ने प्राण के घोर अन्धकार का सामना किया जब उसने परमेश्वर को दुहाई दी: "यदि तू मुझ से ऐसा ही व्यवहार करना चाहता है और यदि तेरा अनुग्रह मुझ पर हो तो मुझे शीघ्र ही मार डाल, जिससे कि मैं अपनी दुर्दशा देख न पाऊँ" (गिनती 11:15)। अय्यूब ने यह कहते हुए अपने जन्म-दिवस को धिक्कारा, "मैं जन्म लेते ही क्यों न मर गया, गर्भ से निकलते ही नाश क्यों न हो गया? घुटने क्यों थे कि मैं ग्रहण किया जाऊँ? और स्तन क्यों थे कि मैं पीऊँ? क्योंकि मैं मरकर चुपचाप पड़ा रहता; तब मैं चिर निन्द्रा में पड़कर विश्राम करता" (अय्यूब 3:11–13)। यिर्मयाह ने भी इसी भाव को व्यक्त किया: "शापित हो वह दिन जिसमें मैं उत्पन्न हुआ; जिस दिन मेरी माता ने मुझे जन्म दिया वह धन्य न हो! शापित हो वह मनुष्य जिसने मेरे पिता के पास आकर कहा, "तेरे एक बेटा उत्पन्न हुआ है!" और उसे बहुत आनन्दित कर दिया। . . . मैंने गर्भ से जन्म ही क्यों लिया कि संकट और दुःख को देखूँ जिससे कि मेरे दिन लज्जा में ही व्यतीत हों?" (यिर्मयाह 20:14–15, 18)।

जब दुःख लम्बे समय तक बना रहता है तो हम इन गहन भावनाओं की ओर धकेल दिए जाते हैं। डेनमार्क के दार्शनिक सॉरन कीर्कगार्ड *(Søren Kierkegaard)* ने एक बार टिप्पणी की थी कि किसी भी मनुष्य की सबसे बुरी स्थितियों में से एक यह होती है कि वह मरने की इच्छा करता है परन्तु इसके लिए उसे अनुमति नहीं दी जाती है। इस स्थिति में पड़े लोगों का मैंने व्यक्तिगत रीति से सामना किया है। कई वृद्ध लोगों ने मुझसे कहा है: "भला होता यदि प्रभु मुझे बुला लेता। वह मुझसे प्रतीक्षा क्यों करवा रहा है?"

गरिमामय मृत्यु?

इच्छामृत्यु *(euthanasia)* के विषय के केन्द्र में दुःख से छूटने की गहरी अभिलाषा निहित है। तर्क यह दिया जाता है कि हम मनुष्यों से अधिक पशुओं के साथ मानवता का व्यवहार करते हैं। हम अस्वस्थ घोड़ों को गोली मार कर मृत्यु दे देते हैं और अपने अस्वस्थ कुत्तों को भी मृत्यु की नींद सुला देते हैं, परन्तु हम मानव जीवन को यथासम्भव लम्बे समय तक बनाए रखते हैं।

ऐतिहासिक रूप से, कलीसिया और चिकित्सा दोनों क्षेत्रों के लोगों ने (हिप्पोक्रेट्स की शपथ का पालन करते हुए) इस नियम का पालन किया है कि हमें जीवन को बनाए रखने के लिए हर सम्भव प्रयास करना चाहिए। परन्तु आधुनिक तकनीकों के आगमन के साथ, अभी ऐसे लोगों को तकनीकी रीति से जीवित रखना सम्भव है जिनके लिए ठीक होने की कोई आशा नहीं है। इस प्रकार से, आधुनिक प्रौद्योगिकी ने मरने को लेकर कई नैतिक दुविधाएँ उत्पन्न की हैं।

यह बात अवश्य कही जानी चाहिए कि परमेश्वर हमें आत्महत्या करने की अनुमति नहीं देता है। अपनी पूर्ण अभिव्यक्ति में, आत्महत्या में, निराशा के सामने हार मान लेना निहित है। (इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्महत्या वह पाप है जिसकी क्षमा नहीं हो सकती है। लोग कई कारणों से और कई परिस्थितियों में आत्महत्या करते हैं। हम वास्तव में नहीं जानते हैं कि ऐसा करते समय लोगों की मानसिक स्थिति क्या होती है। हम आत्महत्या करने वालों के परिणाम के प्रश्न को परमेश्वर की दया पर छोड़ते हैं।) भले ही दुःख उठाने की जटिलताएँ कुछ भी क्यों न हों, हम जानते हैं कि मृत्यु के लिए हमें आत्महत्या का विकल्प नहीं दिया गया है।

इच्छामृत्यु की चर्चा में *सक्रिय* और *निष्क्रिय* इच्छामृत्यु के बीच अन्तर किया जाता है। सक्रिय इच्छामृत्यु *(active euthanasia)* में किसी पीड़ित व्यक्ति को मारने के लिए सीधे कार्य किए जाते हैं। इसमें घातक इन्जेक्शन *(lethal injection)* जैसी प्रक्रियाएँ सम्मिलित हैं। सीधे शब्दों में कहें तो निष्क्रिय इच्छामृत्यु *(passive euthanasia)* में असाधारण जीवन-अवलम्ब *(life support)* के उपायों का उपयोग रोक दिया जाता है। निष्क्रिय इच्छामृत्यु को कभी-कभी "जीवन-अवलम्ब उपकरण बन्द करना" या "प्रकृति को अपना कार्य करने देना" कहा जाता है। यहाँ गरिमामय मृत्यु का विषय बहुत महत्वपूर्ण बन जाता है।

एक बार मुझे आठ सौ चिकित्सकों की सभा से "जीवन-अवलम्ब उपकरण बन्द करने" के विषय पर बात करने को कहा गया था। वहाँ के चिकित्सक इससे जुड़ी समस्याओं से भली-भाँति परिचित थे। उपकरण को कैसे बन्द करना चाहिए? उपकरण को किसे बन्द करना चाहिए? उपकरण को कब बन्द किया जाना चाहिए?

जब हम उन विभिन्न साधनों पर विचार करते हैं जिनके द्वारा जीवन को कृत्रिम रूप से बनाए रखा जा सकता है, तो यह स्पष्ट हो जाता है कि "उपकरण बन्द करने" के कई ढंग हैं। अंतःशिरा

पोषण *(IV tube)* हटाया जा सकता है, जिससे कि व्यक्ति पोषण के आभाव से मर जाए। श्वासयन्त्रों (*Respirators*) को बन्द किया जा सकता है। औषधि का दिया जाना बन्द किया जा सकता है। जब ऐसा किया जाता है, तो तथाकथित सक्रिय और निष्क्रिय इच्छामृत्यु के मध्य की रेखा धुँधली हो जाती है। उसी प्रकार, *साधारण* और *असाधारण* जीवन अवलम्ब के साधन में भिन्नता सर्वदा स्पष्ट नहीं होती है। कल के असाधारण साधन आज के साधारण साधन बन जाते हैं।

समस्या इस प्रश्न के द्वारा और जटिल बन जाती है कि निर्णय *कौन* लेगा। चिकित्सक परमेश्वर के स्थान पर कार्य नहीं करना चाहता है। परिवार निर्णय के कारण दोष-बोध में दब सकते हैं। कोई भी पास्टर इस कार्य के लिए स्वयं को सक्षम नहीं समझता है और इस विषय को विधिक *(legal)* समुदाय के हाथों में छोड़ना भयानक होगा। फिर भी विश्व भर के चिकित्सालयों में इन विषयों पर प्रतिदिन निर्णय लिए जाते हैं। और निर्णय नहीं लेना भी स्वयं में एक निर्णय लेना ही है।

मेरे पास इस दुविधा के सारे उत्तर तो नहीं हैं, परन्तु मैं दो बातों के विषय में निश्चित हूँ। पहली बात यह है कि इन विषयों से सम्बन्धित निर्णयों को मानव जीवन की बहुमूल्यता के सिद्धान्त के प्रकाश में लिया जाना चाहिए। हमें हर सम्भव प्रयास करना चाहिए कि मानव जीवन को बनाए रखा जाए। यदि हम भूल करें भी तो किसी भी प्रकार से जीवन के मूल्य को घटाने से उत्तम है जीवन के पक्ष में भूल करना। दूसरी बात यह है कि निर्णय में कम से कम तीन पक्षों को सम्मिलित होना चाहिए, सम्भवतः चार भी। इसमें चिकित्सक, परिवार, पास्टरगण और जब सम्भव हो तो रोगी को भी सम्मिलित होना चाहिए।

यह विषय दुःख की जटिलता का एक भाग है। हमारे निर्णयों को किसी भी रीति से निराशा के दृष्टिकोण से नहीं लिया जाना चाहिए। हमें सर्वदा उद्धार के लक्ष्य को मन में रखना चाहिए कहीं ऐसा न हो कि आशा निराशा के वश में हो जाए।

जैसे मैंने पहले कहा था, निराशा से बचने का एकमात्र उपाय है कि परमेश्वर द्वारा प्रदान होने वाले उद्धार के लिए यीशु ख्रीष्ट पर विश्वास करना। दाऊद ने इस प्रकार से इस विषय को सारांशित किया था: "यदि मुझे यह विश्वास न होता कि जीवितों की भूमि में यहोवा की भलाई को देखूँगा, तो मैं हताश हो गया होता" (भजन 27:13)। इसी रीति से, जिस पत्री में प्रेरित पौलुस ने कहा था, "हम उलझन में तो हैं, परन्तु निराश नहीं होते," उसने यह भी लिखा:

> क्योंकि हे भाइयो, हम यह नहीं चाहते कि तुम उस क्लेश से अनजान रहो जो हमको एशिया में सहना पड़ा। हम ऐसे भारी बोझ से दब गए थे जो हमारी सामर्थ्य से बाहर था, यहाँ तक कि हम जीवन की आशा भी छोड़ बैठे थे। वास्तव में, हमें ऐसा लगा जैसे कि हम पर मृत्यु-दण्ड

> की आज्ञा हो चुकी हो, जिससे कि हम अपने आप पर नहीं वरन् परमेश्वर पर भरोसा रखें जो मृतकों को जिला उठाता है। उसी ने हमको मृत्यु के इतने भारी संकट से बचाया और भविष्य में भी अवश्य बचाएगा। उसी पर हमने आशा रखी है और वही हमें आगे भी बचाता रहेगा। (2 कुरिन्थियों 1:8–10)

पौलुस ने निराशा की स्थिति में प्रवेश किया। परन्तु उसकी निराशा सीमित थी। वह परम निराशा नहीं थी। वह अपने पार्थिव जीवन के सम्बन्ध में निराश था। वह निश्चित था कि वह मरने वाला था। परन्तु पौलुस मृत्यु से परम छुटकारे को लेकर निराश नहीं था। वह मृत्यु पर विजय के विषय में ख्रीष्ट की प्रतिज्ञा को जानता था।

अध्याय दो

दुःख के मार्ग पर चलना

"वह व्यथित तथा व्याकुल होने लगा।"
—मत्ती 26:37

जब यीशु ने गतसमनी की वाटिका में प्रार्थना करना आरम्भ किया तो उसकी अन्तर आत्मा व्यथित और गहन व्याकुल थी। यह उसके लिए प्रचण्ड यन्त्रणा का क्षण था। वह अपने महान् दुःख-भोग की पराकाष्ठा के निकट पहुँच रहा था। यीशु का महान् दुःख-भोग उसके ईश्वरीय बुलाहट का केन्द्र-बिन्दु था। परमेश्वर के एकलौते पुत्र से अधिक महान् दुःख उठाने के लिए कभी भी किसी को परमेश्वर द्वारा नहीं बुलाया गया।

हमारा उद्धारकर्ता एक दुःख उठाने वाला उद्धारकर्ता था। वह हम से आगे यन्त्रणा और मृत्यु के अज्ञात लोक में गया। वह ऐसे स्थान में गया जहाँ किसी मनुष्य को जाने के लिए बुलाहट नहीं दी गई है। उसके पिता ने उसे एक ऐसा प्याला दिया जो कभी भी हमारे होंठों को नहीं छूएगा। परमेश्वर कभी भी हमसे ख्रीष्ट द्वारा स्वयं पर लिए गए कष्ट के बराबर किसी भी कष्ट सहने की माँग नहीं करेगा। परमेश्वर हमें जहाँ भी जाने के लिए कहता है, वह हमें जो भी सहने के लिए कहता है, वह उस दुःख से बहुत ही कम होगा जिसका अनुभव यीशु ने किया।

अपनी सेवा के आरम्भ से ही यीशु अपने कार्य-लक्ष्य *(मिशन)* के विषय में सचेत था। वह जानता था कि वह मृत्यु-दण्ड के अधीन था। उसका "रोग" मरणान्तक रोग था। क्रूस पर पिता ने उसे न केवल एक मरणान्तक रोग से वरन् सभी मरणान्तक रोगों से ग्रसित किया। निस्सन्देह, इसका अर्थ यह नहीं है कि उसको कर्करोग था, या कि किसी चिकित्सक ने कहा कि उसको घातक कुष्ठरोग था। वह किसी भी ज्ञात रोग के बाहरी प्रमाण के बिना अपनी मृत्यु की ओर गया। परन्तु हर रोग की संचित पीड़ा उस पर लाद दी गई। उसने अपनी देह में मानव जाति को ज्ञात सभी बुराई, सभी अस्वस्थता और सभी पीड़ा के विध्वंश को सहा।

यीशु ने इतना अधिक दुःख सहा क्योंकि जगत में बुराई का विस्तार अति विशाल है। उसके लोगों के प्रत्येक पाप का प्रत्येक परिणाम उस पर डाला गया। इस भयानक बोझ को उठाना उसकी बुलाहट थी। इस पीड़ा और इस रोग को उठाना ही उसका कार्य-लक्ष्य था। इस भयावहता *(horror)* की माप हमारी समझ से परे है। परन्तु वह उसे समझता था क्योंकि उसी को यह सहना था।

यीशु ने अपने लोगों को छुड़ाने के लिए अपने दुःख को सहन किया। किन्तु जिन लोगों को उसने छुटकारा दिलाया, उन सभी को सारे दुःखों और पीड़ाओं से छुटकारा नहीं मिला। वास्तव में, जैसा कि हम देखेंगे, हमें उसके लोग होने के कारण उसके दुःख में भाग लेने के लिए बुलाया गया है।

दुःख उठाने वाले ख्रीष्ट का कलंक

यह विचार कि परमेश्वर का पुत्र देह में आकर दुःख उठाएगा यह उसके समकालीन लोगों के लिए असोचनीय बात थी। नए नियम का लज्जाजनक समाचार यह था कि परमेश्वर देहधारी हुआ। वह अनन्त, ईश्वरीय वचन देह बन गया। उसका शरीर सब शारीरिक उत्पीड़न के प्रति आघात-योग्य *(vulnerable)* था।

परमेश्वर के विषय में यूनानी विचार इतना आत्मिक और अलौकिक था, कि उनके पास देहधारण की अवधारणा का कोई स्थान नहीं था। उनकी दृष्टि में, परमेश्वर इस कारण से शारीरिक दुःख में सम्मिलित नहीं हो सकता है क्योंकि उसका सम्बन्ध किसी भी शारीरिक वस्तु से नहीं हो सकता था।

यहूदी लोग इस विचार को तो स्वीकार कर सकते थे कि परमेश्वर मानव रूप में आ सकता था, परन्तु यह विचार उनकी समझ से परे था कि मानव शरीर में आया हुआ परमेश्वर वास्तव में दुःख उठा सकता है।

कैसरिया फिलिप्पी में पतरस के महान् अंगीकार के क्षण के पश्चात् उसने यीशु से अब तक की सबसे कठोर फटकार सुनी। यह यीशु के इस प्रश्न के प्रति पतरस के उत्तर से आरम्भ हुआ, "तुम

क्या कहते हो? मैं कौन हूँ?" (मत्ती 16:15)। पतरस ने उत्तर दिया, "तू जीवित परमेश्वर का पुत्र ख्रीष्ट है" (16:16)।

इस उत्तर के लिए पतरस ने यीशु से आशीष पाई: "हे शमौन, योना के पुत्र, तू धन्य है, क्योंकि माँस और लहू ने इसे तुझ पर प्रकट नहीं किया, परन्तु मेरे पिता ने जो स्वर्ग में है। मैं तुझ से यह भी कहता हूँ कि तू पतरस है और इसी चट्टान पर मैं अपनी कलीसिया बनाऊँगा और अधोलोक के फाटक उस पर प्रबल न होंगे" (16:17–18)। स्वयं ख्रीष्ट के इस आशीष से अधिक किसी मनुष्य को कौन सी बड़ी प्रशंसा मिल सकती है?

परन्तु कुछ क्षण पश्चात्, इसी मनुष्य को यीशु से एक तीखी फटकार मिली: "हे शैतान, मुझ से दूर हो! तू मेरे लिए ठोकर का कारण है, क्योंकि तू परमेश्वर की बातों पर नहीं परन्तु मनुष्य की बातों पर मन लगाता है" (16:23)।

ये शब्द शैतान से नहीं वरन् पतरस से कहे गए थे। यहाँ संवाद थोड़ा अस्थिर प्रतीत होता है। एक क्षण तो यीशु ने पतरस को आशीष दी और अगले ही क्षण उसने पतरस को "शैतान" कहा। हम यीशु के भाव और शब्दों में इस आकस्मिक परिवर्तन को कैसे समझा सकते हैं? यीशु लोगों से अनुचित कठोरता से तो व्यवहार नहीं किया करता था। न ही वह दो-मुँहा था, जो मुँह की एक ओर से प्रशंसा करता था और दूसरी ओर से शाप देता था।

इस बोली में परिवर्तन को प्रशंसा और फटकार के मध्य के अन्तराल के प्रकाश में समझा जाना चाहिए। उस अन्तराल में पतरस और यीशु ने दुःख उठाने के विषय में बात की: "उस समय से यीशु अपने चेलों को बताने लगा कि अवश्य है कि मैं यरूशलेम को जाऊँ और प्राचीनों, मुख्य याजकों और शास्त्रियों द्वारा बहुत दुःख उठाऊँ और मार डाला जाऊँ और तीसरे दिन जिलाया जाऊँ" (16:21)।

हम यहाँ देखते हैं कि यीशु दिखा रहा था कि उसे दुःख उठाकर मरना होगा। यरूशलेम जाने की उसकी यात्रा वैकल्पिक नहीं थी। उसको एक नियति पूरी करनी थी, अर्थात् गुलगुता पर उसकी पूर्वनिश्चित भेंट निर्धारित की गयी थी। यह "अनिवार्यता" उसकी बुलाहट पर आधारित थी। उसको एक कार्य करने के लिए बुलाया गया था। दुःख उठाना और मरना उसका कर्तव्य था।

पतरस ने उसके कर्तव्य के इसी बिन्दु पर उसे चुनौती दी: "इस पर पतरस उसे अलग ले गया और यह कहते हुए झिड़कने लगा: हे प्रभु, परमेश्वर न करे! तुझ पर ऐसा कभी न होने पाए!" (16:22)।

कम से कम पतरस में इतनी शिष्टता थी कि उसने अपने प्रभु को एकान्त में झिड़का। उसने अपने अहंकार को सबके सामने नहीं प्रदर्शित किया, परन्तु पवित्र आत्मा ने उसके अकथनीय दुःसाहस को पवित्रशास्त्र के सार्वजनिक अभिलेख में अंकित करवाया।

पतरस की माँग थी कि यीशु स्वयं को दुःख और मृत्यु से दूर रखे। वह एक ऐसा उद्धारकर्ता चाहता था जो दुःख द्वारा कलंकित ना हो। वह चाहता था कि परमेश्वर का राज्य परमेश्वर के मार्ग के द्वारा नहीं वरन् शैतान के मार्ग के द्वारा आए। परमेश्वर का मार्ग क्रूस का मार्ग था, अर्थात् *विया डोलोरोसा (दुःख का मार्ग)*। यीशु ने पतरस की माँग में उसी सुझाव को पहचाना जिसे शैतान ने जंगल में प्रस्तुत किया था।

ईश्वरविज्ञानी विवाद करते हैं कि यीशु के जीवन में, कब वह इस बात के विषय में सचेत हुआ कि उसे दुःख उठाकर मरना होगा, परन्तु बाइबल इस बात को स्पष्ट कर देती है कि दुःख उठाने वाले मसीहा का विचार कैसरिया फिलिप्पी से बहुत पहले बनाया गया था। इस अवधारणा की पूर्व-झलक बहुत पहले ही उत्पत्ति 3:15 में दी गई थी: "और मैं तेरे और इस स्त्री के बीच में तथा तेरे वंश और इसके वंश के बीच में, बैर उत्पन्न करूँगा: वह तेरे सिर को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को डसेगा।" यह *प्रोटोएवैंगेलियुम (Protevangelium)* है, अर्थात् उस सुसमाचार का पहला संकेत जो आने वाला था। आगे चलकर, इस विचार को यशायाह के दुःख उठाने वाले सेवक के विचार में विस्तार से समझाया गया है।

इसके अतिरिक्त, मन्दिर में वृद्ध शमौन ने मरियम से यीशु के दुःख उठाने के विषय में भविष्यद्वाणी की: "देख, यह बालक इस्राएल में बहुतों के पतन व उत्थान का कारण और ऐसा चिह्न होने के लिए ठहराया गया है जिसका विरोध किया जाएगा—जिससे कि बहुतों के हृदय के विचार प्रकट हो जाएँ। और तलवार तेरे ही प्राण को छेदेगी" (लूका 2:34–35)। यह स्थल स्पष्ट करता है कि यीशु के जीवन के पहले सप्ताहों में ही उसकी माता को बताया गया था कि एक छेदने वाली तलवार आएगी।

बारह वर्ष की आयु में, यीशु ने घोषणा की थी कि उसे *अवश्य* अपने पिता के कार्य को करना था (लूका 2:49)। उस समय तक वह उस *अनिवार्यता* को जानता था, अर्थात् यह कि उसे अपना कर्तव्य पूरा करना होगा। यह अनुमान का विषय है कि क्या उस छोटी आयु में वह उस कर्तव्य के पूर्ण महत्व को समझता था या नहीं। परन्तु निश्चय ही जब वह गतसमनी की वाटिका में आया तो इस बात में कोई सन्देह नहीं रह गया था।

वाटिका में, उसने अपनी व्यथा में होकर प्रवेश किया। उसने अपने शिष्यों से कहा: "मेरा प्राण बहुत उदास है, यहाँ तक कि मैं मरने पर हूँ। यहीं ठहरो और मेरे साथ जागते रहो" (मत्ती 26:38)।

पवित्रशास्त्र हमें बताता है कि इन शब्दों को कहने के पश्चात्, यीशु जैतून के उपवन के और अन्दर गया तथा उसने मुँह के बल गिरकर प्रार्थना की: "हे मेरे पिता, यदि सम्भव हो तो यह प्याला मुझ से टल जाए। फिर भी मेरी नहीं, पर तेरी इच्छा पूरी हो" (मत्ती 26:39)। इस ऐतिहासिक विवरण में लूका इन शब्दों को जोड़ता है: "यीशु व्याकुल होकर आग्रहपूर्वक प्रार्थना कर रहा था और उसका पसीना रक्त की बूँद के समान भूमि पर गिर रहा था" (लूका 22:44)।

"नहीं" को परमेश्वर की इच्छा के रूप में स्वीकार करना

मैं स्तब्ध हूँ कि बाइबल की स्पष्ट शिक्षा के प्रकाश में किसी के पास यह कहने का दुःसाहस कैसे हो सकता है कि शारीरिक या आत्मिक रीति से पीड़ित लोगों के लिए अनुचित है कि वे छुटकारे के लिए अपनी प्रार्थनाओं को "यदि तेरी इच्छा हो तो . . ." के सन्दर्भ में करें। हमें बताया जाता है कि जब संकट आता है, तो परमेश्वर की इच्छा सदैव चंगाई देने की होती है तथा दुःख उठाने के साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है और साथ ही हमें केवल विश्वास के द्वारा अपनी इच्छानुसार उत्तर की माँग भी करनी चाहिए। हमें उत्साहित किया जाता है कि इससे पहले परमेश्वर हाँ कहें, हम उसके हाँ को प्राप्त करने का दावा करें।

बाइबलीय विश्वास की ये विकृतियाँ हमसे दूर हों! वे उस प्रलोभन देने वाले के मन में उत्पन्न होती हैं, जो चाहता है कि हम विश्वास के स्थान पर टोना को अपनाएँ। इस झूठ को खरी शिक्षा में परिवर्तित करने के लिए किसी भी मात्रा में भक्तिपूर्ण भाषा पर्याप्त नहीं है। हमें स्वीकार करना होगा कि कभी-कभी परमेश्वर "नहीं" कहता है। कभी-कभी वह हमें दुःख उठाने के लिए और मरने के लिए कहता है भले ही हम इसके विपरीत बात होने का दावा करें।

गतसमनी में ख्रीष्ट की प्रार्थना से अधिक सत्यनिष्ठा से कभी भी किसी मनुष्य ने प्रार्थना नहीं की। कौन यीशु पर आरोप लगाएगा कि वह विश्वास से प्रार्थना करने में विफल हुआ? उसने रक्त रूपी पसीने के साथ पिता के सामने अपना निवेदन रखा: "इस प्याले को मुझ से हटा ले।" यह प्रार्थना स्पष्ट और बिना किसी संशय के थी—यीशु छुटकारे के लिए विनती कर रहा था। उसने उस भयंकर कड़वे प्याले के हटाए जाने के लिए प्रार्थना की। उसकी मानवता का हर कण उस प्याले को पीने से पीछे हट रहा था। उसने पिता से निवेदन किया कि उसे अपने कर्तव्य से मुक्त किया जाए।

परन्तु परमेश्वर ने कहा "नहीं"। दुःख उठाने का मार्ग पिता की योजना थी। यह पिता की इच्छा थी। क्रूस शैतान का विचार नहीं था। ख्रीष्ट का दुःख-भोग मानव हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप नहीं हुआ। यह काइफा, हेरोदेस या पिलातुस की संयोगिक युक्ति नहीं थी। प्याले को सर्वशक्तिमान परमेश्वर द्वारा तैयार किया गया, दिया गया और पिलाया गया था।

यीशु ने अपनी प्रार्थना को इस रीति से कहा: "यदि तेरी इच्छा हो तो . . .।" यीशु ने "आशीष का नाम लेकर दावा" नहीं किया। वह अपने पिता को अच्छे से जानता था यह समझने के लिए कि सम्भवतः प्याला हटाना पिता की इच्छा में नहीं होगा। इसलिए कहानी इन शब्दों के साथ समाप्त नहीं हुई, "और पिता ने उस बुराई से जिसकी योजना उसने बनाई थी पश्चात्ताप किया, प्याले को हटा दिया और यीशु सर्वदा के लिए आनन्द से रहा।" ऐसे शब्द तो लगभग ईश-निन्दक हैं। सुसमाचार कोई परी कथा नहीं है। पिता प्याले के विषय में समझौता नहीं करता। यीशु को उसे तलछट तक पीने के लिए बुलाया गया था। और उसने उसे स्वीकार किया। "फिर भी मेरी इच्छा नहीं, पर तेरी इच्छा पूरी हो" (लूका 22:42)।

यह "फिर भी" विश्वास की सर्वश्रेष्ठ प्रार्थना थी। विश्वास की प्रार्थना कोई माँग नहीं है जिसे हम परमेश्वर पर थोप सकते हैं। इसमें यह मानकर नहीं चला जाता है कि निवेदन को स्वीकार ही किया जाएगा। प्रमाणिक विश्वास की प्रार्थना तो वह प्रार्थना है जो यीशु की इस प्रार्थना के नमूने पर आधारित होती है। यह सर्वदा अधीनता की आत्मा में होकर की जाती है। हमारी सब प्रार्थनाओं में हमें परमेश्वर को परमेश्वर का स्थान देना चाहिए। कोई भी पिता से नहीं कहता है कि उसे क्या करना चाहिए, यहाँ तक कि पुत्र भी नहीं कहता है। प्रार्थनाएँ सदैव विनम्रता से परमेश्वर पिता की इच्छा के प्रति समर्पण में किए गए निवेदन होते हैं।

विश्वास की प्रार्थना भरोसे की प्रार्थना है। विश्वास का सार ही भरोसा है। हम भरोसा करते हैं क्योंकि परमेश्वर जानता है कि क्या उत्तम है। भरोसे की आत्मा में यह बात सम्मिलित है कि जो भी पिता चाहता है कि हम करें, हम उसे करने के लिए इच्छुक होते हैं। ख्रीष्ट ने गतसमनी में इसी प्रकार के भरोसे को प्रकट किया।

यद्यपि स्थल में ऐसा लिखा नहीं है, पर यह स्पष्ट है कि यीशु अपनी याचना के प्रति पिता के उत्तर को लिए हुए वाटिका से निकला। कोई निन्दा और कड़वापन नहीं था। उसका भोजन यह था कि वह पिता की इच्छा को पूरी करे। एक बार जब पिता ने "नहीं" कहा, तो बात पक्की हो गई। यीशु ने स्वयं को क्रूस के लिए तैयार किया।

दुःख उठाने के द्वारा छुटकारा देना

ख्रीष्ट के जीवन और दुःख-भोग में हम इस बात को सबसे स्पष्ट रीति से देखते हैं कि दुःख उठाना वह मार्ग है जिसके द्वारा परमेश्वर ने एक पतित जगत के लिए छुटकारा देने का निर्णय लिया है। यीशु को दुःखी पुरुष के रूप में और ऐसे जन के रूप में जाना गया जिसकी पीड़ा से जान पहचान थी (यशायाह 53:3)। उसका जीवन और उसकी सेवा विस्तृत रीति से यशायाह नबी द्वारा वर्णित प्रभु के दुःख उठाने वाले दास के मिशन-कार्य के अनुरूप थी।

हम प्रेरितों के काम की पुस्तक में एक रोचक कहानी को पढ़ते हैं:

> प्रभु के एक स्वर्गदूत ने फिलिप्पुस से कहा, "उठ और दक्षिण की ओर उस मार्ग पर जा जो यरूशलेम से गाज़ा की ओर जाता है।" यह एक निर्जन मार्ग है। वह उठकर गया और देखो, इथियोपिया देश का एक खोजा था, जो उस देश की रानी कन्दाके का मन्त्री तथा कोषाध्यक्ष था। वह आराधना करने यरूशलेम आया था। वह अपने रथ में बैठकर यशायाह नबी की पुस्तक पढ़ते हुए वापस लौट रहा था। तब आत्मा ने फिलिप्पुस से कहा, "जा, तू इस रथ के साथ चला जा।"

तब फिलिप्पुस दौड़कर वहाँ पहुँचा तो उसने उसे यशायाह नबी की पुस्तक पढ़ते सुना और कहा, "जो तू पढ़ रहा है क्या उसे समझता भी है?"

उसने कहा, "जब तक कोई मुझे न समझाए, मैं कैसे समझ सकता हूँ?" और उसने फिलिप्पुस से विनती की कि वह ऊपर आकर उसके पास बैठे। पवित्रशास्त्र का जो अध्याय वह पढ़ रहा था, यह था:

"वह वध होने वाली भेड़ के समान ले जाया गया,
और जैसे मेमना ऊन कतरने वालों के सामने चुपचाप रहता है,
वैसे ही उसने भी अपना मुँह न खोला।
दीनता की दशा में उसका न्याय नहीं होने पाया।
उसकी पीढ़ी के लोगों का वर्णन कौन करेगा?
क्योंकि पृथ्वी पर से उसका जीवन उठा लिया जाता है।"

खोजे ने फिलिप्पुस से कहा, "कृपा करके मुझे बता कि नबी यह किसके विषय में कहता है? अपने या किसी दूसरे के विषय में?" तब फिलिप्पुस ने अपना मुँह खोला और इसी शास्त्र से आरम्भ करके उसे यीशु के विषय में सुसमाचार सुनाया। (प्रेरितों के काम 8:26–35)

इथियोपिया के खोजे ने फिलिप्पुस से एक अति महत्वपूर्ण प्रश्न पूछा। वह यशायाह 53 से पढ़ रहा था और उलझा हुआ था। उसने पूछा, "नबी यह किसके विषय में कहता है? अपने या किसी दूसरे के विषय में?" वह जानना चाहता था कि दुःख उठाने वाला प्रभु का दास कौन था।

फिलिप्पुस का उत्तर सीधा और स्पष्ट था। उसने इथियोपिया के खोजे से कहा कि यशायाह यीशु के विषय में बात कर रहा था।

यह तथ्य कि नया नियम इस्राएल के दुःख उठाने वाले की पहचान को यीशु के साथ जोड़ता है इतना सुस्पष्ट प्रतीत हो सकता है कि आप सोच सकते हैं कि मैं उसे समझाने के लिए क्यों समय ले रहा हूँ। परन्तु यह पूर्णतया महत्वपूर्ण है। सबसे पहले तो यीशु के विषय में हमारी समझ इस प्रश्न से जुड़ी हुई है। मैं नहीं सोचता हूँ कि यह घोषणा करना अतिशयोक्तिपूर्ण कथन होगा कि नए नियम में पाया जाने वाला यीशु का विवरण इसी विषय पर टिका हुआ है। परन्तु हमारे स्वयं के दुःखों के अर्थ का कठिन प्रश्न भी इसी विवरण से जुड़ा हुआ है।

आधुनिक समय में, हमने एक प्रकार की बाइबलीय विद्वत्ता देखी है जो मानती है कि यशायाह

के दुःख उठाने वाले दास की नबूवतों के विषय में यीशु द्वारा कही गयी सब बातें नए नियम के लेखकों का अविष्कार थे। अर्थात्, माना जाता है कि बाइबल के लेखकों ने कथित रूप से यीशु के इतिहास में "मिलावट की।" इस विचारधारा के अनुसार यीशु द्वारा अपने दुःख-भोग को सहने के पश्चात्, आरम्भिक कलीसिया के अगुवों को इस दुःख उठाए जाने के लिए एक स्पष्टीकरण का अविष्कार करना पड़ा। इसलिए उन्होंने यशायाह के दुःख उठाने वाले दास और यीशु के मध्य यह सम्बन्ध जोड़ा। तत्पश्चात् उन्होंने यीशु के मुँह में ऐसे शब्द डाले जो उसने कभी कहे ही नहीं थे।

आलोचकों के पास ख्रीष्ट के विषय में बाइबल के दृष्टिकोण के विरुद्ध जाने में कुछ स्वार्थी उद्देश्य होता है। उनका स्वार्थी उद्देश्य इतना अधिक जोखिम भरा होता है कि वह उन्हीं के तर्क के विरुद्ध होता है। यदि हम ऐतिहासिक यीशु के विषय में कुछ भी जानते हैं, तो हम उसे ऐसे जन के रूप में जानते हैं जिसने परमेश्वर के दास के रूप में दुःख सहा और मारा गया।

लूका का सुसमाचार यीशु के इन शब्दों को वर्णित करता है: "क्योंकि मैं तुम्हें बताता हूँ कि यह बात जो लिखी गई है, वह मुझ में पूरी होगी, अर्थात् 'वह अपराधियों के साथ गिना गया,' क्योंकि जो बातें मेरे सम्बन्ध में कही गई हैं, पूरी होने पर हैं" (लूका 22:37)।

यहाँ यीशु ने यशायाह 53 को सीधा उद्धरित किया है। उसने स्वयं को परमेश्वर का दुःख उठाने वाला दास कहा। इस्राएल देश को एक दुःख उठाने वाला दास होने के लिए बुलाया गया था। फिर इस बुलाहट को इस्राएल का प्रतिनिधित्व करने वाले एक पुरुष में ठोस और मूर्त किया गया। फिलिप्पुस का उत्तर स्पष्ट था: वह पुरुष यीशु था।

उसके दुःख में सहभागी होना

यीशु ने हमारे लिए दुःख उठाया। फिर भी हमें उसके दुःख में सहभागी होने के लिए बुलाया गया है। यद्यपि यीशु विशेष रीति से यशायाह की नबूवत की पूर्ति था, फिर भी हमारे लिए इस बुलाहट का लागूकरण अभी भी शेष है। हमें ख्रीष्ट के दुःख में सहभागी होने का कर्तव्य और सौभाग्य दोनों दिया गया है।

इस विचार का एक रहस्यमय विवरण प्रेरित पौलुस के लेखों में पाया जाता है: "अब मैं अपने दुःखों में जो तुम्हारे लिए उठाता हूँ, आनन्द करता हूँ और ख्रीष्ट के क्लेशों की घटी को उसकी देह अर्थात् कलीसिया के लिए अपने शरीर में पूर्ण करता हूँ" (कुलुस्सियों 1:24)। यहाँ पौलुस ने कहा कि वह अपने दुःख में आनन्द करता था। निस्सन्देह उसका अर्थ यह नहीं था कि उसको पीड़ा और क्लेश अच्छा लगता था। वरन्, उसके आनन्द का कारण उसके दुःख के अर्थ में पाया जाता था। उसने कहा कि वह "ख्रीष्ट के क्लेशों की घटी को" पूर्ण कर रहा था।

ऊपरी रीति से देखा जाए, तो पौलुस का स्पष्टीकरण चौंका देने वाला है। भला ख्रीष्ट के क्लेशों

में क्या घटी हो सकती थी? क्या ख्रीष्ट ने अपने छुटकारे के कार्य को आधा ही पूरा किया, जिसके कारण पौलुस को उसको पूरा करना पड़ रहा था? जब यीशु ने क्रूस पर से कहा, "पूरा हुआ" तो क्या वह अतिश्योक्तिपूर्ण कथन था? ख्रीष्ट के दुःख उठाने में क्या घटी रह गयी थी?

यीशु के दुःख उठाने के *मूल्य* के सम्बन्ध में, यह सुझाव देना भी ईश-निन्दा है कि दुःखों में कुछ घटी थी। उसके प्रायश्चित्त के बलिदान की योग्यता *(merits)* असीम है। उसकी सिद्ध आज्ञाकारिता में कुछ भी जोड़ा नहीं जा सकता है कि वह और अधिक सिद्ध बना दिया जाए। सिद्धता से अधिक कुछ भी सिद्ध नहीं हो सकता है। जो पूर्णतः सिद्ध है उसे बढ़ाया नहीं जा सकता है।

यीशु के दुःख उठाने की योग्यता *(merits)* उस प्रत्येक पाप का प्रायश्चित्त करने के लिए पर्याप्त है जो कभी किया गया है या जो कभी किया जाएगा। उसका एक ही बार सदा के लिए किया गया प्रायश्चित्त मृत्यु को दोहराए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है (इब्रानियों 10:10)। पुराने नियम के बलिदानों को इसी कारण से दोहराया जाता था क्योंकि वे आने वाली वास्तविकता की असिद्ध परछाइयाँ थीं (इब्रानियों 10:1)।

यह संयोग से नहीं था कि रोमन कैथोलिक कलीसिया ने योग्यताओं के कोष *(treasury of merits)* की अपनी अवधारणा का समर्थन करने के लिए कुलुस्सियों 1:24 में पौलुस के शब्दों को उपयोग किया, जिसके अनुसार पापियों की घटियों को पूर्ण करने के लिए सन्तों की योग्यताओं को ख्रीष्ट की योग्यता के साथ जोड़ा जाता है। यह सिद्धान्त प्रोटेस्टेन्ट धर्मसुधार *(Reformation)* के बवण्डर के केन्द्र में था। ख्रीष्ट के दुःख उठाने की पर्याप्तता और सिद्धता पर लगा यही वह ग्रहण *(eclipse)* था जो मार्टिन लूथर के प्रतिवाद के केन्द्र में था।

यद्यपि हम प्रबलता से रोम द्वारा इस खण्ड की व्याख्या को नकारते हैं, हमारा प्रश्न तो अभी भी बना हुआ है। यदि पौलुस के दुःख उठाने ने ख्रीष्ट के दुःखों की घटी में योग्यता को नहीं जोड़ा, तो उसने क्या जोड़ा?

इस कठिन प्रश्न का उत्तर ख्रीष्ट के अपमान में सहभागी होने के लिए विश्वासियों की बुलाहट के विषय में नए नियम के विस्तृत शिक्षा में पाया जाता है। हमारे बपतिस्मा का अर्थ है कि हम ख्रीष्ट के साथ गाड़े गए हैं। पौलुस ने बारम्बार बताया कि जब तक हम यीशु के अपमान में भाग लेने के लिए इच्छुक नहीं होंगे, हम उसकी महिमा में भी भाग नहीं लेंगे (2 तीमुथियुस 2:11–12 देखें)।

पौलुस आनन्दित हुआ क्योंकि उसका दुःख उठाना कलीसिया के लाभ के लिए था। कलीसिया को ख्रीष्ट का अनुसरण करने के लिए बुलाया गया है। उसे *विया डोलोरोसा (Via Dolorosa)* अर्थात् *दुःख के मार्ग* पर चलने के लिए बुलाया गया है। कलीसिया के लिए पौलुस का प्रिय रूपक मानवीय देह का था। कलीसिया को ख्रीष्ट की देह कहा गया है। एक अर्थ में, कलीसिया को "सतत देहधारण" *(continuing incarnation)* कहना उचित है। कलीसिया वास्तव में पृथ्वी पर यीशु की रहस्यमय तथा आध्यात्मिक देह है।

ख्रीष्ट ने अपनी कलीसिया को स्वयं से इतनी निकटता से जोड़ा है कि जब उसने दमिश्क के मार्ग पर पौलुस को बुलाया तो उसने कहा, "शाऊल! शाऊल! तू *मुझे* क्यों सताता है?" (प्रेरितों के काम 9:4)। शाऊल वस्तुतः यीशु को नहीं सता रहा था। यीशु तो पहले ही स्वर्ग पर चढ़ चुका था। वह पहले से ही शाऊल की शत्रुता की पहुँच से बाहर था। शाऊल मसीहियों को सताने में व्यस्त था। परन्तु यीशु अपनी कलीसिया के साथ इतनी एकजुटता का अनुभव करता था कि उसने अपनी देह, अर्थात् कलीसिया पर किए गए आक्रमण को, स्वयं उसके प्रति व्यक्तिगत आक्रमण माना।

कलीसिया ख्रीष्ट नहीं है। ख्रीष्ट सिद्ध है; कलीसिया सिद्ध नहीं है। ख्रीष्ट छुटकारा देने वाला है; कलीसिया छुटकारा प्राप्त किए गए लोगों की संगति है। परन्तु कलीसिया ख्रीष्ट की है। कलीसिया ख्रीष्ट द्वारा छुड़ाई गई है। कलीसिया ख्रीष्ट की दुल्हन है। ख्रीष्ट कलीसिया में निवास करता है।

इस एकजुटता *(solidarity)* के प्रकाश में, कलीसिया ख्रीष्ट के दुःखों में सहभागी होती है। परन्तु यह सहभागिता ख्रीष्ट की योग्यता में कुछ नहीं जोड़ती है। मसीहियों का दुःख उठाना अन्य लोगों को लाभ पहुँचा सकता है, परन्तु वे कभी भी प्रायश्चित्त के स्तर पर नहीं होते हैं। मैं किसी के पापों के लिए, यहाँ तक कि स्वयं के पापों के लिए भी, प्रायश्चित्त नहीं कर सकता हूँ। फिर भी मेरे दुःख उठाने से अन्य लोगों को बड़ा लाभ हो सकता है। मेरा दुःख उठाना उस व्यक्ति की साक्षी के रूप में भी कार्य कर सकता है जिसका दुःख उठाना प्रायश्चित्त *था।*

"साक्षी" के लिए नये नियम का शब्द *मार्टुस (martus)* अंग्रेज़ी शब्द *मार्टर (martyr,* अर्थात् शहीद) का स्रोत है। ख्रीष्ट के लिए दुःख उठाकर मरने वालों को शहीद कहा गया है क्योंकि उनके दुःख उठाने के द्वारा उन्होंने ख्रीष्ट की साक्षी दी।

यीशु के क्लेशों की घटी वह निरन्तर जारी रहने वाला दुःख उठाना है जिसे सहने के लिए परमेश्वर अपने लोगों को बुलाता है। परमेश्वर प्रत्येक पीढ़ी के लोगों को दुःख उठाने के लिए बुलाता है। एक बार फिर से, यह दुःख उठाना ख्रीष्ट की योग्यता में किसी घटी को पूर्ण करने के लिए नहीं, वरन् परमेश्वर के सिद्ध दुःख उठाने वाले दास के साक्षियों के रूप में अपनी नियति *(destinies)* को पूरा करने के लिए है।

व्यावहारिक रूप से इसका क्या अर्थ है? मेरे पिता को कई मस्तिष्क रक्तस्राव *(cerebral hemorrhages)* हुए जिनसे उन्हें बहुत कष्ट हुआ और जिनके कारण अन्ततः उनका जीवन समाप्त हो गया। मैं निश्चित हूँ कि जब वे दुःख सह रहे थे, तो उन्होंने परमेश्वर से पूछा होगा, "क्यों?" ऊपरी रीति से देखा जाए, तो उनका दुःख उठाना व्यर्थ में था। ऐसा प्रतीत हुआ कि उनकी पीड़ा का कोई भला कारण नहीं था।

मैं बहुत सावधानी के साथ इस बात को रखना चाहता हूँ। मैं नहीं सोचता हूँ कि मेरे पिता का

दुःख उठाना किसी भी रीति से मेरे पापों के लिए प्रायश्चित्त के लिए था। न ही मैं सोचता हूँ कि मैं इस सम्बन्ध में परमेश्वर के विचारों को जान सकता हूँ कि मेरे पिता के दुःख उठाने के पीछे क्या कारण था। परन्तु मैं यह जानता हूँ:

मेरे पिता के दुःख उठाने से मेरे जीवन पर बहुत बड़ा प्रभाव डाला। मैं अपने पिता की मृत्यु के द्वारा ही ख्रीष्ट के पास लाया गया था। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि मेरे पिता इस मूल कारण से दुःख उठाने और मरने के लिए बुलाए गए कि मैं एक मसीही बन सकूँ। मैं उसमें परमेश्वर के सम्प्रभु उद्देश्य को नहीं जानता हूँ। परन्तु मैं यह अवश्य जानता हूँ कि परमेश्वर ने मेरे लिए उस दुःख उठाने को छुटकारे के साधन के रूप में *उपयोग* किया। मेरे पिता का दुःख उठाना मुझे दुःख उठाने वाले उद्धारकर्ता की शरण में ले गया।

हम यीशु के अनुयायी हैं। हम गतसमनी की वाटिका में उसका अनुसरण करते हैं। हम न्याय के भवन में अनुसरण करते हैं। हम *विया डोलोरोसा* पर अनुसरण करते हैं। हम मृत्यु तक अनुसरण करते हैं। परन्तु सुसमाचार घोषणा करता है कि हम स्वर्ग के फाटकों से होते हुए भी अनुसरण करते हैं। क्योंकि हम उसके साथ दुःख उठाते हैं, हम उसके साथ जिलाए भी जाएँगे। यदि हम उसके साथ अपमानित होते हैं, तो हम उसके साथ महिमान्वित भी होंगे।

यीशु के कारण, हमारा दुःख उठाना व्यर्थ नहीं है। यह उस परमेश्वर की समग्र योजना का भाग है, जिसने दुःख उठाने के मार्ग के द्वारा जगत को छुड़ाने का निर्णय लिया है।

अध्याय तीन

दुःख उठाने का एक वैयक्तिक अध्ययन

एक बड़ी कम्पनी का संचालन उपाध्यक्ष *(vice president)* अपनी कम्पनी के एक क्षेत्रीय प्रबन्धक *(district manager)* के प्रति बहुत ईर्ष्या रखने लगा। उस क्षेत्रीय प्रबन्धक का कम्पनी के स्वामी के साथ अच्छा सम्बन्ध था। ईर्ष्या के कारण संचालन उपाध्यक्ष ने स्वामी के समक्ष क्षेत्रीय प्रबन्धक पर आरोप लगाया।

उसने सुझाव दिया, "मैं सोचता हूँ कि हमें जयन्त को कम्पनी से हटाना चाहिए।"

स्वामी ने पूछा, "क्यों? वह तो हमारे कम्पनी के सबसे उपयोगी प्रबन्धकों में से एक है। मैं सोचता हूँ कि वह बहुत अच्छा कार्य कर रहा है। और इसके साथ-साथ, वह तो कम्पनी का एक सबसे अधिक निष्ठावान कर्मचारी है।"

"निष्ठावान? आप सोचते हैं कि वह निष्ठावान है?" उपाध्यक्ष ने व्यंग्यात्मक रीति से पूछा। "वह इसलिए निष्ठावान है क्योंकि आप उसको इतना अधिक वेतन देते हैं। आप उसे ऐसी सुविधाएँ देते हैं जो किसी और को नहीं प्राप्त होती हैं। इसके साथ-साथ आपने तो उसके चारों ओर सुरक्षा का घेरा लगाया हुआ है। सभी लोग जानते हैं कि वह आपका प्रिय चेला है। क्या पता वह कितना निष्ठावान बना रहेगा यदि आप उस पर दबाव डालें। उसका वेतन और उसकी सुविधाओं को घटाइए, फिर देखिए कि वह कितना निष्ठावान है।"

स्वामी इस सुझाव से चिढ़ गया, परन्तु उसने चुनौती को स्वीकार किया। उसने कहा, "ठीक है

देखते हैं। उसके वेतन को घटा दो, दबाव डालो। मैं सोचता हूँ आप देखेंगे कि जयन्त अपनी निष्ठा को बनाए रखेगा।"

उपाध्यक्ष ने कटाक्षपूर्ण हँसी के साथ कहा, "आप मुझे अवसर तो दीजिए और वह आपको और इस कम्पनी को एक क्षण में धोखा दे देगा।"

उपाध्यक्ष ने बैठक कक्ष से निकलकर योजना बनाई कि वह जयन्त को कैसे नाश करे। पहले, उसने उसके वेतन को आधा किया और उसके स्वास्थ्य बीमा को रद्द किया। फिर उसने जयन्त के सहकर्मियों के पास जाकर उनको अपनी योजना में सम्मिलित किया। वे उस योजना में जुड़ने के लिए उत्सुक थे। उन्होंने प्रसन्नता के साथ योजनाएँ बनाईं कि जयन्त की उपयोगिता के स्तर को कैसे घटाया जाए। उन्होंने लेखों में गड़बड़ी की और उसके संयन्त्र *(machinery)* के कुछ उपकरणों को बिगाड़ दिया। अचानक, जयन्त के संयन्त्र के प्रति बहुत से ग्राहकों ने गुणवत्ता में कमी होने का आरोप लगाया।

दबाव तो बहुत था, परन्तु जयन्त उस पर प्रबल हुआ। उसने अचानक आयी रहस्यात्मक समस्याओं का समाधान करने के लिए कठोर परिश्रम किया। इसके कारण उसके विरोधियों का बैर और बढ़ता ही गया। उन्होंने और दबाव डालना आरम्भ किया। संयन्त्र में "दुर्घटनाएँ" होने लगीं। षड्यंत्रकारियों ने जयन्त के परिवार को भी सताना आरम्भ किया। और इन सबके साथ-साथ, जयन्त अचानक रोग से ग्रसित हो गया। कम्पनी के संचालन उपाध्यक्ष ने एक भ्रष्ट चिकित्सक को घूस दी जिससे कि उसने जयन्त के भोजन में एक संक्रामक कीटाणु मिला दिया।

जयन्त का जीवन टूट-टूट कर बिखरने लगा। उसके रोग ने उस पर प्रभाव डाला। संयन्त्र की घटती हुई उत्पादकता के साथ उसकी सफलता घटने लगी।

उसके कुछ निकटतम मित्रों ने आकर उसकी आलोचना की। उन्होंने कहा, "तुम्हारी समस्या क्या है, जयन्त? तुम में अब वो पुरानी बात नहीं रही। तुम सही से कार्य नहीं कर रहे हो। इसीलिए तो उन्होंने तुम्हारे वेतन को घटा दिया।"

जयन्त के मित्र सोचने लगे कि वे जो पहले उसके विषय में सोचते थे, वह सही नहीं था। उन्होंने सोचा कि जयन्त ने कुछ तो बुरा किया होगा जिससे कि उसका जीवन अचानक इतना बिगड़ गया है। उसके एक मित्र ने उसे "आत्मिक" सम्मति भी दी। उसने कहा, "जयन्त, मैं प्रेमपूर्वक तुमसे कुछ कहना चाहता हूँ। तुम पर जो भी समस्याएँ आई हैं, ये तो परमेश्वर की ओर से ही होंगी। मैं सोचता हूँ कि यह तुम्हारे जीवन में किसी ऐसे पाप के लिए एक प्रकार का दण्ड है जिसे तुमने अंगीकार नहीं किया है। सम्भवतः यदि तुम पश्चात्ताप करो तो तुम्हारा जीवन सुधरने लगेगा।"

जयन्त ने उत्तर दिया, "सम्भवतः तुम सही कह रहे हो। मैं अपने किसी ऐसे कार्य को नहीं जानता हूँ जिसके कारण यह सब मेरे साथ हो रहा है, परन्तु मैं निश्चय ही अपने प्राण को जाँचूँगा।"

"परन्तु कम्पनी के स्वामी ने तुम्हारा वेतन आधा कर दिया है। क्या तुम इस बात के सन्देश को नहीं समझ रहे हो?

जयन्त ने उत्तर दिया, "अब स्वामी के पास ऐसा करने का अधिकार है। उन्होंने सर्वदा मेरे साथ उचित ही किया है। मैं यह तो निश्चित रूप से जानता हूँ कि वे जानते हैं कि वे क्या कर रहे हैं। उनके पास ऐसा करने का कोई तो अच्छा कारण होगा।

फिर जयन्त की पत्नी भी उससे कहने लगी। एक सन्ध्या को उसने कहा, "जयन्त, मैं सोचती हूँ कि तुम्हें त्यागपत्र दे देना चाहिए। तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ रहा है और कम्पनी तुमसे बुरा व्यवहार कर रही है। इतने वर्षों की तुम्हारी विश्वासयोग्य सेवा के पश्चात्, तुम्हें वे इस प्रकार से धन्यवाद दे रहे हैं। आओ हम जाकर किसी अन्य स्थान में पुनः आरम्भ करें। तुम पागल ही होंगे यदि इस प्रकार की कम्पनी के लिए कार्य करते रहना चाहते हो।"

जयन्त ने कहा, "नहीं प्रिय, मैं कम्पनी को नहीं छोड़ सकता हूँ।"

उसकी पत्नी ने पूछा, "क्यों नहीं?"

"कम्पनी के स्वामी ने जो मेरे लिए किया, उसके कारण मुझे लगे रहना है।"

"क्या तुम पागल हो? उसने तुम्हारे लिए कुछ नहीं किया है। तुमने उसे अपने जीवन के उत्तम वर्ष दिए और वह तुम्हारे साथ ऐसा कर रहा है। उल्टा *तुमने* उसके लिए बहुत कुछ किया है! उसने तुम्हारे लिए कुछ भी नहीं किया है। जयन्त, तुम सच्चाई का सामना क्यों नहीं करते हो? कम्पनी के स्वामी ने जैसा भद्दा व्यवहार किया है, वह स्वयं भी उतना ही भद्दा है।

जयन्त ने अन्ततः क्रुद्ध होकर कहा, "नहीं! मैं तो विश्वास ही नहीं कर सकता कि वह जानबूझकर मुझसे दुर्व्यवहार करेंगे।"

"फिर तो तुम्हें उससे आमने-सामने बात करनी चाहिए। मैं यह सुनना चाहूँगी कि वह क्या कहेगा जब तुम उससे आमने-सामने बात करोगे।"

जयन्त ने कहा, "ठीक है, ठीक है, मैं उनसे बात करूँगा।"

अगले दिन जयन्त ने कम्पनी के स्वामी से मिलने के लिए उससे समय लिया। जब उसे भव्य कार्यालय में प्रवेश कराया गया, तो कम्पनी के स्वामी ने मित्रतापूर्वक उसका स्वागत करते हुए पूछा, "जयन्त, मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ।"

जयन्त ने तुरन्त अपनी मुख्य बात कह डाली। उसने क्रोध में होकर अपने सब कष्टों को बताया। उसने पूछा, "यहाँ हो क्या रहा है? आपने मेरा वेतन आधा कर दिया। आखिर, आप किनारे खड़े होकर देखते रहे जब चोर लोगों ने मेरे संयन्त्र के कार्य को बिगाड़ा। आपने मेरे स्वास्थ्य बीमा को हटा दिया। इस प्रकार के व्यवहार को सहने के लिए मैंने ऐसा क्या किया है? मैं आपके और कम्पनी के प्रति वर्षों से निष्ठावान रहा हूँ और अब आप मुझसे ऐसा व्यवहार कर रहे हैं! आप सोचते क्या हैं, कि आप कौन हैं?"

कम्पनी के स्वामी ने जयन्त के दोषारोपण को धैर्य से सुना। फिर उसने उत्तर दिया, "जयन्त मैं तुमसे कुछ प्रश्न पूछना चाहता हूँ। क्या तुम इस कम्पनी के स्वामी हो?"

जयन्त ने उत्तर दिया, "नहीं महोदय।"

क्या तुमने इस पूरे स्थान को आरम्भ से खड़ा किया? क्या तुमने इस कम्पनी में अपने धन को दाँव पर लगाया? क्या तुम महीने में दो बार लोगों को वेतन देते हो? क्या तुम कम्पनी के स्वामी हो?"

इन सब प्रश्नों के प्रति जयन्त ने अपना सिर न में हिलाया।

"मुझे बताओ जयन्त, तुम कौन होते हो मुझे यह बताने वाले कि मैं अपनी कम्पनी को कैसे चलाऊँ? मैंने तुम्हें वह सब दिया है, जिसकी प्रतिज्ञा मैंने तुमसे की और इससे बढ़कर भी दिया है। अपने अनुबन्ध पत्र को देखो। क्या उसमें लिखा है कि वे सब सुविधाएँ तुम्हें मिलनी चाहिए जिन्हें मैंने इतने वर्षों के लिए तुम्हें दी हैं।"

फिर से जयन्त ने सत्यवादी उत्तर दिया, "नहीं महोदय, आप सर्वदा मेरे प्रति दयालु ही रहे हैं।"

"तुम कहते हो कि मैं दयालु रहा हूँ। क्या तुम सोचते हो कि मैं पलट गया हूँ? क्या तुम सोचते हो कि मैं नहीं जानता कि अभी क्या हो रहा है? मैं अच्छी रीति से जानता हूँ कि तुम्हारे संयन्त्र में क्या हो रहा है। मैं बातों को ध्यान से देख रहा हूँ। मेरी दृष्टि से कुछ भी छिपा नहीं है।

"जयन्त, मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे लिए एक कार्य करो। तुमने भूतकाल में मुझ पर भरोसा किया। अब भी मुझ पर भरोसा करो। मैं तुम्हें आश्वासन देता हूँ कि बातें ठीक हो जाएँगी। मेरे पास एक योजना है। तुम्हारे विरुद्ध षडयन्त्र रचने वालों को उनका उचित दण्ड मिलेगा। क्या तुम सच में सोचते हो कि मैं उन्हें ऐसे ही छोड़ दूँगा?"

जयन्त को बहुत बुरा लगा। उसने क्षमा माँगना आरम्भ कर दिया। उसने कहा, "मुझे क्षमा करें। मेरे पास कोई अधिकार नहीं है कि मैं यहाँ आकर आप पर ये सारे आरोप लगाऊँ। मैंने एक बार कुड़कुड़ाया है, परन्तु आगे को नहीं कुड़कुड़ाऊँगा। आप मेरे मुँह से प्रतिवाद का एक और शब्द कभी नहीं सुनेंगे। आप अपनी इच्छा के अनुसार करें। मैं आप पर भरोसा करता हूँ।"

कम्पनी का स्वामी मुस्कराया। फिर उसने फोन पर अपने सेक्रटरी (सचिव) से कहा, "संचालन उपाध्यक्ष को तुरन्त मेरे कार्यालय में भेजिए।"

"अभी मत जाओ जयन्त? मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ अन्तिम शब्द हैं। सबसे पहले मैं चाहता हूँ कि तुम जानो कि जब संचालन उपाध्यक्ष इधर आएगा, तो मैं उसे हटाने वाला हूँ। कल सुबह से, तुम संचालन उपाध्यक्ष होगे। तुम्हें अपने पहले के वेतन से दोगुना अधिक वेतन मिलेगा। तुम्हारे स्वास्थ्य बीमा को मैं तुम्हें पुनः दे रहा हूँ। और मैंने एक विशेषज्ञ का भी पता लगाया है जो तुम्हारे रोग को ठीक कर सकता है।

"जयन्त, तुम मेरे प्रति निष्ठावान रहे हो, सभी कार्यकर्ता से भी अधिक। तुमने मेरे पीठ-पीछे बिना शाप दिए बहुत कुछ को सहा है। अब समय है कि तुम सही ठहराए जाओ।"

जयन्त ने कहा, "मैं जानता था! कुछ सन्देह के क्षण अवश्य आए, परन्तु अपने भीतर मैं जानता था कि आप सब कुछ को ठीक कर देंगे। अब मैं बहुत लज्जित हूँ कि मैंने आप पर वे सब आरोप लगाए थे। आप मुझे कैसे क्षमा कर सकते हैं?

"जयन्त तुम चिन्ता मत करो। क्षमा करना—यह एक ऐसा कार्य है जो मैं जानता हूँ कि कैसे करना है। क्षमा करना मेरी विशेषता है।"

क्या पाप और दुःख जुड़े हुए हैं?

अब तक आप सम्भवतः पहचान गए होंगे कि यह कहानी बाइबल के पात्र अय्यूब की है, जिसे मैंने आधुनिक शब्दावली का उपयोग करके बताया है। अय्यूब की कहानी मानव दुःख उठाने का एक वैयक्तिक अध्ययन *(case study)* है। यह एक ऐसे धर्मी पुरुष के जीवन का वर्णन करती है जिसने इस जगत में बहुत कष्ट उठाया। उसके मित्रों की असंवेदनशीलता के कारण उसका कष्ट बहुत तीव्र हुआ। उन्होंने एक ऐसी बात को मान लिया जिसे बाइबल मना करती है। उन्होंने मान लिया कि अय्यूब के दुःखों की मात्रा उसके पाप के अनुपात में थी। वे मानते थे कि हमारे दुःख और दोष के मध्य हमारे जीवन में कोई सम्बन्ध है। क्योंकि अय्यूब का दुःख महान् था, यह इस बात का चिह्न था कि उसका पाप भी उतना ही महान् था।

परमेश्वर इस समीकरण की अनुमति नहीं देता है। हम जन्म से अन्धे पुरुष के विषय में उस प्रश्न को स्मरण करते हैं जिसे यीशु से पूछा गया था: "फिर जाते हुए उसने एक मनुष्य को देखा जो जन्म से अन्धा था। और उसके चेलों ने यह कहते हुए उससे पूछा, 'रब्बी, किसने पाप किया, इस मनुष्य ने या इसके माता-पिता ने कि यह अन्धा जन्मा?' यीशु ने उत्तर दिया, 'न तो इस मनुष्य ने पाप किया, न ही इसके माता-पिता ने, पर यह इसलिए हुआ कि परमेश्वर के कार्य उसमें प्रकट हों'" (यूहन्ना 9:1–3)।

तर्क विज्ञान में एक प्रकार का अनौपचारिक तर्कदोष है जिसे झूठी दुविधा *(false dilemma)* का तर्कदोष कहा जाता है। कभी-कभी इसे झूठे विभाजन का तर्कदोष कहा जाता है। तर्क करने में यह त्रुटि तब होती है जब किसी समस्या को इस रीति से प्रस्तुत किया जाता है कि मानो उसे दो ही रीतियों से समझा जा सकता है, जबकि वास्तव में तीन या उससे अधिक विकल्प होते हैं।

कुछ विषय तो निस्सन्देह "हाँ" या "न" के होते हैं। उदाहरण के लिए, या तो कोई परमेश्वर है या फिर नहीं है। कोई तीसरा विकल्प नहीं है। परन्तु मात्र इस कारण से कि कुछ प्रश्नों को दो

विकल्पों में बाँटा जा सकता है, इसका अर्थ यह नहीं है कि *सब* प्रश्नों के साथ यही किया जा सकता है। अन्धे जन्मे पुरुष के सम्बन्ध में शिष्य यही त्रुटि कर रहे थे।

जब शिष्यों ने अन्धे पुरुष की दुर्दशा पर ध्यान दिया, तो उन्होंने मान लिया कि इसके लिए दो ही स्पष्टीकरण सम्भव थे। अन्धापन या तो पुरुष के पाप के कारण था या फिर उसके माता-पिता के पाप के कारण।

उनके सोचने में त्रुटि थी, परन्तु यह पूर्णतः आधारहीन सोच नहीं थी। वे एक रीति से ठीक थे। वे पवित्रशास्त्र के विषय में इतना तो जानते थे कि समझ सकें कि दुःख और पाप के मध्य एक सम्बन्ध है। वे समझते थे कि दुःख और मृत्यु पाप के कारण ही जगत में प्रवेश हुए। जगत में पाप के प्रवेश से पूर्व, कोई दुःख और मृत्यु नहीं थी।

मृत्यु अप्राकृतिक है। यह पतित मनुष्य के लिए प्राकृतिक हो सकती है, परन्तु सृष्टि के समय यह मनुष्य के लिए प्राकृतिक नहीं थी। मनुष्य को मरने के लिए नहीं सृजा गया था। वह मृत्यु की सम्भावना के साथ सृजा गया, किन्तु मृत्यु की अनिवार्यता के साथ नहीं। मृत्यु पाप के परिणामस्वरूप आयी। यदि पाप नहीं हुआ होता, तो कोई मृत्यु नहीं होती। परन्तु जब पाप ने प्रवेश किया, तो पतन का शाप जुड़ गया। सब दुःख और मृत्यु पाप से ही प्रवाहित होते हैं।

शिष्य एक और बिन्दु पर भी थोड़ा-बहुत ठीक थे। वे जानते थे कि कभी-कभी किसी व्यक्ति के पाप और उसके दुःख उठाने के मध्य सीधा सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए, मूसा के प्रति मरियम के पाप के दण्डस्वरूप, परमेश्वर ने उसे कोढ़ से ग्रसित किया (गिनती 12:9–10)।

शिष्यों की त्रुटि उनकी यह धारणा थी कि व्यक्ति के पाप और व्यक्ति के दुःख के मध्य *सर्वदा* एक सीधा सम्बन्ध तथा निर्धारित अनुपात है। इस जगत में, कुछ लोग अपने पापों की तुलना में बहुत कम दुःख उठाते हैं, जबकि अन्य लोग अधिक दुःख उठाते हैं। यह असमानता दाऊद की पुकार में दिखती है, "हे यहोवा, दुष्ट लोग कब तक आनन्द मनाते रहेंगे?" (भजन 94:3)।

ऐसे समय होते हैं जब हम अकारण अन्य लोगों के हाथों से दुःख उठाते हैं। जब ऐसा होता है, तो हम अन्याय से पीड़ित होते हैं। परन्तु यह अन्याय क्षैतिज तल *(horizontal plane)* पर घटित होता है। कोई भी ऊर्ध्वाधर तल *(vertical plane)* पर अन्याय से पीड़ित नहीं होता है। अर्थात्, परमेश्वर के साथ सम्बन्ध के सन्दर्भ में कोई भी अन्याय नहीं सहता है। जब तक हम पर पाप का दोष है, हम यह कह कर विरोध नहीं कर सकते हैं कि हमसे दुःख उठवाने में परमेश्वर अन्यायी है।

यदि कोई अन्याय करके मुझसे दुःख उठवाता है, तो मेरे पास परमेश्वर के सम्मुख न्याय की माँग करने का पूरा अधिकार है, जैसे कि अय्यूब ने किया था। फिर भी, मैं परमेश्वर के सम्मुख यह नहीं कुड़कुड़ा सकता हूँ कि मेरे ऊपर दुःख आने के लिए परमेश्वर उत्तरदायी है। दूसरे लोगों से सम्बन्ध के सन्दर्भ में, मैं निर्दोष हो सकता हूँ, परन्तु परमेश्वर से सम्बन्ध के सन्दर्भ में, मैं कोई निर्दोष पीड़ित नहीं हूँ। मनुष्यों के साथ मेरे सम्बन्धों में परमेश्वर से न्याय माँगना एक बात है। परन्तु परमेश्वर के साथ अपने सम्बन्ध में न्याय माँगना और ही बात है। एक पापी द्वारा परमेश्वर से न्याय माँगने से अधिक जोखिम भरी माँग कोई और नहीं हो सकती है। मेरे साथ सर्वाधिक कष्टदायी बात यह हो सकती है कि मैं परमेश्वर से शुद्ध न्याय प्राप्त करूँ।

"परमेश्वर ने उसमें भलाई का विचार किया"

इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए भी, तथ्य यह है कि शिष्य फिर भी झूठी दुविधा का तर्कदोष कर रहे थे। उन्होंने उस पुरुष के अन्धेपन के लिए कारण को केवल दो सम्भावित स्पष्टीकरण तक ही सीमित किया (उस पुरुष का पाप या उसके माता-पिता का पाप) जबकि इसको समझने का कम से कम एक अन्य विकल्प भी था, जिस पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया।

यीशु ने उनकी झूठी दुविधा को "न यह न वह" कहने के द्वारा ध्वस्त कर दिया। उस पुरुष के अन्धेपन का कारण उसका पाप नहीं था। न ही उसका कारण उसके माता-पिता के पाप थे। यीशु ने घोषणा की वह पुरुष इसलिए अन्धा जन्मा था "कि परमेश्वर के कार्य उसमें प्रकट हों।" अन्धा जन्मा यह पुरुष परमेश्वर की महिमा के लिए अन्धेपन से ग्रसित किया गया था।

यह चौंकानेवाला सत्य हमारे लिए एक महत्वपूर्ण शिक्षा है। यह हमें चेतावनी देता है कि हम अपने दुःखों के "क्यों" के विषय में हड़बड़ाकर निष्कर्ष पर न पहुँचें।

परमेश्वर ने उस पुरुष के अन्धेपन को अपनी महानतम् महिमा के लिए उपयोग किया। इस प्रकरण में, रोग और दुःख की "दुष्टता" को परमेश्वर के लिए उपयोगी बना दिया गया। परमेश्वर उस पर विजयी हुआ और उसने उसके माध्यम से अपनी महिमामय योजना को पूर्ण किया।

इसी के समान, हम यूसुफ के भयावह कष्ट को स्मरण करते हैं जिसे उसने अपने भाइयों के हाथ से सहा था। फिर भी भाइयों के कपट के द्वारा सम्पूर्ण इतिहास के लिए परमेश्वर की योजना पूरी हुई। अपने भाइयों के साथ मेल-मिलाप करते हुए, उसने कहा, "यद्यपि तुम लोगों ने मेरे लिए बुराई का विचार किया था; परन्तु परमेश्वर ने उसी बात में भलाई का विचार किया, जैसा आज के दिन प्रगट है कि बहुत से लोगों के प्राण बचे हैं" (उत्पत्ति 50:20)।

यहाँ हम बुराई के माध्यम से उद्धार पूरा करने के लिए परमेश्वर को कार्य करते हुए देखते हैं।

परमेश्वर के कार्य ने यूसुफ के भाइयों की बुराई की तीव्रता को किसी भी रीति से घटाया नहीं। उसी रीति से, यहूदा द्वारा यीशु का विश्वासघात एक बुरा कार्य था। उसके कारण यीशु पर अन्यायपूर्ण दुःख आए, जैसा कि यूसुफ अपने भाइयों के अन्याय द्वारा पीड़ित था। परन्तु सब अन्याय, सब पीड़ा और सब दुःख से ऊपर एक सम्प्रभु परमेश्वर है, जो अपनी उद्धार की योजना को बुराई के *ऊपर*, उसके *विरुद्ध* और यहाँ तक कि उसके *माध्यम से* भी पूरा करता है।

हर परिस्थिति में भरोसा करना

यीशु ने जो बात अन्धे पुरुष के विषय में अपने शिष्यों से कही, वह अय्यूब की पुस्तक में स्पष्ट रूप से प्रदर्शित है। यदि शिष्यों ने पुराने नियम की इस पुस्तक में निपुणता प्राप्त की होती, तो सम्भवतः वे झूठी दुविधा के तर्कदोष में नहीं पड़ते। उन्होंने वही त्रुटि की जो अय्यूब के मित्रों ने की थी।

अय्यूब ने अपने मित्रों के शब्दों पर आपत्ति जताई। उसका उत्तर हृदयस्पर्शी है: "मैं तो ऐसी बहुत-सी बातें सुन चुका हूँ। तुम सबके सब निकम्मे सान्त्वना देने वाले हो। क्या थोथी बातों का कोई अन्त नहीं? ऐसी कौन सी बात है जिससे चिढ़कर तू उत्तर देता है? यदि मैं तुम्हारे स्थान पर होता तो मैं भी तुम्हारे समान बातें करता, मैं भी तुम्हारे विरुद्ध बातें गढ़ता और तुम पर अपना सिर हिलाता। मैं अपने मुँह से तुम्हें हियाव बँधाता, मेरे होंठों की सान्त्वना तुम्हारी पीड़ा को कम कर देती" (अय्यूब 16:2–5)।

अय्यूब की पत्नी से उसको मिले परामर्श पर विचार करें:

> तब खुजलाने के लिए अय्यूब एक ठीकरा लेकर राख पर बैठ गया। तब उसकी पत्नी ने उससे कहा, "क्या तू अभी भी अपनी खराई पर स्थिर है? परमेश्वर की निन्दा कर और मर जा!"
>
> परन्तु उसने उससे कहा, "तू मूर्ख स्त्री के समान बातें करती है। क्या हम जो परमेश्वर के हाथ से सुख लेते हैं, दुःख न लें?"
>
> इन सब बातों में अय्यूब ने अपने होंठों से कोई पाप नहीं किया। (अय्यूब 2:8–10)

दुःख के मध्य व्यक्ति के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती, भले उद्देश्य से दी गई यह सम्मति होती है कि हार मान जाओ। यह सम्मति प्रायः उन लोगों से आती है जो हमारे निकट हैं और हमसे सर्वाधिक प्रेम करते हैं। यीशु के सबसे अच्छे मित्रों ने उसे यरूशलेम जाने से मना करने का प्रयास किया, जैसा कि हमने पिछले अध्याय में पतरस के झिड़कने के सम्बन्ध में देखा था।

उसी रीति से अय्यूब की पत्नी ने उससे कहा, "परमेश्वर की निन्दा कर और मर जा!" उसने अय्यूब को अपनी पीड़ा का समाधान करने के लिए अपनी खराई के साथ समझौता करने को कहा।

उसका उद्देश्य अच्छा था। निस्सन्देह उसमें अपने पति के प्रति दया थी। उसने उसे निकलने के लिए सरल मार्ग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। परन्तु उसके शब्दों ने अय्यूब की निराशा को केवल बढ़ाया था। अय्यूब नहीं समझता था कि परमेश्वर ने उसे दुःख उठाने के लिए क्यों बुलाया था, परन्तु वह समझता था कि परमेश्वर ने उसे दुःख उठाने के लिए अवश्य बुलाया *था।* उसके लिए अपनी बुलाहट के प्रति विश्वासयोग्य बने रहना कठिन था, उस स्थिति में भी जब उसके प्रिय जन उसको विश्वासयोग्यता के मार्ग से भटकाने का प्रयास कर रहे थे।

मैं एक बार दक्षिण कैलिफॉर्निया की एक बड़ी कलीसिया में गया और मुझे परिसर का भ्रमण कराया गया। भ्रमण के समय हम एक पत्थर की प्रतिमा के पास आए जिसे एक स्कैंडिनेवियाई शिल्पकार ने गढ़ा था। जब मैं कला के इस भव्य उदाहरण के सामने खड़ा था, तो मैं भाव विभोर हो गया। उसमें अय्यूब का चित्र दिखाया गया था और उसका शरीर पीड़ा में विकृत और विरूपित था। जिस रीति से उसकी माँसपेशियों को गढ़ा गया था, यह माइकल एंजेलो के कार्य का स्मरण दिलाता था।

जब मैं उस प्रतिमा को ध्यान से देख रहा था, मैंने "फलदायक क्षण" *(fruitful moment)* के सिद्धान्त पर आधारित कला की तकनीक के विषय में सोचा, जिसे दार्शनिक योहान्न हर्डर *(Johann Herder)* ने व्यक्त किया था। चित्रकार और शिल्पकार, चलचित्र यन्त्र *(movie camera)* के उपयोग के द्वारा अपने कार्य को नहीं करते हैं। जिन वस्तुओं का वे चित्र बनाते हैं, वे तो समय के एक क्षण में रुके हुए होते हैं। कलाकार का लक्ष्य है कि वह उस वस्तु के सार को व्यक्त करने के लिए एक फलदायक या अर्थपूर्ण क्षण पर ध्यान दें जो कि उसकी बड़ी कहानी को बताता है। यही कारण है कि किसी एक क्षण का चित्र बनाने से पूर्व, रेमब्रैन्ट *(Rembrandt)* ने बाइबल के पात्रों के दर्जनों रेखाचित्र बनाए। इसीलिए माइकल एंजेलो ने दाऊद को पत्थर उठाते हुए दिखाया। इसीलिए रोडैन *(Rodin)* का *विचारक (Thinker)* गहन चिन्तन करते हुए दिखता है। यही कारण है कि *पिएटा (Pieta)* प्रतिमा में ख्रीष्ट की देह उसकी माता के गोद में है।

जिस शिल्पकार ने अय्यूब के उस प्रतिमा को बनाया जिसे मैंने उस कलीसिया की वाटिका में देखा, उसने अय्यूब को उस फलदायक क्षण में प्रस्तुत किया—अर्थात् उसकी व्यथा के सबसे निम्न बिन्दु में, प्रतिमा के तल पर, ये शब्द पत्थर में खुदे हुए थे: "चाहे वह मुझे घात करे, फिर भी मैं उसमें आशा रखूँगा" (अय्यूब 13:15)।

जब मैंने प्रतिमा के तल पर उन शब्दों को देखा, तो मैं चुपचाप खड़े होकर रोया। अय्यूब की जीभ से साक्षी के इन शब्दों से अधिक साहस के शब्द किसी भी नाशवान मनुष्य ने नहीं कहे।

"क्यों" प्रश्न का उत्तर स्वयं परमेश्वर ही है

अय्यूब का भरोसा डगमगाया, परन्तु वह भरोसा कभी मरा नहीं। उसने विलाप किया, वह रोया,

उसने आपत्ति उठाई, उसने प्रश्न पूछा। उसने अपने जन्म के दिन को भी शाप दिया। परन्तु उसने अपनी एकमात्र सम्भव आशा अर्थात् परमेश्वर पर अपने भरोसे को दृढ़ता से थामे रखा। कभी-कभी तो अय्यूब मानो अपने नाखूनों मात्र से इसे थामे रहा। परन्तु वह डटा रहा। उसने अपने आपको कोसा। उसने अपनी पत्नी को डाँटा। परन्तु उसने कभी भी परमेश्वर को श्राप नहीं दिया।

अय्यूब ने अपने प्रश्नों के उत्तर के लिए परमेश्वर की दुहाई दी। वह वास्तव में जानना चाहता था कि उसे इतना दुःख उठाने के लिए क्यों बुलाया गया था। अन्ततः परमेश्वर ने उसे बवण्डर में से उत्तर दिया। परन्तु उत्तर वह नहीं था जिसकी अपेक्षा अय्यूब ने की थी। परमेश्वर ने अय्यूब के क्लेशों के लिए अय्यूब को अपने कारणों का विस्तृत स्पष्टीकरण देने से मना कर दिया। परमेश्वर ने अय्यूब को अपनी गुप्त इच्छा *(secret counsel)* नहीं बतायी।

मूलभूत रूप से परमेश्वर ने अय्यूब को केवल स्वयं के प्रकाशन के अतिरिक्त कोई और उत्तर नहीं दिया। यह तो मानो ऐसा था कि परमेश्वर ने उससे कहा, "अय्यूब, *मैं* ही तुम्हारा उत्तर हूँ।" अय्यूब को कहा गया कि किसी योजना पर नहीं, वरन् किसी जन पर भरोसा करे, अर्थात् एक व्यक्तिगत परमेश्वर पर, जो सम्प्रभु, बुद्धिमान और भला है। यह ऐसा था मानो परमेश्वर ने अय्यूब से कहा: "यह सीखो कि मैं कौन हूँ। जब तुम मुझे जानते हो, तो तुम हर परिस्थिति का सामना करने के लिए पर्याप्त जानते हो।"

परमेश्वर अय्यूब से कह रहा था कि वह सहज विश्वास *(implicit faith)* उपयोग करे। सहज विश्वास अन्धा विश्वास नहीं है। यह दृष्टि-युक्त विश्वास है, एक ऐसी दृष्टि से युक्त जो परमेश्वर के चरित्र के ज्ञान द्वारा प्रबुद्ध है।

यदि परमेश्वर ने स्वयं के विषय में कुछ नहीं प्रकट किया होता और फिर माँग करता कि हम इस अन्धकार में प्रवेश करें, तो ऐसी माँग करना अन्धा विश्वास होता। उस स्थिति में हमसे माँग की जाती कि हम अन्धकार के भयंकर गर्त में अन्धी छलाँग लगाएँ।

परन्तु परमेश्वर ऐसे मूर्खतापूर्ण कार्यों की माँग नहीं करता है। वह कभी भी हमें अन्धकार में छलाँग लगाने के लिए नहीं बुलाता है। इसके विपरीत, वह हमें बुलाता है कि हम अन्धकार को त्यागें और ज्योति में प्रवेश करें। यह ज्योति तो उसके मुख का प्रकाश है। यह उसके व्यक्ति का उज्जवल प्रकाश है, जो छाया के समान परिवर्तनशील नहीं है। जब आप परमेश्वर के व्यक्ति की महिमा के प्रतापी वैभव से ओत-प्रोत होते हैं, तो भरोसा अन्धा नहीं होता है।

जब अय्यूब ने घोषणा की, "चाहे वह मुझे घात करे, फिर भी मैं उसमें आशा रखूँगा," वह हमें बता रहा है कि यद्यपि परमेश्वर के विषय में उसका ज्ञान सीमित था, फिर भी यह गहरा था। वह परमेश्वर के चरित्र के विषय में जानने के लिए इतना पर्याप्त रूप से जानता था कि परमेश्वर विश्वसनीय था (और सर्वदा बना रहेगा)। विश्वसनीय होने का सीधा सा अर्थ भरोसा किए जाने के योग्य होना है।

परमेश्वर योग्य है कि उस पर भरोसा किया जाए। वह योग्य है कि हम उस पर भरोसा करें। हम जितना अधिक उसकी सिद्ध विशेषताओं को समझते हैं, उतना ही अधिक हम समझते हैं कि वह कितना विश्वसनीय है। इसलिए मसीही यात्रा विश्वास से विश्वास की ओर, सामर्थ्य से सामर्थ्य की ओर और अनुग्रह से अनुग्रह की ओर बढ़ती है। यह एक उत्कर्ष की ओर जाती है। विडम्बना की बात है कि यह प्रगति दुःख और क्लेश के माध्यम से होती है। यही कारण है कि पौलुस इन शब्दों को लिख सकता था: "इतना ही नहीं, परन्तु हम अपने क्लेशों में भी आनन्दित होते हैं, क्योंकि हम यह जानते हैं कि क्लेशों में धैर्य उत्पन्न होता है, तथा धैर्य से खरा चरित्र और खरे चरित्र से आशा उत्पन्न होती है; आशा से लज्जा नहीं होती है, क्योंकि पवित्र आत्मा जो हमें दिया गया है, उसके द्वारा परमेश्वर का प्रेम हमारे हृदयों में उण्डेला गया है" (रोमियों 5:3–5)।

यहाँ हमें बताया जा रहा है कि "आशा से लज्जा नहीं होती है।" अन्य अनुवाद एक ऐसी आशा की बात करते हैं जो निराश नहीं करती या जिसके कारण हम लजाते नहीं हैं।

अन्धी आशा भी, अन्धे विश्वास के समान हमें निराश करेगी। अन्धा विश्वास बिना किसी लक्ष्य के अन्धकार में टटोलता है। यह अनदेखी बाधाओं से ठोकर खाता है। यदि व्यक्ति अपनी सारी आशा एक ही लक्ष्य पर लगाए और वह लक्ष्य पूरा न हो, तो वह निराश होता है।

आशा अन्धी होने पर लज्जा का भी कारण हो सकती है। हम लज्जित होने के लिए ही जोखिम भरे कार्य करते हैं यदि हमारा साहस उचित प्रमाणित नहीं होता है। परन्तु ख्रीष्ट पर आधारित आशा के कारण लज्जा नहीं होगी। वे लोग लज्जित होंगे जिन्होंने अपनी आशा किसी और वस्तु पर रखी है। जिस आशा में दुःख को पराजित करने की सामर्थ्य नहीं है वह आशा विफल होती है।

यदि मैं उस परमेश्वर को छोड़ जिसके पास दुःख और अन्ततः मृत्यु के ऊपर शक्ति है, किसी और वस्तु या व्यक्ति पर आशा रखूँ, तो मैं अन्ततः निराश ही होऊँगा। दुःख मुझे आशाहीनता की ओर ढकेलेगा। मेरा चरित्र ढह जाएगा।

ख्रीष्ट की आशा ही है जो क्लेश और संकट के समयों में हमारे डटे रहने को सम्भव बनाती है। हमारे प्राणों के लिए एक लंगर है जो उस जन पर टिका हुआ है जो हम से पहले जाकर विजयी हुआ है।

अध्याय चार

दुःख उठाने का उद्देश्य

सभोपदेशक की पुस्तक में एक ईश्वरविज्ञानीय अन्तर्प्रवाह *(undercurrent)* है जो बार-बार प्रकट होता है। हम इसे देखते हैं जब सुलैमान पुष्टि करता है कि "प्रत्येक बात के लिए समय नियुक्त है, तथा आकाश के नीचे प्रत्येक घटना का एक समय है: जन्म का समय, तथा मरने का समय . . ." (सभोपदेशक 3:1–2), परन्तु यह विचार अन्य स्थानों में भी दिखता है। सुलैमान लिखता है: "मैं जानता हूँ कि परमेश्वर जो कुछ करता है वह सदा स्थिर रहेगा, उसमें न तो कुछ जोड़ा जा सकता है और न उसमें से कुछ घटाया जा सकता है" (3:14); "परमेश्वर के कार्य पर विचार कर, क्योंकि जिस वस्तु को उसने टेढ़ा किया है उसे कौन सीधा कर सकता है?" (7:13); और "इन सब बातों पर मैंने मन लगाकर विचार किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि धर्मी मनुष्य, बुद्धिमान मनुष्य तथा उनके कार्य परमेश्वर के हाथ में है" (9:1)। यह ईश्वरविज्ञानीय अन्तर्प्रवाह, जो सभोपदेशक मात्र में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण पुराने नियम में और देखा जाए तो सम्पूर्ण पवित्रशास्त्र में पाया जाता है, यह केवल इतना है: परमेश्वर सब कुछ को अपने उद्देश्यों के अनुसार ठहराता है। दूसरे शब्दों में, परमेश्वर सम्प्रभु है।

मेरे अनुभव में, मैं कभी भी स्वयं को मसीही कहने वाले ऐसे व्यक्ति से नहीं मिला हूँ जिसने मेरी आँखों से आँखे मिलाते हुए कहा हो कि वह परमेश्वर की सम्प्रभुता पर विश्वास नहीं करता है। हम में एक सहजज्ञानी समझ है कि यदि परमेश्वर वास्तव में परमेश्वर है, तो वह सम्प्रभु *अवश्य* होगा।

यह असम्भव है कि परमेश्वर सम्प्रभु न हो और किसी ईश्वर की कोई भी अवधारणा जो अ-सम्प्रभु हो वह तो ईश्वर है ही नहीं वरन् केवल एक मूर्ति है। इस प्रकार से विश्वासियों के लिए यह कहना सरल है, "मैं परमेश्वर की सम्प्रभुता पर विश्वास करता हूँ," और ऊपरी रीति से तो हम सब इसकी पुष्टि करते हैं।

परन्तु परमेश्वर की सम्प्रभुता पूर्ण रीति से अपनाए जाने के लिए और इस रीति से दैनिक जीवन में लागू किए जाने के लिए एक बहुत ही कठिन सिद्धान्त है कि हम वास्तव में जीवन को, यह विश्वास करते हुए जीएँ कि परमेश्वर वास्तव में सम्प्रभु है और उन परिस्थितियों में भी उस पर अपने भरोसे को बनाए रखें जब जीवन अनियन्त्रित हो रहा है।

इस सिद्धान्त को वास्तव में स्वीकार करने में कठिनाई का एक बड़ा भाग हमारे जीवन में दुःखों की उपस्थिति से आता है। हम कहते हैं कि हम विश्वास करते हैं कि परमेश्वर सम्प्रभु है, परन्तु जब हम अपने जीवन की कष्टप्रद घटनाओं का, हमारे साथ होने वाली बुरी बातों का और हमारे साथ होने वाली त्रासदियों का सामना करते हैं, तो हम या तो परमेश्वर की सम्प्रभुता पर या फिर परमेश्वर की भलाई पर प्रश्न उठाने लगते हैं। हम अपने आप से पूछते हैं, "एक सम्प्रभु और भला परमेश्वर मेरे साथ इन घटनाओं को कैसे होने दे सकता था? क्या उसके पास सामर्थ्य नहीं थी कि वह इन्हें रोके? क्या उसने मुझ से पर्याप्त मात्रा में प्रेम नहीं किया कि मुझे इस पीड़ा से बचाता?" हमारे देश में विकसित होने वाले बहुत सारे ईश्वरविज्ञान इसी समस्या से बचने के लिए बनाए गए हैं। वे प्रयास करते हैं कि मानव जीवन की त्रासदियों के उत्तरदायित्व से परमेश्वर को कैसे मुक्त किया जाए और कैसे मानव हृदय को सम्पूर्ण सम्प्रभुता दी जाए।

हम पहले ही देख चुके हैं कि हमारा दुःख उठाना परमेश्वर की व्यापक योजना का एक भाग है और यह भी कि परमेश्वर अपनी योजना को पूरा करने के लिए बुराई के माध्यम से भी कार्य कर सकता है। यह तथ्य कि परमेश्वर के पास योजना है, दिखाता है कि उसके पास उद्देश्य भी है। यह तथ्य कि वह सम्प्रभु है इस बात को दिखाता है कि वह तब भी उस उद्देश्य को पूरा कर रहा होता है जब वह हम पर दुःखों को आने देता है। जैसा कि अय्यूब के साथ हुआ, हो सकता है कि वह अपने उद्देश्य को प्रकट न करे, परन्तु हमारे पास पर्याप्त कारण है कि हम उस पर भरोसा करें।

सुलैमान की बुद्धि

सभोपदेशक का सातवाँ अध्याय इस विषय में हमें कुछ रुचिकर अन्तर्दृष्टि प्रदान करता है। अध्याय का आरम्भ सुनने में यह नीतिवचन की पुस्तक के एक भाग के जैसे लगता है क्योंकि उसमें सूक्तियों की श्रृँखला पाई जाती है। यह इन शब्दों से आरम्भ होता है "अच्छा नाम अनमोल इत्र से अधिक

अच्छा है" (पद 1)। प्राचीन जगत के बुद्धि साहित्य के लेखक प्रायः सद्गुणों या अमूर्त बातों की तुलना मूर्त वस्तुओं से किया करते थे। इस प्रकरण में, अच्छे नाम और अनमोल इत्र में तुलना की गई है। हम प्रायः "अनमोल" इत्र के विषय में नहीं सोचते हैं क्योंकि इत्र महँगे नहीं होते हैं और हमें ये हर औषधि भण्डार पर मिल जाते हैं। परन्तु प्राचीन जगत में पीड़ा और दुःख से छुटकारा देने वाले इत्र को प्राप्त करना बहुत कठिन होता था और इसलिए उसे बहुत बहुमूल्य समझा जाता था। परन्तु सुलैमान कहता है कि एक अच्छा नाम बहुमूल्य इत्र से भी अच्छा है। यह बहुत बहुमूल्य बात है।

फिर वह आगे कहता है, "और मृत्यु का दिन जन्म के दिन से अधिक अच्छा है।" इसको निराशावादी रीति से या फिर इसे एक पारलौकिक दृष्टिकोण से समझा जा सकता है। पुराने नियम में हम प्रायः दुःख में पड़े हुए लोगों को अपने जन्म के दिन को श्रापित करते हुए पाते हैं। अध्याय 1 में हमने अय्यूब, मूसा और यिर्मयाह की पुस्तकों से ऐसी टिप्पणियों पर ध्यान दिया था। जब व्यक्ति जीवन को इस संसार के दृष्टिकोण से देखता है, तो कभी-कभी वह जीने से थक जाता है।

एक अंग्रेज़ी गीत है "ओल्ड मैन रिवर *(Old Man River)*।" उसके शब्द हैं, "उस नौके को लादो, उस गठरी को उठाओ, थोड़े मतवाले हो जाओ तो कारावास में पहुँचते हो।" उस गीत में बार-बार दोहराया जाता है, "वह नदी तो बहती जाती है।" यह गीत निराशावाद की आधुनिक अभिव्यक्ति है, जो इस पँक्ति में अपने उत्कर्ष तक पहुँचती है: "मैं जीवन से थक गया हूँ, पर मरने से डरता हूँ।" यह भावना इस संसार के बहुत सारे लोगों के जीवन की परिभाषा देती है।

सभोपदेशक पुष्टि करता है कि व्यक्ति के मरने का दिन उसके जन्म दिन से उत्तम है। यह बात निराशावादी के लिए सत्य हो सकती है, जो अन्त तक पहुँचने के लिए प्रतीक्षा नहीं कर पा रहा है—कम से कम यदि वह अनन्त दण्ड के स्थान पर विस्मृति की स्थिति में चला जाए।

परन्तु यह विचार तो आशावादी, अर्थात् मसीही के लिए भी सत्य है। विश्वासी के लिए उसके जन्म का दिन एक अच्छा दिन है, परन्तु किसी भी मसीही के लिए मृत्यु का दिन, इस संसार में अनुभव किए गए दिनों का सबसे महान् दिन है क्योंकि उसी दिन वह घर को जाता है, उसी दिन वह चौखट को पार करता है, उसी दिन वह पिता के घर में प्रवेश करता है। वह दिन इस संसार में मसीही के लिए सर्वोच्च विजय का दिन है, परन्तु फिर भी यह एक ऐसा दिन है जिससे हम डरते हैं और जिसे हम जितना सम्भव हो सके टालते हैं क्योंकि हम *वास्तव में* विश्वास नहीं करते हैं कि हमारी मृत्यु का दिन हमारे जन्म के दिन से उत्तम है।

उत्सव और शोक के घर

सभोपदेशक 7 के 2–4 पदों में सुलैमान हमें एक विचित्र तुलना देता है: "उत्सव मनाने वाले के घर जाने की अपेक्षा शोक मनाने वाले के घर जाना अधिक अच्छा है, क्योंकि प्रत्येक मनुष्य का अन्त यही है और जीवित मनुष्य उस पर मन लगाकर विचार करेगा। शोक हँसी से अधिक अच्छा है, क्योंकि मुख के शोकित होने पर हृदय आनन्दित हो सकता है। बुद्धिमान का हृदय शोक करने वालों के घर में लगा रहता है, परन्तु मूर्खों का हृदय सुख-विलास करने वालों के घर में लगा रहता है।"

हरमन मेलविल *(Herman Melville)* सर्वकालिक लेखकों में से मेरे सबसे प्रिय लेखक हैं। मेरे विचार के अनुसार मेलविल की पुस्तक *मोबी डिक (Moby Dick)* अमरीकी व्यक्ति द्वारा लिखित सबसे महान् उपन्यास है। यह एक गहन ईश्वरविज्ञानीय पुस्तक है। परन्तु *मोबी डिक* के अतिरिक्त मेलविल ने दो अन्य पुस्तकें लिखीं हैं जो उतनी प्रसिद्ध नहीं हैं। उनमें से एक को, अर्थात् *बिली बड (Billy Budd)* पर, हॉलीवुड का एक चलचित्र बनाया गया। दूसरी, जिसका नाम *रेडबर्न (Redburn)* है, जो सत्य के लिए एक व्यक्ति की खोज के विषय में है। *रेडबर्न* में मेलविल का एक पात्र यह टिप्पणी करता है: "जब तक हम इस बात को न समझें कि एक दुःख दस हजार आनन्दों से बढ़कर है हम वह नहीं बनेंगे जिसे मसीहियत हमें बनाने का प्रयास कर रही है।"

मेलविल यहाँ क्या कह रहे थे? वे उसी बात को कह रहे थे जिसे हम सभोपदेशक की पुस्तक में पढ़ते हैं, जहाँ सुलैमान कहता है कि हमारे लिए उत्सव के घर में जाने से अच्छा है कि हम शोक के घर में जाएँ। यह एक ऐसा अन्तर है जो बुद्धि साहित्य में सामान्य है। यह बुद्धिमान और मूर्ख में अन्तर है। हम उत्सव के घर में जा सकते हैं, अर्थात् किसी प्रीतिभोज में जहाँ हम हँसते हैं, विश्राम करते हैं और मनोरंजन का आनन्द उठाते हैं। ऐसे प्रीतिभोज उतने गम्भीर नहीं होते हैं; वहाँ आनन्द लेने के लिए हमें विचारशील होने की आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही हँसने का समय होता है, नाचने का समय होता है, उत्सव मनाने का समय होता है—प्रीतिभोज करने का समय होता है। परन्तु उन परिस्थितियों में हम कितना सीखते हैं? उत्सव के समय प्राण की भलाई में बहुत कम योगदान करते हैं।

परन्तु जब हम शोक के घर में जाते हैं, हम एक ऐसे वातावरण में जाते हैं जहाँ हमारे हृदय पारलौकिक बुद्धि से तैयार हो सकते हैं। एक अर्थपूर्ण कहावत है जो हमें बताता है कि, "परमेश्वर हमें कभी-कभी पीठ के बल गिरा देता जिससे कि हम ऊपर की ओर देखें।" कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि केवल जब दुःख, पीड़ा या शोक हमारे जीवन में प्रवेश करते हैं, तभी हम गम्भीर होना आरम्भ करते हैं और अपने विचारों को अर्थपूर्ण रीति से परमेश्वर की बातों पर लगाते हैं। शोक का घर हमें ऐसा करने में सहायता करता है।

निश्चय ही यीशु प्रायः शोक के घर में हुआ करता था। उसे "दुःखी पुरुष और पीड़ा से जान पहचान" रखने वाले के रूप में वर्णित किया गया (यशायाह 53:3)। फिर भी उसने अपने आनन्द के विषय में बात की (यूहन्ना 15:11)। मसीही के लिए, दुःख के मध्य आनन्द हो सकता है, अर्थात् एक ऐसा आनन्द जो किसी क्षण की पीड़ा से परे है। परन्तु हम इस आनन्द के आधार को उत्सव के घर में नहीं समझते हैं। हम इसे शोक के घर में समझते हैं। शोक में हम परमेश्वर की भलाई पर मनन करना सीखते हैं। शोक में हम परमेश्वर की उस शान्ति को अनुभव करते हैं जो समझ से परे है।

सुलैमान आगे कहता है, "शोक हँसी से अधिक अच्छा है।" उसका अर्थ यह नहीं है कि शोक अच्छा है और हँसी बुरी है। यह अच्छे और उत्तम के मध्य तुलना है। सम्पूर्ण जीवन के सन्दर्भ में हमारे लिए हँसी से अधिक शोक का अनुभव करना उत्तम है। क्यों? सुलैमान हमें उत्तर देता है: "क्योंकि चेहरे के शोकित होने पर हृदय आनन्दित हो सकता है। बुद्धिमान का हृदय शोक करने वालों के घर में लगा रहता है, परन्तु मूर्खों का हृदय सुख-विलास करने वालों के घर में लगा रहता है।"

जब हम सभोपदेशक 7 के 13 पद तक पहुँचते हैं, तो हमें एक भिन्न दृष्टिकोण प्राप्त होता है। यहाँ सुलैमान लिखता है, "परमेश्वर के कार्य पर विचार कर।" सुलैमान हमें चुनौती देता है कि हम केवल परमेश्वर के कार्य को देखें ही नहीं वरन् उस पर गहन मनन करें। हम जहाँ भी दृष्टि करें उसकी हस्तकला को देख सकते हैं, परन्तु हमें केवल देखने से बढ़कर करने की आवश्यकता है—हमें उस पर विचार करना है, उसका अवलोकन करना है, उसके अर्थ को खोजना है, जिससे कि हम किसी प्रकार की समझ तक पहुँचें। हमें परमेश्वर के कार्य का अवलोकन करना है, जिससे कि हम परमेश्वर के चरित्र और परमेश्वर के स्वभाव को बेहतर रीति से समझ सकें। हमें ईश्वरविज्ञानीय रीति से सोचना सीखना होगा।

सुलैमान का अगला कथन एक प्रश्न है जो परमेश्वर के कार्य के विषय में उसके स्वयं के अवलोकन और विचार से निकलता है: "क्योंकि जिस वस्तु को उसने टेढ़ा किया है उसे कौन सीधा कर सकता है?" सम्भवतः पूरी बाइबल से मैं इसी पद को सबसे अधिक उद्धृत करता हूँ। मैं इसे प्रायः ऐसे लोगों के साथ गोल्फ खेलते समय उद्धृत करता हूँ जो गेन्द को सीधा नहीं मार पाते हैं। वे मुझसे कहते हैं कि सेवक होने के कारण मैं उनके लिए प्रार्थना करूँ। "क्या आप कुछ कर नहीं सकते आर.सी.? मैं गेन्द को सीधा मार नहीं पा रहा हूँ। क्या आप मेरी सहायता करेंगे?" मैं कहता हूँ, "बाइबल कहती है, 'जिस वस्तु को परमेश्वर ने टेढ़ा किया है, उसे कोई मनुष्य सीधा नहीं कर सकता है।'" यह तो इस पद का परिहासपूर्ण उपयोग है, परन्तु निस्सन्देह सुलैमान एक बहुत गहन सत्य को व्यक्त कर रहा है। यह परमेश्वर की सामर्थ्य और उसके अधिकार के विषय में है, अर्थात् उसकी सम्प्रभुता के विषय में बात करता है।

परमेश्वर का ईश्वरीय-प्रावधान

फिर 14 पद में सुलैमान लिखता है, "अपने समृद्धि के दिनों में आनन्दित रह, परन्तु अपने विपत्ति के दिनों में विचार कर–परमेश्वर ने जैसे एक को बनाया वैसे ही दूसरे को भी बनाया है।" यहाँ जिस विचार का संचार किया गया है, यह सम्भवतः मसीहियत की सबसे गुप्त रखी गई बात है। यह एक ऐसा विचार है जो वास्तव में परमेश्वर की सम्प्रभुता के विषय में है। परमेश्वर के कार्य पर विचार करने की बुलाहट केवल सृष्टि ही का नहीं वरन् इतिहास में परमेश्वर के कार्य का अवलोकन करने की बुलाहट है। यह परमेश्वर के ईश्वरीय-प्रावधान *(providence)* पर मनन करने की बुलाहट है, क्योंकि वह आनन्द की सब बातों *और* शोक की सब बातों का स्रोत है।

हमारी यह कहने की प्रवृत्ति होती है: "जब मेरे साथ आनन्ददायक घटनाएँ घटती हैं तो परमेश्वर पर मेरा भरोसा दृढ़ होता है, अर्थात् जब मेरे साथ अच्छा होता है। मेरे होंठ धन्यवाद और परमेश्वर की स्तुति करना चाहते हैं। हे परमेश्वर, इस अद्भुत वस्तु/ बात के लिए धन्यवाद।" दूसरे शब्दों में जब हम यत्न से प्रार्थना करते हैं और परमेश्वर "हाँ" कहता है, तो हम अपने जीवनों में ईश्वरीय-प्रावधान के हाथ को देखा करते हैं। परन्तु जब हम तीव्रता से किसी बात को चाहते हैं और यत्न से उसके लिए प्रार्थना करते हैं परन्तु परमेश्वर कहता है, "नहीं" तब क्या होता है? हम इस बात पर भी सन्देह करने लगते हैं कि क्या परमेश्वर का अस्तित्व है भी या नहीं। इस प्रकार से परमेश्वर से "नहीं" उत्तर हमारे जीवन में नकारात्मक है, जबकि "हाँ" उत्तर हमारे विश्वास की पुष्टि करता है।

सुलैमान कह रहा है कि यदि आप बुद्धिमान होना चाहते हैं, तो आपको दोनों के विषय में विचार करना चाहिए, क्योंकि परमेश्वर का हाथ "हाँ" में जितना सम्प्रभु है, वह "नहीं" में भी उतना ही सम्प्रभु है। परमेश्वर दुःख और समृद्धि दोनों में ही अपना ईश्वरीय-प्रावधान प्रदर्शित करता है। उसका सम्प्रभु शासन दोनों में प्रकट होता है।

सितम्बर 11, 2001 के दिन वर्ल्ड ट्रेड सेंटर और पेंटागन पर हुए आतंकवादी आक्रमण के पश्चात्, मैंने ध्यान दिया कि उन घटनाओं का वर्णन करने के लिए कई शब्दों का उपयोग किया गया, जैसे *दुर्गति* और *विपत्ति।* परन्तु जिस शब्द को मैंने सबसे अधिक सुना, वह था *त्रासदी।* परन्तु प्रायः, इस आक्रमण का वर्णन करने के लिए एक विशेषण को जोड़ा जाता था। उसे एक *निरर्थक* त्रासदी कहा गया था।

यदि मेरे पास समय होता कि मैं इन दो शब्दों के एक साथ रखे जाने का एक तकनीकी और विस्तृत विश्लेषण करूँ, तो मैं दिखा पाता कि "निरर्थक त्रासदी *(senseless tragedy)*" वाक्यांश एक विरोधाभास है। किसी बात को अन्तिम विश्लेषण में "त्रासदीपूर्ण" के रूप में परिभाषित होने के लिए, भलाई का कोई स्तर होना चाहिए।

त्रासदी शब्द में यह पूर्वधारणा निहित है कि संसार में उद्देश्य का किसी प्रकार का एक क्रम है। यदि घटनाएँ निरर्थक रीति से हो सकती हैं, तो फिर त्रासदी—या आशीष—जैसी कोई बात नहीं है। सब कुछ केवल निरर्थक घटनाएँ मात्र हैं।

"निरर्थक त्रासदी" का विचार एक ऐसे दृष्टिकोण को प्रकट करता है जो कि मसीही विचारधारा से पूर्णतः असंगत है, क्योंकि यह इस बात को मानता है कि कोई घटना बिना किसी उद्देश्य या बिना किसी अर्थ के होती है। परन्तु यदि परमेश्वर वास्तव में परमेश्वर है और यदि परमेश्वर ऐसा परमेश्वर है जो ईश्वरीय-प्रावधान करता है और यदि परमेश्वर सम्प्रभु है, तो अन्तिम विश्लेषण में कुछ भी निरर्थक नहीं होता है।

सितम्बर 11 के सम्बन्ध में यह प्रश्न हमें विचलित करता है, "यह क्यों हुआ?" विश्वासी इस प्रश्न को थोड़े भिन्न रीति से पूछते हैं: "परमेश्वर ने यह *होने* क्यों *दिया?*" मसीही लोग प्रश्न को इस रीति से रखते हैं क्योंकि उनके अनुसार अर्थहीन घटनाएँ नहीं होती हैं, क्योंकि मसीही दृष्टिकोण के केन्द्र में यह आश्वासन है कि इतिहास की प्रत्येक घटना के लिए सर्वशक्तिमान परमेश्वर के मन में कोई उद्देश्य है। परमेश्वर अस्तव्यस्त या निरुद्देश्य नहीं है। हर बात के लिए उद्देश्य होता है—यहाँ तक कि उन बातों के लिए भी जिन्हें हम त्रासदी कहते हैं।

सितम्बर 11 के पश्चात् के दिनों में, कुछ प्रसिद्ध प्रचारकों ने, विशेषकर जेरी फॉलवेल *(Jerry Falwell)* ने, इस विषय में इस प्रकार की टिप्पणियाँ की थीं कि उन आक्रमणों को होने देने के लिए परमेश्वर के क्या सम्भावित कारण रहे होंगे। उन्होंने कहा कि यह त्रासदी अमरीका के अनैतिकता के प्रति परमेश्वर के न्याय का कार्य था, क्योंकि अमरीका गर्भपात को सहता है, क्योंकि अमरीका ने मानव परिवार का विनाश किया और क्योंकि वर्तमान के समय में वह अन्य नैतिक विषयों में अनुचित पक्षों को लेता है। उस कथन ने विवाद का बवण्डर उत्पन्न किया और यहाँ तक कि मसीही समीक्षक भी इस विश्लेषण की आलोचना करने में बहुत स्पष्टवादी थे। अन्त में, फॉलवेल ने सार्वजनिक रूप से अपने कथन का खण्डन किया। हमारे दुःख के "क्यों" के विषय में हड़बड़ाकर निष्कर्ष पर पहुँच जाना सर्वदा बुद्धि-रहित होता है।

अब यदि कोई मुझ से कहे, "परमेश्वर ने यह क्यों होने दिया?" तो इसके उत्तर में मैं सत्यता से केवल यह कह सकता हूँ, "मैं नहीं जानता।" मैं परमेश्वर के विचारों को नहीं जान सकता हूँ। मैं नहीं जानता कि क्या यह न्याय का कार्य था। दूसरी ओर, मैं मसीही दृष्टिकोण में ऐसी किसी बात को नहीं जानता जो इस सम्भावना को असम्भव बनाए कि यह न्याय का ही कार्य था। पवित्रशास्त्र में स्पष्ट है कि परमेश्वर ने समय-समय पर राष्ट्रों पर आपदा-रूपी न्याय के कार्य किए हैं, परन्तु यह जानना असम्भव है कि क्या सितम्बर 11 की घटनाएँ वास्तव में उसके न्याय के कारण थीं या नहीं क्योंकि

उसने हमें यह नहीं बताया है। अब यदि आप मुझसे पूछते कि इसमें क्या परमेश्वर का हाथ था, तो मैं "हाँ" कहता, क्योंकि मैं ईश्वरीय-प्रावधान के मसीही सिद्धान्त के प्रति समर्पित हूँ। मैं निश्चित हूँ कि इस घटना में परमेश्वर का हाथ था और कि यह उसके उद्देश्य के अनुसार हुई। परन्तु वह विशिष्ट उद्देश्य क्या था, मैं नहीं जानता।

ईश्वरीय-प्रावधान करने वाले परमेश्वर पर विश्वास करने वाले प्रत्येक जन के लिए आधारभूत मान्यता यह है कि अन्ततः कोई त्रासदी नहीं होती हैं। परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की है कि सब कुछ जो घटित होता है—सब पीड़ा, सब दुःख, सब त्रासदियाँ—क्षणिक मात्र हैं, और कि इन घटनाओं में और इनके द्वारा परमेश्वर उससे प्रेम करने वालों की भलाई को उत्पन्न करता है (रोमियों 8:28)। यही कारण है कि प्रेरित पौलुस ने कहा कि इस संसार में हम जो पीड़ा, दुःख और कष्ट को सहते हैं वह उस महिमा और धन्यता से, जिसे परमेश्वर ने अपने लोगों के लिए रखा है, न तो तुलना किए जाने के योग्य है, और न ही एक ही अर्थ में या एक ही वाक्य में कहे जाने के योग्य नहीं है (रोमियों 8:18)।

परमेश्वर के कार्य पर विचार करने के लाभ

कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि पिछली पीढ़ियों के मसीही हमारी तुलना में परमेश्वर को अधिक श्रेष्ठ मानते थे। इसका कारण सम्भवतः इस बात में हो सकता है कि वे हम से अधिक पीड़ा, दुःख, सताव और मृत्यु से परिचित थे। उन सब बातों के कारण जिन्हें उन्होंने सहा, वे अपने कष्टों के मध्य परमेश्वर के हाथ के विषय में विचार करने के लिए बाध्य थे।

मूलतः बात यह है कि क्लेश में परमेश्वर का हाथ है। उसकी सम्प्रभुता जीवन की अन्धकारमय बातों में प्रकट होती है। इस बात को पवित्रशास्त्र में इतनी बार कहा गया है कि यह आश्चर्यजनक है कि हमारे लिए यह समझना इतना कठिन क्यों होता है। मेरा मानना है कि इसका कारण यह है कि हम अपने मस्तिष्कों को इन बातों के विषय में सोचने से रोक देते हैं। हम उत्सव के घर में जाते ही क्यों हैं? हम में से बहुतों के लिए प्रीतिभोज केवल अच्छा समय व्यतीत करने के लिए ही नहीं वरन् विचार करने से बचने का समय है, जब हम अपने "जीवन की परिस्थिति" के विषय में विचार करने से बच सकते हैं। हम एक निकास द्वार को खोजते हैं, एक आमोद का मार्ग जो हमारे भय और पीड़ाओं को किसी भी रीति से घटाए। परन्तु बुद्धिमान व्यक्ति उत्सव के घर और शोक के घर, अर्थात् सब घटनाओं में परमेश्वर की सहायता (उँगली) की खोज करता है।

इस बात पर विचार करना रुचिकर है कि सुलैमान सभोपदेशक 8 अध्याय का आरम्भ कैसे करता है। परमेश्वर की सम्प्रभुता के विषय में इन कठिन सत्यों की पुष्टि करने के पश्चात्, वह लिखता है: "बुद्धिमान के समान कौन है? किसी बात का अर्थ कौन बता सकता है? मनुष्य की बुद्धिमानी

उसके मुख को प्रदीप्त कर देती तथा उसके कठोर मुख को चमका देती है" (पद 1)। सुलैमान को यह कहते हुए सुनने के पश्चात् कि हमारे लिए उत्सव के घर से अधिक शोक के घर में जाना अच्छा है। हम ऐसा सोच सकते हैं कि परमेश्वर चाहता है कि उसके लोग इतने मननशील हों, जीवन की कठिन बातों पर इतना मनन करें कि वे कठोर और उदास ही भाव में रहें। सभोपदेशक के लेखक की मनसा यह कदापि नहीं है। इसके विपरीत, वह यहाँ पुष्टि कर रहा है कि यदि हम परमेश्वर की सम्प्रभुता को समझें, तो यह हमारे मुख को चमका देती है। यह हमारे व्यवहार को परिवर्तित करता है। परमेश्वर की सम्प्रभुता को समझने वालों में दुःख के मध्य भी आनन्द होता है, एक ऐसा आनन्द जो उनके मुख पर प्रतिबिम्बित होता है, क्योंकि वे देखते हैं कि उनका दुःख उद्देश्य-रहित नहीं है।

अध्याय पाँच

अन्तिम बुलाहट

मेरी आँखे प्रतीक्षा कक्ष की घड़ी पर लगी हुईं थीं। वह एक साधारण सी घड़ी थी। वह केवल अपना कार्य करने के लिए बनाई गई थी और उसका एकमात्र उद्देश्य विश्व इतिहास के वर्तमान क्षण को प्रदर्शित करना था।

बन्द द्वारों के पीछे, लोग समय में रुक से गए। कुछ लोगों के लिए, बीत रहे मिनट जीवन के अन्तिम क्षण थे।

मैं भी प्रतीक्षा करने वालों में था। प्रिय जनों के लिए प्रार्थना करने के लिए परिवार एकत्रित हुए थे। वे विभिन्न शल्यचिकित्साओं के परिणाम के लिए प्रतीक्षा कर रहे थे।

मैंने फिर से घड़ी को घूरकर देखा। घड़ी एक कहानी कह रही थी। मुझे उसका सन्देश अच्छा नहीं लग रहा था। शल्यचिकित्सा बहुत अधिक समय ले रही थी। वह तो सुधारात्मक और "साधारण" होनी चाहिए थी। चिन्ता की कोई बात नहीं थी। परन्तु वह बहुत अधिक समय ले रही थी।

और समय बीता। फिर, आखिरकार, शल्य-चिकित्सक बाहर आए। वे अभी भी अपने हरे वस्त्रों को पहने हुए थे। "श्रीमान स्प्रोल?" उन्होंने कहा। "हमने कुछ कठिनाइयों का सामना किया। दुर्भाग्यवश हमें एक गाँठ *(tumour)* मिली जिसकी हमें अपेक्षा नहीं थी। परिणाम निदान विभाग *(pathology)* से अन्तिम जाँच आना शेष है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि गाँठ तो घातक है।"

उनके शब्द पेट में लात मारने के जैसे निराशाजनक थे, किन्तु मैंने शान्त स्वर से उस प्रश्न को पूछा जिसे मैं चिल्लाते हुए पूछना चाहता था: "रोग के विषय में आपका क्या विचार है?"

"मुझे डर है कि आगे की स्थिति अच्छी नहीं है। हम कीमोथेरेपी *(chemotherapy)* उपयोग करके देख सकते हैं, परन्तु सच बोलूँ तो हम केवल कुछ समय के लिए आशा कर सकते हैं। कर्करोग का यह रूप अत्यन्त घातक है। यह लगभग सर्वदा घातक होता है।"

"हमारे पास कितना समय है, डॉक्टर?" मैंने पूछा।

"हम कभी भी निश्चयता से नहीं कह सकते हैं। छः महीने से एक वर्ष। यदि चिकित्सा सफल रही तो सम्भवतः थोड़ा और समय।"

"क्या वे जानती हैं?" मैंने पूछा।

"नहीं, अभी नहीं। वे अभी स्वास्थ्यलाभ *(recovery)* कक्ष में हैं और औषधियों के प्रभाव से गहरी निद्रा में हैं। मैं इसके विषय में उन्हें कल बताने की सोच रहा हूँ। मुझे अच्छा लगेगा यदि आप उनके साथ उस समय रहेंगे जब मैं उन्हें इस बीमारी के विषय में बताऊँगा। मैं लगभग एक बजे आऊँगा।"

उस रात मुझे सोने में समस्या हुई। मैं घबराया हुआ था। ईश्वरविज्ञान की मेरी पढ़ाई ने मुझे इस विषय में कोई व्यावहारिक ज्ञान नहीं दिया कि इस प्रकार के रोग से कैसे व्यवहार किया जाना चाहिए। आप किसी व्यक्ति को कैसे बताएँगे कि उसको प्राणघातक रोग है? क्या आपको सत्य छिपाना चाहिए? क्या आपको झूठी आशा देनी चाहिए? क्या आपको किसी ऐसे आश्चर्यकर्म की सम्भावना की बात करनी चाहिए जिसे सम्भवतः परमेश्वर नहीं करना चाहेगा?

अगले दिन दोपहर को मैं संकोच करते हुए अपने उस मित्र के कक्ष की ओर गया। जब मैंने प्रवेश किया वे बहुत सतर्क और बाहरी रूप से शान्त थीं। किन्तु उनकी आँखों ने मुझे बताया कि किसी न किसी रीति से वे पहले से ही जानती थीं।

डॉक्टर दयालु और नम्र किन्तु स्पष्टवादी थे। उन्होंने कहा, "हमें जो कल मिला, वह बताते मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। उसने कृपापूर्ण रीति से समझाया कि वह क्या है। उसने कीमोथेरेपी की प्रक्रिया को समझाया। उसने समझाया कि पहले ही महत्वपूर्ण अंगों को क्या हानि हो चुकी है।

मुझे आभास हुआ कि कक्ष के तीन लोगों में से, मेरी मित्र ही सबसे शान्तचित्त थीं। उन्होंने हमें सान्त्वना देते हुए बातें कीं। "कोई बात नहीं," उन्होंने कहा। "परमेश्वर ने मेरे लिए जो रखा है, मैं उसके लिए तैयार हूँ।"

मेरी मित्र दो वर्षों तक जीवित रही, जिससे कि डॉक्टर सहित सब लोग चकित हुए। वे फलदायी बनी रहीं। उन्होंने इस्राएल का भ्रमण किया। उन्होंने अपने घर को व्यवस्थित किया। उन्होंने अपने परिवार की सुधि ली। वे शालीनता और सम्मान के साथ मरी।

उन दो वर्षों में हमने बहुत वार्तालाप किए। हमने एक साथ प्रार्थना की। हम एक साथ रोए। हम एक साथ हँसे। उन्होंने अपनी अन्त्येष्टि के लिए विस्तृत निर्देश दिए। उन्होंने मेरे साथ अपने इच्छा-पत्र के विषय में चर्चा की।

ये एक मसीही महिला थीं। उन्होंने इस संसार में अपने अन्तिम महीनों को एक बुलाहट के रूप में देखा। उन्होंने मृत्यु के लिए अपने आपको मानसिक और आत्मिक रूप से तैयार किया। उन्होंने मृत्यु को केवल जीवन का *अन्त* ही नहीं, वरन् जीवन के एक *भाग* के रूप में देखा। यह एक ऐसा अनुभव था जिसमें होकर वे पहले कभी नहीं गई थीं। यह जीवन का अन्तिम अनुभव है और प्रत्येक व्यक्ति को उसमें से होकर जाना होगा।

बुलाहट के रूप में मृत्यु

हमने दुःख उठाने को एक बुलाहट के रूप में समझा है। क्या हम दुस्साहस करके मृत्यु को भी एक बुलाहट समझें?

सभोपदेशक के लेखक ने यह घोषणा की थी: "प्रत्येक बात के लिए समय नियुक्त है, तथा आकाश के नीचे प्रत्येक घटना का एक समय है: जन्म का समय, तथा मरने का समय" (सभोपदेशक 3:1–2क)। इसी प्रकार से इब्रानियों का लेखक कहता है, "मनुष्यों के लिए एक बार मरना और उसके बाद न्याय का होना नियुक्त किया गया है" (इब्रानियों 9:27)।

पवित्रशास्त्र की भाषा पर ध्यान दें। यह मृत्यु के विषय में "आकाश के नीचे एक उद्देश्य" और एक "नियुक्ति" के सन्दर्भ में बात करता है। मृत्यु एक ईश्वरीय नियुक्ति है। यह हमारे जीवन के लिए परमेश्वर के उद्देश्य का एक भाग है। परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति को मरने के लिए बुलाता है। वह सम्पूर्ण जीवन पर सम्प्रभु है, जिसमें जीवन का अन्तिम अनुभव भी सम्मिलित है।

हम प्रायः बुलाहट के विचार को अपने व्यवसाय या कार्यक्षेत्र तक सीमित करते हैं। परन्तु अंग्रेज़ी में *वोकेशन (vocation* = बुलाहट) शब्द लातीनी शब्द *वोकैरे* से आता है, जिसका अर्थ है "बुलाना।" मसीही उपयोग में, बुलाहट ईश्वरीय बुलाहट है, अर्थात् एक बुलावा जो स्वयं परमेश्वर से आता है। वह लोगों को शिक्षा देने, प्रचार करने, गीत गाने, गाड़ी बनाने और लंगोट *(diapers)* बदलने के लिए बुलाता है। मानव जीवन के जितने पक्ष हैं, उतनी ही बुलाहट भी।

इस जीवन में परमेश्वर द्वारा दिए गए व्यवसाय और कार्य के सम्बन्ध में हमारे पास विभिन्न बुलाहट हैं। परन्तु हम सब मृत्यु की बुलाहट को साझा करते हैं। हम में से प्रत्येक को मरने के लिए बुलाया जाता है। यह बुलाहट उतनी ही "बुलाहट" है जितनी ख्रीष्ट की सेवकाई के लिए बुलाहट है। कभी-कभी यह बुलाहट अचानक और बिना चेतावनी के आती है। कभी-कभी यह पूर्व सूचना के साथ आती है। परन्तु यह हम सबके पास आती है और यह परमेश्वर की ओर से आती है।

मैं जानता हूँ कि ऐसे शिक्षक हैं जो हमें बताते हैं कि मृत्यु के साथ परमेश्वर का कोई सम्बन्ध नहीं है। वे मृत्यु को केवल शैतान के उपकरण के रूप में देखते हैं। सब प्रकार की पीड़ा, दुःख, अस्वस्थता और त्रासदी के दोष को दुष्ट पर डाला जाता है। परमेश्वर को इससे सम्बन्धित हर उत्तरदायित्व से

मुक्त किया जाता है। इस दृष्टिकोण का उद्देश्य है कि संसार की किसी भी गड़बड़ी के लिए परमेश्वर को दोष से मुक्त रखा जाए। हमें बताया जाता है, "परमेश्वर सर्वदा चंगाई की इच्छा रखता है।" यदि वह चंगाई नहीं होती है, तो दोष शैतान का है—या फिर हमारा है। वे कहते हैं कि मृत्यु परमेश्वर की योजना नहीं है। उनके अनुसार मृत्यु परमेश्वर के क्षेत्र पर शैतान के विजय का प्रतिनिधित्व करती है।

इस प्रकार के विचार पीड़ितों को अस्थायी शान्ति दे सकते हैं। परन्तु वे सत्य नहीं हैं। बाइबलीय मसीहियत से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। उनका उद्देश्य है कि परमेश्वर को दोष से मुक्त किया जाए, परन्तु वे उसकी सम्प्रभुता का खण्डन करते हैं।

यह सच है कि शैतान का अस्तित्व है। वह हमारा सबसे बड़ा शत्रु है। वह हमारे जीवन में क्लेश लाने के लिए हर सम्भव प्रयास करेगा। परन्तु शैतान सम्प्रभु नहीं है। शैतान के हाथ में मृत्यु की कुँजियाँ नहीं हैं।

जब यीशु पतमुस द्वीप पर प्रेरित यूहन्ना के पास एक दर्शन में प्रकट हुआ, तो उसने इन शब्दों से अपनी पहचान को बताया: "भयभीत न हो; मैं ही प्रथम, अन्तिम और जीवित हूँ; मैं मर गया था और देख, मैं युगानुयुग जीवित हूँ। मृत्यु और अधोलोक की कुँजियाँ मेरे पास हैं" (प्रकाशितवाक्य 1:17–18)।

मृत्यु की कुँजियाँ यीशु के हाथों में हैं और शैतान उन कुँजियों को उसके हाथों से नहीं छीन सकता है। ख्रीष्ट की पकड़ दृढ़ है। कुँजियाँ उसके हाथों में इसलिए हैं क्योंकि वह कुँजियों का स्वामी है। स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार उसको दिया जा चुका है। इसमें जीवन और मृत्यु का अधिकार सम्मिलित है। मृत्यु का दूत ख्रीष्ट के आदेशों पर कार्य करता है।

विश्व इतिहास ने धार्मिक द्वैतवाद *(dualism)* के अनेक प्रकारों को देखा है। द्वैतवाद दो समकक्ष और विपरीत शक्तियों के अस्तित्व की पुष्टि करता है। इन शक्तियों को भला और बुरा, परमेश्वर और शैतान, यिन और येंग *(Yin and Yang)* कहा जाता है। ये दो शक्तियाँ एक निरन्तर संघर्ष में लगी हुईं हैं। क्योंकि वे समकक्ष होने के साथ-साथ विपरीत भी हैं, यह संघर्ष सर्वदा तक चलता रहता है और इसमें कोई भी पक्ष दूसरे पर हावी नहीं होता है। यह संसार इन दो प्रतिद्वन्दियों की रणभूमि होने के लिए ठहराया गया है। हम उनके संघर्ष के कारण हानि उठाते हैं, तथा हम उनके अनन्त शतरंज के खेल के प्यादे हैं।

द्वैतवाद पूर्णतः मसीहियत के विरुद्ध है। मसीही विश्वास का द्वैतवाद से कोई सम्बन्ध नहीं है। शैतान परमेश्वर के *विरोध में* हो सकता है, परन्तु वह किसी भी रीति से परमेश्वर के *समकक्ष (equal)* नहीं है। शैतान एक सृजा हुआ प्राणी है; परमेश्वर सृष्टिकर्ता है। शैतान सामर्थी है; परमेश्वर सर्वसामर्थी है। शैतान ज्ञानवान और चतुर है; परमेश्वर सर्वज्ञानी है। शैतान अपनी उपस्थिति में सीमित है; परमेश्वर सर्वोपस्थित है। शैतान सीमित है; परमेश्वर असीमित है।

इस सूची को और बढ़ाया जा सकता है। परन्तु पवित्रशास्त्र से स्पष्ट है कि शैतान किसी भी अर्थ में एक परम शक्ति नहीं है।

हम किसी ऐसे अनन्त संघर्ष में नहीं फँसे हुए हैं जिसके निवारण की कोई आशा नहीं है। पवित्रशास्त्र का सन्देश विजय का सन्देश है—पूर्ण, अन्तिम और परम विजय का। हमारा नहीं, वरन् शैतान का विनाश निश्चित है। उसका सिर उस ख्रीष्ट की एड़ी द्वारा कुचला जा चुका है, जो अल्फा और ओमेगा है।

वह सब दुःख और मृत्यु के ऊपर क्रूसीकृत और जी उठा प्रभु खड़ा है। उसने जीवन के परम शत्रु को पराजित किया है। उसने मृत्यु की सामर्थ्य को हरा दिया है। वह हमें मरने के लिए बुलाता है, जो कि जीवन के अन्तिम परिवर्तन में आज्ञाकारिता की बुलाहट है। ख्रीष्ट के कारण, मृत्यु अन्त नहीं है। यह एक संसार से दूसरे में जाने का मार्ग है।

परमेश्वर की इच्छा में सदैव चंगाई नहीं होती है। यदि ऐसी उसकी इच्छा होती, तो अपने लोगों की मृत्यु में अपनी इच्छा को बार-बार विफल होते देखकर, उसे अन्तहीन निराशा का सामना करना पड़ता। उसने स्तिफनुस को उन पत्थरों से लगे घावों से चंगा करने की इच्छा नहीं की थी जो उस पर फेंके गए थे। उसकी इच्छा में नहीं था कि वह मूसा, यूसुफ, दाऊद, पौलुस, ऑगस्टीन, मार्टिन लूथर और जॉन कैल्विन को चंगा करे। ये सब विश्वास में मर गए। परम चंगाई तो मृत्यु के द्वारा और मृत्यु के पश्चात् आती है।

कुछ शिक्षक तर्क देते हैं कि ख्रीष्ट द्वारा प्रायश्चित्त में चंगाई सम्मिलित है। वास्तव में वह सम्मिलित है। यीशु ने क्रूस पर हमारे सारे पाप उठाए। फिर भी इस जीवन में हम में से कोई भी व्यक्ति पाप से मुक्त नहीं है। वैसे ही, इस जीवन में हम में से कोई भी रोगों से भी मुक्त नहीं है। क्रूस में पाई जाने वाली चंगाई वास्तविक है। हम अभी इस जीवन में उसके लाभों में भाग लेते हैं। परन्तु पाप और रोगों से चंगाई की पूर्णता स्वर्ग में होती है। हमें अभी भी अपने नियुक्त समयों में अवश्य मरना है।

निस्सन्देह परमेश्वर प्रार्थनाओं का उत्तर देता है और इस जीवन में हमारे शरीरों को चंगाई देता है। परन्तु ये चंगाइयाँ भी अस्थायी हैं। यीशु ने लाज़र को मृतकों में से जिलाया। परन्तु लाज़र फिर से मर गया। यीशु ने अन्धों को दृष्टि दी और बहरों को सुनने की क्षमती दी। फिर भी यीशु द्वारा चंगा किया गया प्रत्येक जन अन्ततः मर गया। वे इसलिए नहीं मरे क्योंकि शैतान ने यीशु पर विजय पाई, परन्तु इसलिए क्योंकि यीशु ने उनको मरने के लिए बुलाया।

जब परमेश्वर हमें कोई बुलाहट देता है, वह सर्वदा एक पवित्र बुलाहट होती है। मरने की बुलाहट एक पवित्र बुलाहट है। इस बात को समझना किसी भी मसीही के सीखने के लिए एक अत्यावश्यक शिक्षा है। जब वह बुलावा आता है, हम कई रीतियों से प्रतिउत्तर दे सकते हैं। हम क्रोधित, कड़वे, या भयभीत हो सकते हैं। परन्तु यदि हम उसे परमेश्वर की ओर से बुलाहट के रूप

में देखें न कि शैतान की ओर से धमकी के रूप में, तो हम उसकी कठिनाइयों का सामना करने के लिए अच्छी रीति से तैयार होंगे।

दौड़ पूरी करना

मैं अपने पिता के उन अन्तिम शब्दों को कभी नहीं भूलूँगा जिन्हें उन्होंने मुझ से कहे। हम घर के सोफा पर बैठे थे। उनका शरीर तीन मस्तिष्काघात *(stroke)* द्वारा निर्बल हो गया था। उनके मुख के आधे भाग को लकवा मार चुका था। उनकी बाएँ, आँख और होंठ का बायाँ भाग नियन्त्रण से बाहर होकर लटके हुए थे। वे मुझसे अस्पष्ट उच्चारण के साथ बोल रहे थे। उनके शब्द समझने के लिए कठिन थे, परन्तु उनका अर्थ अति स्पष्ट था। उन्होंने ये शब्द कहे: "मैं अच्छी कुश्ती लड़ चुका हूँ, मैंने अपनी दौड़ पूरी कर ली है, मैंने विश्वास की रक्षा की है" (2 तीमुथियुस 4:7)।

यही वो अन्तिम शब्द थे जो उन्होंने मुझसे कहे थे। कुछ घण्टों के पश्चात् उनको चौथी और अन्तिम बार मस्तिष्क रक्तस्राव हुआ। मैंने उनको नीचे पड़ा हुआ पाया और उनके मुँह के एक कोने से थोड़ा लहू बह रहा था। वे सम्मूर्छित *(comatose)* थे। परमेश्वर की दया से वे डेढ़ दिन पश्चात् चेतना में लौटे बिना मर गए।

उनके अन्तिम शब्द वीरता के थे। उनसे कहे गए मेरे अन्तिम शब्द कायरतापूर्ण थे। मैंने उनके पूर्वाभास के शब्दों का विरोध किया। मैंने रूखी वाणी से कहा, "पिताजी, ऐसे मत कहिए!"

मैंने अपने जीवन में बहुत बातें कही हैं जिनके विषय में मैं सोचता हूँ कि भला होता यदि मैं उन्हें न कहता, परन्तु अपने पिता से कहे गए उन शब्दों से अधिक मुझे अब और कोई शब्द लज्जाजनक नहीं लगते हैं। परन्तु जैसे कि धनुष से निकले हुए बाण को लौटाया नहीं जा सकता है, वैसे ही मुख से निकले हुए शब्दों को भी नहीं लौटाया जा सकता है।

मेरे शब्द मेरे पिता के प्रति फटकार के शब्द थे। मैंने उस विषय में उन्हें अन्तिम साक्षी के गौरव को देने से मना किया। वे जानते थे कि वे मर रहे हैं। मैंने उसे स्वीकार करने से नकार दिया जिसे उन्होंने पहले ही शिष्टता से स्वीकार कर लिया था।

मैं सत्रह वर्ष का था। मैं मृत्यु के विषय में कुछ नहीं जानता था। वह वर्ष एक अच्छा वर्ष नहीं था। मैंने अपने पिता को तीन वर्षों के अन्तराल में घुट-घुट कर मरते हुए देखा। मैंने उन्हें कभी भी कुड़कुड़ाते हुए नहीं सुना। मैंने उन्हें कभी भी आपत्ति जताते हुए नहीं सुना। वे उसी कुर्सी पर दिन प्रतिदिन, सप्ताह प्रति सप्ताह, वर्ष प्रति वर्ष बैठे रहे। वे आवर्धक काँच *(magnifying lens)* की सहायता से बाइबल पढ़ते थे। मैं उन चिन्ताओं के प्रति अन्धा था जो उनके मन में रही होंगी। वे कार्य नहीं कर सकते थे, तो कोई आय नहीं थी और हमारे पास कोई विकलाँगता के लिए बीमा नहीं था। वे मरने की प्रतीक्षा में और अपने ही जीवनकाल में अपने जीवन की बचत को समाप्त होते हुए वहाँ बैठे देखते रहते थे।

मैं परमेश्वर से क्रोधित था। मेरे पिता किसी से क्रोधित नहीं थे। उन्होंने अपने अन्तिम दिनों को अपनी बुलाहट के प्रति विश्वासयोग्यता से पूरा किया। उन्होंने अच्छी कुश्ती लड़ी। एक अच्छी कुश्ती ऐसी कुश्ती है जो बिना बैर, बिना कड़वाहट, बिना आत्मदया से लड़ी जाती है। मैं कभी भी ऐसी कुश्ती नहीं लड़ा था।

मेरे पिता ने दौड़ पूरी की थी। मैं तो दौड़ के आरम्भ में भी नहीं पहुँचा था। उन्होंने उस दौड़ को पूरा किया जिसे परमेश्वर ने उन्हें दौड़ने के लिए बुलाया था। वे तब तक दौड़ते रहे जब तक उनके पैर निर्बल नहीं हो गये। परन्तु वे लगे रहे। जब वे चल नहीं सकते थे, फिर भी वे प्रत्येक रात्रि भोजन के समय हमारे साथ बैठते थे। वे मुझसे सहायता माँगते थे। यह प्रतिदिन का कार्य था। हर संध्या, मैं उनके कक्ष में जाता था, जहाँ वे एक ही कुर्सी पर बैठे होते थे। मैं उनके सामने झुकता था, जिससे कि वे मेरे गर्दन और कन्धों पर अपने हाथों को रख सकें। मैं उनकी कलाइयों को एक साथ पकड़कर खड़ा होता था और उन्हें उनकी कुर्सी से उठाता था। मैं फिर उन्हें खाने की मेज तक ले जाता था। उन्होंने अपनी दौड़ पूरी की। मेरा एकमात्र आश्वासन यह था कि मैं उनकी सहायता कर पाया। मैं समापन रेखा पर उनके साथ खड़ा हुआ था।

मैंने उनको एक अन्तिम बार उठाया। जब मैंने उन्हें नीचे अचेतावस्था में पाया, तो मैंने कैसे भी करके उन्हें उस पलंग पर लिटाया जिस पर वे मरे। उस बार, वे मेरी कोई सहायता नहीं कर पाए। वे अपने हाथों से मेरे गर्दन को नहीं पकड़ पाए। मैंने केवल अपनी तीव्र इच्छा और अपने प्रयास की सहायता से उन्हें पलंग तक पहुँचाया। परन्तु मुझे उन्हें उठाना ही था। मेरे लिए यह अकल्पनीय था कि वे नीचे ही पड़े हुए मर जाते।

जब मेरे पिता की मृत्यु हुई, मैं मसीही नहीं था। विश्वास मेरे अनुभव और मेरी समझ से परे की बात थी। जब मेरे पिता ने कहा, "मैंने विश्वास की रक्षा की है," मैं उनके शब्दों के भार को नहीं समझ पाया। मैंने उन पर ध्यान ही नहीं दिया। मैं नहीं जानता था कि वे प्रेरित पौलुस के प्रिय शिष्य तीमुथियुस के लिए उसके अन्तिम सन्देश को उद्धृत कर रहे थे। उस समय मेरे पिता की भावपूर्ण साक्षी का मेरे लिए कोई अर्थ नहीं था। पर अब ऐसा नहीं है; अब मैं समझता हूँ। अब मैं अपने पिता के समान डटे रहना चाहता हूँ। मैं भी उनके समान अपनी दौड़ पूरी करना चाहता हूँ। मुझे उनके समान कष्ट उठाने की इच्छा नहीं है, परन्तु मैं उनके समान विश्वास की रक्षा करना चाहता हूँ।

यदि मेरे पिता ने मुझे कुछ सिखाया, तो उन्होंने सिखाया कि कैसे मरना है। जिन घटनाओं का वर्णन मैंने अभी किया, उन घटनाओं ने मुझ पर गहरा प्रभाव छोड़ा। मेरे पिता की मृत्यु के पश्चात् कई वर्षों तक, मुझे एक भयावह स्वप्न *(nightmare)* आता था। उस स्वप्न में प्रबल तीव्रता थी। उसमें मैं अपने पिता को पुनः जीवित देखता था। तो स्वप्न का आरम्भ रोमांचक होता था। मेरी नींद में असम्भव बात सम्भव होती थी। वे जीवित थे! परन्तु मेरा आनन्द शीघ्र ही निराशा में परिवर्तित

हो जाता जब मैं अपने स्वप्न में उनकी उपस्थिति की वास्तविकता को समझता था। वे निर्बल और लकवे से ग्रसित थे। वे आशाहीन और असहाय रीति से मर रहे थे। वह दृश्य कभी भी एक स्वस्थ्य, फुर्तीले पिता का नहीं, वरन् एक मरते हुए पिता का ही था।

जब भी मुझे यह भयावह स्वप्न आता था, मैं पसीने के साथ और अपने पेट में एक खालीपन का आभास करते हुए जागता था। केवल पवित्रशास्त्र का अध्ययन करने के पश्चात् ही मैंने सीखा कि मृत्यु ऐसी नहीं है। केवल मसीही विश्वास की सामग्री को समझने के पश्चात् ही वे भयावह स्वप्न आखिरकार बन्द हुए।

घोर अन्धकार की तराई में होकर चलना

जब परमेश्वर हमें मरने की बुलाहट देता है, वह हमें कार्य करने के लिए भेजता है। मार्ग डरावना हो सकता है। यह सम्पूर्ण मार्ग में बाधाओं से भरा हुआ पथ है। हमें सन्देह होता है कि क्या हमारे पास समाप्ति रेखा तक पहुँचने के लिए पर्याप्त साहस है, क्योंकि परीक्षा हमें घोर अन्धकार की तराई में होकर ले जाती है।

मृत्यु की घोर अन्धकार की तराई एक ऐसी तराई है जिसमें सूरज की किरणें प्रायः धुँधली दिखाई देती हैं। इसमें हम काँपते हुए ही जाते हैं। हमें अच्छा लगता यदि हम उससे बचकर दूसरे मार्ग से निकल पाते। परन्तु विश्वास के पुरुष और स्त्री बिना भय के उस तराई में प्रवेश कर सकते हैं। दाऊद ने हमें बता दिया था कि हम ऐसा कैसे कर सकते हैं: "चाहे मैं मृत्यु की घोर अन्धकार की तराई में होकर चलूँ, फिर भी हानि से न डरूँगा, क्योंकि तू मेरे साथ रहता है; तेरी छड़ी और तेरी लाठी से मुझे शान्ति मिलती है" (भजन 23:4)।

दाऊद एक चरवाहा था। इस भजन में, दाऊद ने अपने आपको भेड़ के स्थान में रखा। उसने अपने आपको महान् चरवाहे की देखरेख में पाई जाने वाली भेड़ के रूप में देखा। उसने एक कारण से बिना डरे तराई में प्रवेश किया—चरवाहा उसके साथ है। उसने अपने आपको चरवाहे की देख-रेख और रक्षा में सौंप दिया।

मेमने को चरवाहे के अस्त्र-शस्त्रों से सान्त्वना प्राप्त होती थी, अर्थात् छड़ी और लाठी से। प्राचीन समय में चरवाहा अस्त्र-शस्त्र धारण किए हुए होता था। वह किसी गड्ढे में गिरे हुए मेमने को अपनी लाठी की सहायता से निकाल सकता था। वह छड़ी की सहायता से उसकी भेड़ों पर आक्रमण करने वाले जंगली पशुओं को भगा सकता था। चरवाहे के बिना, भेड़ तो अन्धेरी तराई में असहाय होती। परन्तु जब तक चरवाहा उपस्थित था, भेड़ के पास डरने की कोई बात नहीं थी।

यदि कोई भालू या सिंह चरवाहे पर आक्रमण करके उसको घात कर दे, तो भेड़ तितर-बितर हो जायेंगी।

वे सिंह के जबड़ों में पड़ जाने के जोखिम में पड़ जायेंगी। यदि चरवाहे का पतन हो जाए, तो भेड़ों के लिए सब कुछ समाप्त हो जायेगा।

परन्तु हमारे पास एक ऐसा चरवाहा है जिसका पतन *नहीं हो सकता* है और जो संकट को आते देखकर अपने झुण्ड को छोड़कर भाग *नहीं जाएगा।* हमारे चरवाहे के पास सर्वसामर्थी शक्ति है। वह अन्धकार की तराई से नहीं डरता। वह तो इस तराई का प्रभु है।

दाऊद का भरोसा परमेश्वर की उपस्थिति की दृढ़ निश्चयता पर आधारित था। वह समझता था कि ईश्वरीय बुलाहट के साथ, ईश्वरीय सहायता और परमेश्वर की उपस्थिति की दृढ़ प्रतिज्ञा आती है। परमेश्वर हमें वहाँ नहीं भेजेगा जहाँ वह स्वयं हमारे साथ नहीं जायेगा।

विश्वविद्यालय और सेमिनरी में मेरा सबसे अच्छा मित्र था जिसका नाम डॉन मक्ल्यूर *(Don McClure)* था। डॉन अग्रगामी सुसमाचार-प्रसार *(pioneer missionaries)* का कार्य करने वाले माता-पिता का पुत्र था। वह अफ्रीका के भीतरी भाग में बड़ा हुआ था। डॉन ने व्यक्तिगत रीति से कई आदिवासी जनजातियों की खोज की थी; वह उन जनजातियों द्वारा देखा गया सबसे पहला गोरा व्यक्ति था। उसने अपने शयनकक्ष में कई नाग मारे थे। एक बार उसका आमना-सामना एक मगरमच्छ से तब हुआ जब वह मगरमच्छ कूदकर उसकी नाव में आ गया था। एक बार उसके पिता ने उसे तब बचाया जब भूखे सिंहों के झुण्ड ने उसे घेरा था।

अपनी बाइबल में मैं डॉन के पिता की मृत्यु का विवरण करने वाले समाचार पत्र के भाग को रखता हूँ। डॉन और उसके पिता इथियोपिया के एक दूरस्थ क्षेत्र में तम्बू लगाए हुए थे। रात के समय, वे साम्यवादी छापेमार *(communist guerrillas)* द्वारा अचानक से किए गए आक्रमण द्वारा जगाए गए। डॉन और उसके पिता को घसीटकर मृत्युदण्ड देने वाली टुकड़ी के सामने ले जाया गया। जब छापामार सैनिकों ने अपनी बन्दूक चलाई तो डॉन अपने पिता के साथ खड़ा था। उन्होंने पहले डॉन के पिता पर गोली चलाई और वे तुरन्त मर गए। जब छः फुट दूर से डॉन पर बन्दूक चलाई गई तो डॉन ने ध्वनि सुनी और चिंगारी देखी। वह अपने पिता के पास गिर गया, तथा यह जानकार चौंक गया कि वे अभी भी जीवित हैं।

रात के हुल्लड़ में, छापेमार सैनिक जिस शीघ्रता से आए थे, उसी शीघ्रता से चले भी गए। जब तक सब कुछ शान्त नहीं हो गया तब तक डॉन यह स्वांग करते हुए भूमि पर पड़ा रहा कि वह मरा हुआ था। उसको कुछ ही चोटें लगी थीं, यद्यपि उसके पूरे शरीर में जलने के घाव थे। भाग जाने की इच्छा को दबाते हुए, डॉन वहाँ तब तक रहा जब तक उसने अपने हाथों से एक उथली कब्र न खोद ली। वहाँ उसने अपने पिता की देह को भूमि में गाड़ दिया।

मैं डॉन को "टार्ज़न" *(Tarzan)* कहता हूँ क्योंकि उसका जीवन जॉनी वाय्समय्यूलर *(Johnny Weissmuller)* की कथाओं के जैसा था। वह मेरे परिचित जनों में से सबसे साहसी व्यक्ति था

(और आज तक है भी)। यदि मैं युद्ध कि स्थिति में शत्रु के क्षेत्र में किसी गड्ढे में फँसा होता, तो मैं चाहता कि डॉन मक्ल्यूर मेरे साथ हो। मुझे गर्व होता यदि अन्धकार की तराई में वह मेरे साथ होता। परन्तु मेरे पास डॉन से महान् एक ऐसा जन है जो प्रतिज्ञा करता है कि वह मेरे साथ तराई में से होकर जाएगा।

परमेश्वर संकट के समय में हमारा शरणस्थान और बल है। उसकी प्रतिज्ञा केवल यह नहीं है कि वह हमारे साथ तराई में जाएगा। इससे भी महत्वपूर्ण, तराई की दूसरी ओर की बातों के लिए उसकी प्रतिज्ञा है। परमेश्वर सम्पूर्ण यात्रा में हमारे साथ जाने की प्रतिज्ञा करता है जिससे कि वह उन बातों की ओर हमारा मार्गदर्शन करे जो तराई के उस पार हैं। मृत्यु की घोर अन्धकार की तराई एक ऐसी घाटी नहीं है जिसमें एक ही मार्ग से प्रवेश और निकास किया जाता है। यह तो एक उत्तम देश के लिए जाने का गलियारा है। तराई हमें जीवन की ओर ले जाती है—ऐसा जीवन जो आपकी कल्पना से अधिक बहुतायत का जीवन है। मृत्यु की बुलाहट का लक्ष्य तो स्वयं स्वर्ग है। परन्तु इस तराई को छोड़ स्वर्ग जाने का और कोई मार्ग नहीं है।

दाऊद भी इस बात को समझता था। यद्यपि वह ख्रीष्ट से पूर्व, पुनरुत्थान से पूर्व, नए नियम में महिमा के प्रकाशन से पूर्व था, फिर भी परमेश्वर इस विषय पर पूर्ण रीति से शान्त नहीं था। पहले ही "अब्राहम की गोद" की आशा थी (लूका 16:22)।

दाऊद ने इस विषय में अपने विश्वास का अंगीकार किया: "यदि मुझे यह विश्वास न होता कि जीवितों की भूमि में यहोवा की भलाई को देखूँगा, तो मैं हताश हो गया होता" (भजन 27:13)।

अब्राहम, इसहाक और याकूब का परमेश्वर जीवितों का परमेश्वर है। दाऊद का परमेश्वर जीवितों का परमेश्वर है। यीशु का परमेश्वर जीवितों का परमेश्वर है। मृत्यु के अन्धकार के उस पार जीवन है।

मेरे मित्र ने और मेरे पिता ने दौड़ में भाग लिया क्योंकि परमेश्वर ने उन्हें दौड़ने के लिए बुलाया था। उन्होंने दौड़ पूरी की क्योंकि हर बाधा के मध्य परमेश्वर उनके साथ था। उन्होंने विश्वास की रक्षा की क्योंकि परमेश्वर उनकी रक्षा कर रहा था।

यह एक सामर्थी विरासत है। यही वह विरासत है जिसे ख्रीष्ट अपनी सब भेड़ों को देता है।

अध्याय छः

विश्वास में मरना

मृत्यु के विषय में जो प्रश्न हमें कष्ट देता है वह यह नहीं है कि *यदि* हम मरेंगे। एक चुटकुले के अनुसार जीवन में केवल दो ही बातें निश्चित हैं—मृत्यु और कर चुकाना। परन्तु कुछ लोग कर चुकाने से स्वयं को बचा लेते हैं। एकमात्र उपाय जिससे हम सम्भवतः मृत्यु से बच सकते हैं वह है ख्रीष्ट के आगमन तक जीवित बचे रहना।

मुझे पिछले वाक्य के शब्दों को परिवर्तित करना पड़ गया। मैंने पहले लिखा था: "एकमात्र उपाय जिससे हम सम्भवतः मृत्यु से बच सकते हैं वह है ख्रीष्ट के आगमन पर *जीवित होना।*" मैंने वाक्य में परिवर्तन किया क्योंकि मेरा मूल वाक्य कम से कम या तो भ्रामक था, या फिर इससे बुरा कहें तो यह विधर्मी था। नया नियम हमें आश्वास्त करता है कि वे सब लोग जो ख्रीष्ट में हैं निश्चय ही उसके आगमन के समय जीवित होंगे। यदि हम उसके आने से पहले मर जाते हैं, तो हम उसके महिमामय आगमन की साक्षी होने के लिए जीवित किए जाएँगे:

> परन्तु हे भाइयो, हम नहीं चाहते कि तुम उनके विषय में अनभिज्ञ रहो जो सो गए हैं, और अन्य लोगों के समान शोकित होओ जो आशारहित हैं। हम विश्वास करते हैं कि यीशु मरा और जी भी उठा—इसलिए परमेश्वर उन्हें भी जो यीशु में सो गए हैं, उसके साथ ले आएगा।
>
> इस कारण हम प्रभु के वचन के अनुसार तुम से कहते हैं कि हम जो जीवित हैं और प्रभु के आने तक बचे रहेंगे, सोए हुओं से कदापि आगे न बढ़ेंगे। क्योंकि प्रभु स्वयं ललकार और प्रधान

स्वर्गदूत की पुकार और परमेश्वर की तुरही की आवाज़ के साथ स्वर्ग से उतरेगा, और जो ख्रीष्ट में मर गए हैं, वे पहले जी उठेंगे।

तब हम जो जीवित हैं और बचे रहेंगे उनके साथ हवा में प्रभु से मिलने के लिए बादलों पर उठा लिए जाएँगे। इस प्रकार हम सदैव प्रभु के साथ रहेंगे।

इसलिए इन बातों से एक दूसरे को शान्ति दिया करो। (1 थिस्सलुनीकियों 4:13-18)

यहाँ प्रेरित उस बात का स्पष्ट विवरण देता है जिसे सामान्यतः सन्तों का मेघारोहण *(rapture)* कहा जाता है। कोई भी मसीही मेघारोहण से नहीं चूकेगा। और जो लोग तब तक जीवित बचे रहेंगे जब तक यह घटित नहीं हो जाता, तब तक उन्हें उन लोगों की तुलना में कोई लाभ नहीं होगा जो पहले ही मर चुके हैं। ख्रीष्ट में मर चुके लोग इस घटना के लिए जिलाए जाएँगे।

मुझे स्मरण है कि बचपन में मुझे चार जुलाई (अमरीकी स्वन्त्रता दिवस) की आतिशबाजी से पहले सोने जाना पड़ता था। मैं मनोरंजन से चूक जाने के डर से सोना नहीं चाहता था। मेरे माता-पिता मुझसे यह प्रतिज्ञा करके मेरी चिन्ता को दूर करते थे कि वे आतिशबाजी देखने के लिए मुझे समय पर जगा देंगे। उन्होंने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

हम में से किसी ने भी ख्रीष्ट के जन्म को नहीं देखा। इस संसार में की गई उसकी सेवकाई के समय हुए आश्चर्यकर्मों के अद्भुत प्रदर्शन को देखने से हम चूक गए। इसी प्रकार, आज जीवित लोगों में से किसी ने भी क्रूस पर ख्रीष्ट की पीड़ा को नहीं देखा। हम में से कोई भी उसके महिमामय पुनरुत्थान और स्वर्गारोहण के आँखो-देखे साक्षी नहीं थे। परन्तु कोई भी मसीही ख्रीष्ट के द्वितीय आगमन के समय सोता नहीं रहेगा। यद्यपि हमने उसके प्रथम आगमन को नहीं देखा, किन्तु हम सब उसके पुनरागमन के आँखो-देखे साक्षी होंगे। यीशु के महिमाकरण के चर्मोत्कर्ष को सब विश्वासी देखेंगे। परमेश्वर यह सुनिश्चित करने के लिए मृतकों को जिलाएगा कि प्रत्येक आँख उसके विजयी पुनरागमन को देखे।

यह घटना हमारी मृत्यु से सम्बन्धित एकमात्र "यदि" को सीमाबद्ध करती है।

महान् विभाजन: विश्वास में मरना अथवा पाप में मरना

हमारे पास अपनी मृत्यु के सम्बन्ध में कई प्रश्न हैं। हम सोचते हैं कि हम *कहाँ* मरेंगे। हम चिन्तन करते हैं कि हम *कब* मरेंगे। हम पूछते हैं कि हम *क्यों* मरेंगे। परन्तु पवित्रशास्त्र का मुख्य ध्यान इस बात पर है कि हम *कैसे* मरेंगे। यह बड़ा प्रश्न है, यह वह प्रश्न है जो अर्थ से परिपूर्ण है।

मुझे एक बार अपने ईश्वरविज्ञानीय परामर्शदाता जॉन गर्स्टनर से एक छोटी चिट्ठी प्राप्त हुई।

उस छोटी चिठ्ठी में उन्होंने मुझे यह समाचार दिया कि हमारा एक मित्र कर्करोग *(cancer)* के कारण मर गया था। गर्स्टनर के सरल किन्तु अर्थपूर्ण शब्द ये थे: "टॉम ग्राहम विश्वास में मरा।" उन पाँच शब्दों ने मुझ से बहुत कुछ कहा। गर्स्टनर कह रहे थे कि टॉम एक मसीही के रूप में मरा। टॉम अन्त तक विश्वासयोग्य बना रहा।

पवित्रशास्त्र इस विषय में बहुत कुछ कहता कि हम *कैसे* मरते हैं। नहीं, बाइबल मृत्यु के विशिष्ट कारणों की बात नहीं करती है। हम जानते हैं कि हम कर्करोग से, दिल के दौरे से, गला घोंटने से, गोली से, या कई अन्य घातक कारणों से मर सकते हैं। किन्तु जैविक मृत्यु के ये सम्भावित कारण पवित्रशास्त्र की मुख्य चिन्ता नहीं हैं।

जब पवित्रशास्त्र मृत्यु *कैसे* होगी के विषय में बात करता है, तो उसका ध्यान मृत्यु के समय व्यक्ति की आत्मिक स्थिति पर होता है। यहाँ हम देखते हैं कि मृत्यु के "कैसे" को केवल दो विकल्पों तक ही सीमित किया गया है। हम या तो विश्वास में मरते हैं अथवा अपने पापों में मरते हैं:

> "हे मनुष्य के सन्तान, मैंने तुझे इस्राएल के घराने का पहरेदार नियुक्त किया है। जब भी तू मेरे मुख का वचन सुने तो उन्हें मेरी ओर से चेतावनी देना। जब मैं दुष्ट से कहूँ, 'तू निश्चय मरेगा, और तू उसे चेतावनी न दे या उस दुष्ट को उसकी दुष्टता से सचेत करने के लिए उससे न कहे, जिस से वह जीवित रहे, तो वह दुष्ट तो अपने अधर्म में मरेगा ही, परन्तु उसके खून का लेखा मैं तुझी से लूँगा। परन्तु यदि तू दुष्ट को चिताए और वह अपनी दुष्टता और अपने कुटिल मार्ग से न फिरे तो वह अपने अधर्म में मरेगा, परन्तु तू अपने आपको बचा लेगा।" (यहेजकेल 3:17-19)

जिस बात की घोषणा यहेजकेल ने पुराने नियम में की, यीशु ने नए नियम में पुनः उसकी पुष्टि की: "इसलिए मैंने तुमसे कहा कि तुम अपने पापों में मरोगे, क्योंकि जब तक तुम विश्वास न करो कि मैं वही हूँ, तुम अपने पापों में मरोगे" (यूहन्ना 8:24)।

हम कभी-कभी सोचते हैं कि किसी व्यक्ति के साथ घटित होने वाली सबसे बुरी बात मृत्यु है। यह यीशु का सन्देश नहीं है। ख्रीष्ट के अनुसार, सम्भवतः सबसे बुरी बात जो हमारे साथ घट सकती है वह है अपने पापों में मरना।

जिसकी आज व्यापक रूप से उपेक्षा की जाती है वह यही बाइबलीय सन्देश है। हमें यह सोचना अच्छा लगता है कि प्रत्येक मरने वाला व्यक्ति अपने आप स्वर्ग चला जाता है। हम मानते हैं कि परमेश्वर के राज्य में प्रवेश करने के लिए केवल मृत्यु ही आवश्यक माँग है। यहेजकेल की चेतावनी की उपेक्षा की जाती है क्योंकि हम यह विश्वास ही नहीं करते हैं कि यह आवश्यक है।

चेतावनी के शब्दों की आवश्यकता

मुझे एक बार बिली ग्राहम *(Billy Graham)* से बात करने का अवसर मिला था। हमारे वार्तालाप के मध्य, मैंने उन्हें एक अनुभव के विषय में बताया जो मेरे साथ महाविद्यालय के समय घटित हुआ था जब मैं छात्र था। मुझे 1950 के दशक के उत्तरार्ध में पुरुषों के छात्रावास में किसी टीवी के आस-पास खड़े होने की बात स्मरण आई। हम में से कुछ लोग एक टीवी कार्यक्रम को देखने के लिए एकत्र हुए थे जिसमें डॉ. ग्राहम का साक्षात्कार हो रहा था।

डॉ. ग्राहम का साक्षात्कार करते समय प्रश्नकर्ता ने प्रयास किया कि वातावरण को उथला और हास्यपूर्ण बनाए रखा जाए। उसने स्वयं के प्राण की दशा के विषय में उपहास किया। डॉ. ग्राहम ने अपने सन्तुलन को बनाए रखा और गरिमा और शालीनता के साथ, उस राष्ट्रीय टीवी कार्यक्रम के प्रश्नकर्ता से कहा कि उसे ख्रीष्ट की आवश्यकता है।

तीस वर्षों के पश्चात् मैंने डॉ. ग्राहम से उस घटना के विषय में पूछा। उन्होंने उत्तर दिया कि वे उस व्यक्ति के साथ सम्पर्क में बने रहे और उन्होंने ख्रीष्ट की आवश्यकता के विषय में उसे स्मरण दिलाया। डॉ. ग्राहम वास्तव में उस व्यक्ति की चिन्ता करते थे और नहीं चाहते थे कि वह अपने पापों में मरे।

एक मर रहे व्यक्ति से उद्धारकर्ता की आवश्यकता के विषय में बात करना सरल नहीं है। ऐसी स्थिति में हम कदापि नहीं चाहते हैं कि हम उसे व्यथित करें या किसी भी रीति से उसे असहजता का आभास हो। हम स्वाभाविक रूप से सोचते हैं कि ऐसे विषयों पर चर्चा न करना मानवीय दयालुता का कार्य है।

परन्तु परमेश्वर हमें आज्ञा देता है कि हम मर रहे लोगों से उनके लिए उद्धारकर्ता की आवश्यकता के विषय में बात करें। यहेजकेल इस बात को पूर्णतः स्पष्ट कर देता है। यदि हम लोगों से प्रेम करते हैं, तो हम उनके पाप में मरने के परिणामों के विषय में उन्हें चिताएँगे।

हम उन अभियोगों को स्मरण करते हैं जिनको यिर्मयाह ने परमेश्वर के सामने रखा। यिर्मयाह दुःखी था क्योंकि परमेश्वर ने उसे लोगों को एक ऐसी चेतावनी सुनाने को कहा था जिसे वे सुनना नहीं चाहते थे। यिर्मयाह के लिए स्थिति और भी कठिन थी, क्योंकि प्रसिद्ध झूठे नबी उसकी सेवा को दुर्बल कर रहे थे, क्योंकि उन्होंने लोगों को वही बताया जो वे सुनना चाहते थे। उन्होंने "सब ठीक है, सब ठीक है" की घोषणा की परन्तु थोड़ी भी शान्ति नहीं थी (यिर्मयाह 8:11)।

परमेश्वर की ओर से बात करते हुए यिर्मयाह ने घोषणा की: "उन नबियों की बातों को मत सुनो जो नबूवत करके तुम से कहते हैं। वे तुम्हें व्यर्थ-मार्ग पर चला रहे हैं। वे यहोवा के मुख की नहीं वरन् अपने ही मन की काल्पनिक बातें करते हैं। मेरा निरन्तर तिरस्कार करने वालों से वे कहते हैं,

'यहोवा ने कहा है, कि तुम्हारा भला होगा," और उन सब से जो अपने हृदय की कठोरता में चलते हैं, वे कहते हैं, 'तुम पर विपत्ति नहीं आएगी'" (यिर्मयाह 23:16-17)।

झूठे नबियों के सन्देश ने लोगों के घावों को *बाहरी रूप से* चंगा किया (यिर्मयाह 8:11)। झूठे शब्द बड़े घाव पर छोटी सी पट्टी लगाने के जैसे हैं। चंगाई बहुत ही कम होगी। गिलाद के वास्तविक मरहम के स्थान पर झूठे नबी मात्र थोड़ी सी शान्ति दे रहे थे।

सबसे बड़ा झूठ वह है जो यह घोषणा करता है कि कोई अन्तिम न्याय नहीं होगा। परन्तु नासरत के यीशु की एक प्रमुख शिक्षा यह थी कि अन्तिम न्याय होगा। उसने स्पष्ट रूप से सिखाया कि अन्तिम न्याय होगा। यदि इस विषय में हम यीशु की बातों की उपेक्षा करें तो हम उसे एक शिक्षक के रूप में आदर नहीं दे रहे होते हैं। ख्रीष्ट के इन शब्दों पर ध्यान दें:

> "पर जब मनुष्य का पुत्र अपनी महिमा में आएगा और सब स्वर्गदूत उसके साथ आएँगे, तो वह अपने महिमामय सिंहासन पर विराजमान होगा। और सब जातियाँ उसके सम्मुख एकत्रित की जाएँगी; और वह उन्हें एक दूसरे से अलग करेगा, जैसे चरवाहा भेड़ों को बकरियों से अलग करता है। वह भेड़ों को अपनी दाहिनी ओर, तथा बकरियों को बाईं ओर करेगा। तब राजा अपने दाहिने हाथ वालों से कहेगा, 'हे मेरे पिता के धन्य लोगों, आओ, उस राज्य के अधिकारी बनो जो जगत की उत्पत्ति से तुम्हारे लिए तैयार किया गया है।' . . . तब वह बाईं ओर वालों से कहेगा, 'हे शापित लोगों, मुझ से दूर होकर उस अनन्त अग्नि में जा पड़ो जो शैतान और उसके दूतों के लिए तैयार की गई है।' . . . ये लोग अनन्त दण्ड भोगेंगे, परन्तु धर्मी अनन्त जीवन में प्रवेश करेंगे।" (मत्ती 25:31-46)

यहाँ यीशु ने चेतावनी के गम्भीर शब्द कहे। वे लोग जो अपने पापों में मरते हैं अलग किए जाएँगे; वे बकरियों के साथ गिने जाएँगे।

यीशु ने इस चेतावनी को दूसरे स्थलों में और तीव्र किया था। उसने चिताया कि, "कुछ भी छिपा नहीं जो प्रकट न होगा, न कोई गुप्त बात है जो जानी नहीं जाएगी और प्रकट नहीं होगी" (लूका 8:17)। उसने यह भी कहा: "कुछ भी ढका नहीं जो खोला न जाएगा, और न कुछ छिपा है जो जाना न जाएगा। इसलिए जो कुछ तुमने अन्धियारे में कहा, वह उजियाले में सुना जाएगा, और जो कुछ तुमने भीतर के कमरों में फुसफुसा कर कहा वह छत पर से प्रचार किया जाएगा "लूका 12:2-3)।

यीशु ने चिताया कि एक ऐसा दिन आएगा जब सब गुप्त बातें जानी जायेंगी। इस जगत में बातों को छिपाने के सभी प्रयासों का यह अन्तिम निर्णायक अन्त होगा। प्रत्येक अलमारी खोली जाएगी और सब छिपाई गई वस्तुओं का खुलासा होगा। यदि हम ख्रीष्ट की धार्मिकता के वस्त्र द्वारा "ढके" नहीं गए हैं तो हम सबके पाप प्रकट किए जाएँगे।

भविष्य की नग्नावस्था का यह दिन, ऐसा दिन होगा, जब वे लोग जो अपने पाप में मरते हैं "पहाड़ों से कहने लगेंगे, 'हम पर गिर पड़ो,' और पहाड़ियों से, 'हमें ढाँप लो!'" (लूका 23:30)।

आने वाले प्रकोप से भागना

नया नियम यीशु को "उद्धारकर्ता" के रूप में वर्णित करता है। *यीशु* के नाम की घोषणा प्रधान स्वर्गदूत जिब्राईल द्वारा की गई जब उसने मरिमय से भेंट की। यूसुफ के पास स्वर्गदूत के सन्देश ने इस नाम की पुष्टि की: "वह पुत्र को जन्म देगी, और तू उसका नाम यीशु रखना, क्योंकि वह अपने लोगों का उनके पापों से उद्धार करेगा" (मत्ती 1:21)।

जिस उद्धार की बात बाइबल करती है, उसका एक विशिष्ट लक्ष्य है। सामान्य रूप से *उद्धार* शब्द कई बातों के लिए उपयोग किया जा सकता है। संकट या क्लेश से किसी भी प्रकार के छुटकारे को उद्धार कहा जा सकता है। बाइबल के अनुसार, किसी व्यक्ति को रोग या आर्थिक संकट से बचाया जा सकता है। यदि कोई सेना युद्ध में पराजय से बच जाती है, तो वह उद्धार का अनुभव करती है।

परन्तु यीशु द्वारा लाया गया उद्धार इस प्रकार का सामान्य उद्धार नहीं है। यह विशिष्ट है। यीशु "आने वाले प्रकोप से" हमें बचाता है (1 थिस्सलुनीकियों 1:10)।

यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले के प्रचार ने भविष्य के विषय में इस चेतावनी पर बल दिया था। यूहन्ना ने यह कहकर उस समय के आत्मिक अगुवों, अर्थात् फरीसियों और सदूकियों से कठोरता से बात की, "तुम्हें किसने सचेत कर दिया कि आने वाले प्रकोप से भागो?" (मत्ती 3:7)। जो चेतावनी प्रथम शताब्दी के इस्राएल को दी गई थी, यह वही चेतावनी है जिसकी दुःखद रीति से वर्तमान समय में उपेक्षा की जा रही है।

मैंने एक बार दो पुरुषों के मध्य के वार्तालाप को सुना। वे एक प्रिसबुतिरवादी *(Presbyterian)* कलीसिया में अतिथि प्रचारक द्वारा प्रचार किए गए सन्देश पर चर्चा कर रहे थे। पहले पुरुष ने पूछा, "रविवार को प्रचारक कैसे थे?"

दूसरे पुरुष ने उत्तर दिया: "वह एक पुराने विचारों वाले प्रचारक थे। उसने अग्नि और गन्धक के विषय में प्रचार किया।"

प्रचारक को "पुराने विचारों वाला" इसलिए कहा गया क्योंकि उसने अन्तिम न्याय के विषय में

प्रचार किया। न्याय की अवधारणा को चलन से बाहर ठहराया गया। यह एक असामान्य दृष्टिकोण नहीं है। हमारी संस्कृति में अन्तिम न्याय के विषय में बात करना प्रचलन में नहीं है।

मेरा मानना है कि यीशु के समय में भी इसी प्रकार के वार्तालाप हो रहे थे। निस्सन्देह यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले और यीशु के प्रचार सुनने वाले कुछ लोगों ने उन्हें "पुराने विचारों वाला" कहा होगा। सम्भवतः लोगों ने कुछ इस प्रकार से कहा होगा: "अरे ये लोग पुराने विचारों वाले हैं। ये तो पुराने नियम के नबियों जैसे बात करते हैं।"

यह विचित्र बात है कि हम अन्तिम न्याय को अति शीघ्र ही "पुराने विचारों वाला" ठहराकर अस्वीकार कर देते हैं। विशेष रूप से यह इसलिए विचित्र है क्योंकि यह एक ऐसे समय में और ऐसे समाज में अस्वीकार हो रहा है जो न्याय की अत्यधिक चिन्ता करता है। हमने नागरिक न्याय, समाजिक न्याय, और अन्तरराष्ट्रीय न्याय के लिए कार्य किया है। फिर भी हम उस बात को देखते हैं जिसे दार्शनिक इमानुएल कान्ट *(Immanuel Kant)* ने सटीक रीति से कहा था: इस संसार में न्याय सर्वदा प्रबल नहीं होता है।

बाइबल का परमेश्वर न्याय का परमेश्वर है। उसका स्वयं का चरित्र न्यायी है। इसलिए, यदि परमेश्वर इस संसार के अन्याय का समाधान न करे, यदि वह न्याय के तुले को सर्वदा असन्तुलित रहने दे, तो इसका अर्थ उसकी अपनी खराई के साथ समझौता करना होगा। और यही वह कार्य है जिसे वह नहीं करता है। वह अन्तिम तथा पूर्ण न्याय करने की प्रतिज्ञा करता है।

अन्तिम न्याय और अन्तिम निर्णय

सम्पूर्ण पृथ्वी का न्यायाधीश अन्तिम निर्णय की घोषणा किए बिना अन्तिम न्याय नहीं कर सकता है। वह बल देकर कहता है कि सब मनुष्य अपने कार्यों के प्रति अवश्य ही उत्तरदायी ठहराए जाएँगे। यदि हम मूल रीति से उत्तरदायी नहीं हैं, तो फिर हम यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मूल रूप से हमारा कोई महत्व नहीं है। तब इसका अर्थ होगा कि अन्ततः इस बात का कोई महत्व नहीं है कि हम अपने जीवन को कैसे जीते हैं। परन्तु हम सब जानते हैं कि इस बात का महत्व *अवश्य है* कि लोग कैसे जीते हैं। मेरे लिए यह महत्व रखता है कि लोग मुझसे कैसे व्यवहार करते हैं। आपके लिए यह महत्व रखता है कि लोग आपसे कैसे व्यवहार करते हैं।

हम में से प्रत्येक व्यक्ति ने कभी न कभी अन्याय का सामना किया है। इसी प्रकार हम में से प्रत्येक ने अन्य लोगों के साथ अन्याय भी किया है। इस कारण से हम ऐसे अन्याय का अनुभव करते हैं और अन्याय करते हैं क्योंकि पापी होने के नाते; हम अन्यायी लोग हैं।

जिस दुविधा का हम सामना करते हैं वह यह है: परमेश्वर धर्मी है, हम अधर्मी हैं। यह सबसे बुरी दुविधा है जिसका मनुष्य सामना कर सकता है। किसी दोषी व्यक्ति के लिए अपने देश की

न्याय प्रणाली के न्याय का सामना करना तो एक बात है। परन्तु परमेश्वर के न्याय के सिंहासन के सामने खड़ा होना पूर्ण रूप से भिन्न बात है। हम दाऊद के साथ पुकारते हैं, "हे याह, यदि तू अधर्मों का लेखा लेता, तो हे प्रभु, कौन टिक पाता?" (भजन 130:3)। दाऊद का प्रश्न शब्दाडम्बरपूर्ण *(rhetorical)* है। इसका उत्तर तो स्वतः स्पष्ट है: *कोई भी नहीं* टिक पाएगा।

मसीहियत का केन्द्रीय विषय धर्मीकरण का विषय है। यह इस दुविधा का सीधा सामना करता है। अधर्मी व्यक्ति के लिए धर्मी और पवित्र परमेश्वर की उपस्थिति में खड़े होने के लिए एकमात्र उपाय है धर्मी ठहराया जाना। यदि हम धर्मी न ठहराए जाएँ, तो हम अपने पापों में मरेंगे।

धर्मी ठहराए जाने का एकमात्र उपाय है ख्रीष्ट की धार्मिकता। केवल उसी के पास हमें ढकने के लिए पर्याप्त योग्यता *(merit)* है। वह धार्मिकता विश्वास द्वारा प्राप्त की जाती है। यदि हम ख्रीष्ट पर भरोसा करते हैं तो हम उसकी धार्मिकता द्वारा ढाँपे जाते हैं और विश्वास द्वारा धर्मी ठहराए जाते हैं। यदि हम ख्रीष्ट पर भरोसा नहीं करते हैं, हम अकेले ही परमेश्वर के न्याय के सामने खड़े होंगे, अर्थात् हम अधर्मी लोग धर्मी परमेश्वर के सामने होंगे।

हो सकता है कि आप सोच रहे हों: "मैं तो अधर्मी व्यक्ति नहीं हूँ। मैंने कभी भी किसी की हत्या नहीं की है। मैंने ऐसी किसी वस्तु को नहीं चुराया है जो मेरी नहीं है।" वास्तव में, यदि आप सिद्ध रूप से धर्मी हैं, तो आपको उद्धारकर्ता की आवश्यकता नहीं है। यदि आपने कभी भी परमेश्वर की व्यवस्था का उल्लंघन नहीं किया है, तो आपको उसके न्याय से डरने की कोई आवश्यकता नहीं है।

किन्तु हम दो बड़ी भ्रान्तियों से ग्रसित हैं। पहली भ्रान्ति यह है कि हम सिद्ध रूप से धर्मी परमेश्वर की उपस्थिति में खड़े होने के लिए पर्याप्त रूप से भले हैं। यह एक भ्रान्ति है क्योंकि हम में से प्रत्येक व्यक्ति ने पाप किया है। परमेश्वर के सामने खड़े होने के लिए हमें सिद्ध रूप से पाप से मुक्त होना होगा और सिद्धता से धर्मी होना होगा। यदि हम सोचते हैं कि हम सिद्ध हैं तो हम स्वयं को गम्भीर रूप से धोखा दे रहे हैं।

केवल कुछ ही लोग हैं जो इतने धोखे में हैं तथा वे सोचते हैं कि वे निष्पाप हैं। हम में से अधिकाँश लोग इस भ्रान्ति से ग्रसित नहीं हैं। हम में से कई लोग इस दूसरी भ्रान्ति से ग्रसित हैं। हमें इस बात से कष्ट नहीं होता है कि परमेश्वर धर्मी है और हम अधर्मी हैं। हम इस आशा को बनाए रखते हैं कि क्योंकि परमेश्वर प्रेमी और दयालु है, भले ही हम अपने पापों से कभी पश्चात्ताप न करें और ख्रीष्ट को उद्धारकर्ता के रूप में ग्रहण न करें फिर भी वह स्वर्ग में हमारे लिए स्थान उपलब्ध कराएगा। हम सोचते हैं कि उद्धार के लिए विश्वास एक आवश्यक माँग नहीं है।

यह भ्रान्ति परमेश्वर की दया को अपमानित करती है। यह इस बात को मानती है कि अपने एकलौते पुत्र के क्रूसीकरण के द्वारा, परमेश्वर ने पर्याप्त कार्य नहीं किया। यह इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि प्रायश्चित्त करने वाले उद्धारकर्ता पर विश्वास और भरोसा करने की माँगें संकीर्ण हैं।

इब्रानियों के लेखक ने अपने पाठकों को यह चिताने के लिए परिश्रम किया कि यीशु द्वारा किए गए याजकीय प्रायश्चित्त के कार्य की उपेक्षा करने के परिणाम क्या होंगे। उसने एक और शब्दाडम्बरपूर्ण प्रश्न उठाया: "हम ऐसे महान् उद्धार की उपेक्षा करके कैसे बच सकेंगे? इसका वर्णन सर्वप्रथम प्रभु द्वारा किया गया और इसकी पुष्टि सुनने वालों ने हमारे लिए की" (इब्रानियों 2:3)।

इस चेतावनी के पश्चात् एक अन्य चेतावनी आती है: "हे भाइयो, सावधान रहो, कहीं ऐसा न हो कि तुम में से किसी का मन दुष्ट और अविश्वासी हो जाए और तुम जीवित परमेश्वर से दूर हो जाओ। जब तक आज का दिन कहलाता है, तुम दिन प्रतिदिन एक दूसरे को प्रोत्साहित करो, कहीं ऐसा न हो कि तुम में से कोई व्यक्ति पाप के छल में पड़कर कठोर हो जाए। . . . उसने किन से शपथ खाई कि तुम मेरे विश्राम में प्रवेश नहीं कर पाओगे? क्या उनसे नहीं जिन्होंने आज्ञा न मानी? अतः हम देखते हैं कि अविश्वास के कारण ही वे प्रवेश न करने पाए" (इब्रानियों 3:12-19)।

मैं नहीं जानता कि आप इस पुस्तक को कब पढ़ रहे हैं। मेरे पास यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि पंचाँग *(calendar)* पर आज क्या तिथि है। पर भले ही आज सप्ताह का कोई भी दिन हो और कोई भी महीना चल रहा हो, एक बात निश्चित है: आप इन शब्दों को आज पढ़ रहे हैं। हम ध्यान देते हैं कि इब्रानियों की चेतावनी *आज* के लिए है। यदि हम कल तक उपेक्षा करते जाएँ, तो सम्भवतः बहुत देर हो चुकी होगी।

पवित्रशास्त्र की चेतावनी इस बात पर बल देती है कि जब तक हम पश्चात्ताप और विश्वास को टालते जाएँ, हम पाप के छल द्वारा "कठोर" किए जाने के खतरे में होते हैं। हम सुसमाचार को इतनी बार सुन चुके हैं कि हम उसके प्रति असंवेदनशील हो सकते हैं। हमारे हृदय कठोर बन सकते हैं; हमारे विवेक दागे जा सकते हैं। पाप इसी रीति से कार्य करता है। पहले हम स्वयं को छूट देते हैं और स्वयं को सही ठहराने का हर सम्भव प्रयास करते हैं। अन्त में हम यह सोचने के लिए स्वयं को धोखा दे सकते हैं कि विश्वास और पश्चात्ताप आवश्यक नहीं हैं।

विलम्ब न करने की अनिवार्यता

परमेश्वर कहता है कि पश्चात्ताप और विश्वास अनिवार्य हैं, पूर्ण रूप से अनिवार्य। इब्रानियों घोषणा करता है कि परमेश्वर इस बात के प्रति इतना गम्भीर है कि उसने शपथ खाई है कि वह अनाज्ञाकारी लोगों को अपने विश्राम में प्रवेश नहीं करने देगा। इससे पवित्र शपथ कभी भी कोई भी नहीं खाई गई है। इस सम्भावना के विषय में सोचना भी बहुत बड़ी भ्रान्ति है कि परमेश्वर इस शपथ को पूरी नहीं करेगा।

इब्रानियों के लेखक ने यह कहकर निष्कर्ष निकाला, "अतः हम देखते हैं कि अविश्वास के कारण ही वे प्रवेश न करने पाए" (इब्रानियों 3:19)। यदि कोई व्यक्ति अविश्वास में बना रहता है,

तो यह सम्भव ही नहीं है कि वह परमेश्वर के विश्राम में प्रवेश करे। अविश्वास स्वर्ग के मार्ग में बाधा है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि मरने के दो मार्ग हैं। हम विश्वास में मर सकते हैं या फिर हम अपने पापों में मर सकते हैं।

बहुत सारे लोग मृत्यु के उपरान्त दूसरा अवसर मिलने की आशा रखते हैं। रोमन कैथोलिक कलीसिया पापशोधन-स्थल *(purgatory)* के सिद्धान्त के माध्यम से इस आशा को बढ़ावा देती है। पापशोधन-स्थल उन लोगों के लिए "शोधन" का स्थान है जिन्हें स्वर्ग में प्रवेश करने से पहले थोड़ा शुद्ध किए जाने की आवश्कता है। इसलिए, मरे हुए लोगों के लिए मिस्सा और प्रार्थनाएँ की जाती हैं। (औपचारिक रोमन कैथोलिक शिक्षा यह है कि जो लोग पापशोधन-स्थल में हैं वे बपतिस्मा पाए हुए मसीही हैं जो अन्ततः स्वर्ग में प्रवेश करेंगे। किन्तु, कई कैथोलिक और अन्य लोगों की कल्पना में ऐसा प्रतीत होता है कि पापशोधन-स्थल वह स्थान है जहाँ पापियों को सुधरने के लिए दूसरा अवसर दिया जाता है जिससे कि वे स्वर्ग पहुँच सकें।)

पापशोधन-स्थल का सिद्धान्त एक ऐसा सिद्धान्त है जिसे डरी हुई मानवता की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बनाया गया था। परन्तु पवित्रशास्त्र में इस विचार के समर्थन में एक भी प्रमाण नहीं है। इसके विपरीत, पवित्रशास्त्र में मृत्यु से *पहले* पश्चात्ताप की आवश्यकता पर गहनता से ध्यान दिया जाता है। इब्रानियों का लेखक घोषणा करता है, "मनुष्यों के लिए एक ही बार मरना और उसके बाद न्याय का होना नियुक्त किया गया है" (इब्रानियों 9:27)।

मैं बड़े स्नेह के साथ अपने चाचा को स्मरण करता हूँ जो मेरे बचपन के समय हमारे घर में रहते थे। वह एक कठोर पुरुष थे जिनके उभरी हुई मांसपेशियाँ थीं और जो अपशब्द बोला करते थे। मुझे स्पष्टत रूप से स्मरण है कि उनकी उँगलियों के नाखून के नीचे जमी ग्रीस की एक ठोस काली परत सदैव दिखाई देती थी। मेरे चाचा के पास धर्म या कलीसिया के लिए कोई समय नहीं था। उनके अनुसार धर्म डरपोकों के लिए था।

जब मैंने यह बताया कि मैं मसीही सेवकाई के लिए तैयारी करने हेतु सेमिनरी जाने वाला था, तो उनको लगभग मिरगी का दौरा सा पड़ गया था। उन्होंने बारम्बार मुझे चिढ़ाया। वह कहा करते थे कि शीघ्र ही मैं उल्टे गले का पट्टा और श्वेत वस्त्र पहन रहा होऊँगा।

पास्टर के रूप में मेरी नियुक्ति के कुछ ही समय पश्चात् मेरे चाचा को एक असाध्य रोग हो गया। उनकी मृत्यु से एक सप्ताह पहले, मैं उनसे मिलने उनके कक्ष में गया। वह मर रहे थे और इस बात को जानते थे। अब कोई चुटकुले नहीं थे। वह गम्भीर रूप से चिन्तित थे कि वे कहाँ जाएँगे। उन्होंने मुझसे कहा, "मैं जाने के लिए तैयार नहीं हूँ।"

हम ने ख्रीष्ट के विषय में बात की। मेरे चाचा ने गम्भीरतापूर्वक विश्वास करने का दावा किया। उन्होंने अपने और परमेश्वर के सम्बन्ध को ठीक किया। वह विश्वास में मरे।

जिस प्रकार से परमेश्वर ने शपथ खाई कि अपश्चात्तापी लोग उसके विश्राम में नहीं प्रवेश करेंगे, उसने यह भी शपथ खाई कि पश्चात्ताप करके ख्रीष्ट पर विश्वास करने वाले लोग *अवश्य ही* विश्राम में प्रवेश करेंगे। इब्रानियों के लेखक ने पुनः समझाया: "इसलिए जब कि उसके विश्राम में प्रवेश करने की प्रतिज्ञा अब तक बनी हुई है तो हम सतर्क रहें, कहीं ऐसा न मालूम हो कि तुम में से कोई उससे वंचित है। . . . अतः हम जिन्होंने विश्वास किया है, विश्राम में प्रवेश करते हैं" (इब्रानियों 4:1-3क)।

इब्रानियों 4 इन शब्दों के साथ समाप्त होता है:

> जबकि हमारा ऐसा बड़ा महायाजक है जो स्वर्गों में से होकर गया, अर्थात् परमेश्वर का पुत्र यीशु, तो आओ, हम अपने अंगीकार को दृढ़ता से थामे रहें। क्योंकि हमारा ऐसा महायाजक नहीं जो हमारी निर्बलताओं में हमसे सहानुभूति न रख सके। वह तो सब बातों में हमारे ही समान परखा गया, फिर भी निष्पाप निकला। अतः हम साहस के साथ अनुग्रह के सिंहासन के निकट आएँ कि हम पर दया हो और अनुग्रह पाएँ कि आवश्यकता के समय हमारी सहायता हो। (इब्रानियों 4:14-16)

यदि हम विश्वास में मरते हैं, तो हम उन लोगों की एक बड़ी सभा में जुड़ते हैं जो हमसे पहले गए हैं। इब्रानियों हमें विश्वास के शूरवीरों की सूची देता है:

> विश्वास ही से हाबिल ने परमेश्वर के लिए उत्तम बलिदान चढ़ाया . . .। विश्वास ही से हनोक ऊपर उठा लिया गया . . .। विश्वास ही से नूह ने उन बातों के विषय में जो उस समय तक दिखाई नहीं देती थीं, चेतावनी पाकर भय के साथ अपने परिवार के बचाव के लिए जहाज़ बनाया . . .। विश्वास ही से अब्राहम जब बुलाया गया तो आज्ञा मानकर ऐसे स्थान को चला गया जो उसे उत्तराधिकार में मिलने वाला था। वह नहीं जानता था कि मैं कहाँ जा रहा हूँ . . .। विश्वास ही से सारा ने अवस्था ढल जाने पर भी गर्भ धारण की सामर्थ्य पाई . . .। ये सब विश्वास की दशा में मरे। इन्होंने प्रतिज्ञा की गई बातों को प्राप्त नहीं किया, परन्तु उन्हें दूर ही से देखकर उनका अभिवादन किया और मान लिया कि हम पृथ्वी पर परदेशी और पराए हैं। जो ऐसा कहते हैं वे यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे तो अपने निज देश की खोज में हैं। यदि वे उस देश के विषय सोचते जिससे वे निकले थे तो उन्हें लौट जाने का अवसर होता। पर वे एक उत्तम अर्थात् स्वर्गिक देश के अभिलाषी हैं। इसलिए परमेश्वर उनका परमेश्वर कहलाने से नहीं लजाता, क्योंकि उसने उनके लिए एक नगर तैयार किया है। (इब्रानियों 11:4–11, 13–16)

यदि हम विश्वास में मरते हैं, तो हम हाबिल, नूह, अब्राहम और ऐसे अनेक लोगों के साथ जुड़ेंगे

जो विश्वास में जीये और मरे। हम उन लोगों में गिने जाएँगे जिनका परमेश्वर, परमेश्वर कहलाने से लजाता नहीं है। जो नगर उनके लिए तैयार किया गया है, वह हमारा भी नगर होगा।

इस पुस्तक का शेष भाग दो मुख्य बातों पर ध्यान देगा: पहला है: *क्या वास्तव में स्वर्ग है?* और दूसरा है: *स्वर्ग कैसा है?*

भाग दो:

मृत्यु के उपरान्त

अध्याय सात

मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में परिकल्पनाएँ

कुछ वर्ष पूर्व, मैं अपनी बुआ से मिलने गया, जिनका जन्म 1900 में हुआ था। यह अतीत के संस्मरणों *(reminiscence/nostalgia)* को स्मरण करने का समय था। मैंने उनसे हमारे परिवार के आरम्भ एवं पारिवारिक इतिहास के बारे में सभी प्रकार के प्रश्नों को पूछा। वह अपनी झूलने वाली कूर्सी पर पीछे की ओर झुक गईं और धुँधली आँखों से पुराने दिनों की बातें करने लगीं। जैसे-जैसे वह बोलती गईं उन्होंने मेरे पिता और दादा-दादी के जीवन के विषय में मुझे बहुत सी ऐसी बातें बताईं जिन्हें मैं पहले नहीं जानता था।

इतिहास के उस सर्वेक्षण का सबसे रोचक भाग था जब मेरी बुआ ने मेरे परदादा, चार्ल्स स्प्रोल को स्मरण किया (जिनके नाम के आधार पर मेरे अपने नाम, रॉबर्ट चार्ल्स में "सी" जुड़ा है)। उनका जन्म 1824 में आयरलैण्ड के काउन्टी डोनेगल में हुआ था। 1843 में वह अपने पुराने देश से मिट्टी के भूतल एवं फूस के छत वाली झोपड़ी को छोड़कर नंगे पैर इस देश अमरीका में आए थे। अमरीकी गृहयुद्ध के समय में यूनियन' *(Union* अर्थात् संघीय) पक्ष के नौसेना के यू.एस. एस. *ग्राम्पस (U.S.S. Grampus)* जहाज पर स्प्रोल अग्निशमन कर्मचारी के रूप में तृतीय श्रेणी के पद पर कार्य कर रहे थे। उन्होंने विक्सबर्ग के युद्ध में भाग लिया। वह छियासी वर्ष की आयु में 1910 में मरे।

मेरी बुआ के साथ यह बातचीत मेरे परदादा के जन्म से 163 वर्ष उपरान्त 1987 के ग्रीष्म ऋतु में हुई थी। जब चार्ल्स स्प्रोल की मृत्यु हुई, वे पिट्सबर्ग में मेरे दादा के घर में रह रहे थे। मेरी बुआ

उन्हें उनकी मृत्यु के दस वर्ष पहले से जानती थीं।

एक ऐसे व्यक्ति से बात करना जिसके पास एक ऐसे व्यक्ति की स्मृतियाँ हैं जिसका जन्म 1824 में हुआ था, एक विचित्र अनुभव था। उस तिथि से लेकर अब तक बहुत सारा समय, बहुत सा इतिहास बीत चुका है। मैं सोचने लगा कि कैसा होगा यदि मैं छियासी वर्ष तक जीऊँ और अपने परपोतों को ये कहानियाँ सुनाऊँ जिन्हें मैंने स्वयं एक ऐसे व्यक्ति से सुनी जो मेरे परदादा को जानती थीं। मैं 2025 में छियासी वर्ष का होऊँगा, जिसका अर्थ है कि उस सम्भावित वार्तालाप का विस्तार दो शताब्दियों से अधिक का होगा।

जब चार्ल्स स्प्रोल का जन्म हुआ था तब संयुक्त राज्य अमरीका कुछ ही दशक पुराना था। जेम्स मनरो राष्ट्रपति थे। अब्राहम लिंकन अभी भी किशोर ही थे। अमरीका के एक छोर से दूसरे छोर तक रेलगाड़ी नहीं थी, गाड़ियाँ नहीं थीं, हवाई जहाज़ नहीं थे, रेडियो नहीं थे, टीवी नहीं थे, बिजली का बल्ब भी नहीं था। संसार परिवर्तित हो गया है।

चार्ल्स स्प्रोल चले गए हैं। उनके पुत्र रॉबर्ट ने एक ऐसी लड़की से विवाह किया जो ओहायो से पिट्सबर्ग ओहायो नदी पर भाप चलित नाव में यात्रा करते हुए आई थी। रॉबर्ट की मृत्यु 1945 में हुई। मेरे पिता सहित उनके दोनों पुत्र 1956 में मरे।

मेरे पुत्र का जन्म 1965 में हुआ। मेरे जैसे उसका नाम भी रॉबर्ट है। उसके पास दो पुत्र हैं जो परिवार के नाम को आगे बढ़ा रहे हैं। यदि उनके भी पुत्र हुए तो परिवार का नाम कम से कम एक और पीढ़ी तक बना रहेगा। नहीं तो परिवार का नाम मर जाएगा।

बाइबल कहती है कि "प्रत्येक प्राणी घास है" (यशायाह 40:7)। यह बढ़ती है, पर फिर सूख जाती है और मुर्झा जाती है।

किसी व्यक्ति ने एक बार मुझ से पूछा कि मेरे "दीर्घकालीन लक्ष्य" क्या हैं। उसने कहा, "आप अपने जीवन के साथ अगले पाँच वर्षों में क्या करना चाहते हैं? दस वर्षों में?" उस प्रश्न ने मुझे सोचने के लिए विवश कर दिया। किसी किशोर के लिए, पाँच वर्ष बहुत लम्बा समय प्रतीत होता है। परन्तु मेरे लिए तो यह लम्बा समय नहीं लगता है।

मेरे लिए यह प्रश्न अधिक प्रासंगिक है, "अब से एक सौ वर्ष उपरान्त मैं क्या कर रहा होऊँगा?" यह सुनने में मूर्खतापूर्ण प्रश्न लग सकता है। यह इस प्रश्न के जैसे है, "मैं एक सौ वर्ष पहले क्या कर रहा था?" एक सौ वर्ष पहले मैं अस्तित्व में नहीं था। मेरी बहन अस्तित्व में नहीं थी। मेरे पिता अस्तित्व में नहीं थे। चार्ल्स स्प्रोल का तो अस्तित्व था, और उनके पुत्र रॉबर्ट का भी। पर वे चले गए हैं, जैसा कि अब से एक सौ वर्ष उपरान्त मैं भी चला जा चुका होऊँगा।

इस पुस्तक को पढ़ने वाले कुछ ही लोग अब से सौ वर्ष पहले जीवित थे। निश्चय ही कहा जा सकता है कि इस पुस्तक को पढ़ने वाला कोई भी जन अब से एक सौ वर्ष उपरान्त तक जीवित नहीं होगा।

या क्या वे होंगे? क्या हमारे पास कोई ऐसा भविष्य है जो एक सौ वर्ष और उससे भी अधिक समय तक चलेगा?

भविष्य को जानने की खोज

डॉरिस डे का एक गीत बहुत प्रसिद्ध हुआ, "के सरा, सरा *(Que Sera, Sera,* अर्थात् जो कुछ होना होगा, वही होगा)।" उसके शब्द कुछ इस प्रकार से थे:

जब मैं एक छोटी लड़की थी,
मैंने अपनी माता से पूछा मैं क्या बनूँगी?
क्या मैं सुन्दर होऊँगी? क्या मैं धनी होऊँगी?
उनका उत्तर यह था:

माता का उत्तर अस्पष्ट था। उसके पास भविष्य को देखने वाला कोई यन्त्र नहीं था। बार-बार उसका उत्तर यही था: "*के सरा, सरा।* जो कुछ होना होगा, वही होगा।"

हम ठीक इसी कारण से भविष्य की चिन्ता करते हैं क्योंकि हम नहीं जानते हैं कि हमारे साथ क्या होगा। भविष्य के विषय में निश्चित ज्ञान का एकमात्र विश्वसनीय स्रोत भविष्य के प्रभु से आता है। जहाँ परमेश्वर भविष्य की बात करते हैं, हमारे पास आशा रखने के लिए उचित कारण है। जहाँ वह चुप है, हमें जाँच-पड़ताल करने से रुकना चाहिए। पुराने नियम में ऐसे लोगों के लिए अनेक निषेधाज्ञाओं और उनके साथ कठोर दण्ड थे जो अवैध रीती से भविष्य में देखने का प्रयास करते हैं।

परन्तु प्रत्येक मानव प्राण भविष्य के सबसे बड़े प्रश्न के उत्तर की खोज करता है। अय्यूब ने प्रश्न को इस प्रकार से पूछा: "यदि मनुष्य मर जाए तो क्या वह फिर जीवित होगा?" (अय्यूब 14:14)।

जब से मृत्यु ने अदन की वाटिका में प्रवेश किया, मृत्यु के उपरान्त के जीवन का प्रश्न अति महत्वपूर्ण रहा है। वस्तुतः प्रत्येक मानव सभ्यता ने कब्र से परे जीवन को लेकर किसी न किसी प्रकार की आशा को विकसित किया है। प्राचीन मिस्री इस आशा के साथ अपने मरे हुए प्रिय जनों की कब्रों में बहुमूल्य वस्तुओं को रखते थे कि ये वस्तुएँ मृत्यु के उपरान्त के जीवन में उपयोगी होंगी। अमरीकी मूल निवासियों के पास सुखी शिकार की भूमि *(a happy hunting ground)* का विचार था, और स्कैंडिनेवियाई *(Norse)* लोगों की आशा वालहाला *(Valhalla-स्वर्ग)* में थी। यहूदियों के पास अधोलोक *(Sheol)* का धुँधला विचार था और यूनानियों के पास अन्धकारमय पाताललोक *(Hades)* का विचार था।

पूर्वी धर्मों का प्रतिउत्तर पुनर्जन्म का विचार है जिसे शर्ली मक्लेन *(Shirley MacLaine)* और अन्य लोगों ने प्रसिद्ध किया। यह विचार, विभिन्न रूपों में प्लेटो के समय से ही प्रस्तुत किया जाता रहा है।

मृत्यु के उपरान्त के जीवन के लिए यूनानी तर्क

प्राचीन जगत में, प्लेटो (428-348 ई.पू.) पाईथागोरसवादी दार्शनिकों के समूह द्वारा प्रभावित हुआ। पाईथागोरसवादी *(Pythagorean)* संख्या से सम्बन्धित गूढ़ अर्थ के लिए प्रसिद्ध हैं। इस मत के संस्थापक पाईथागोरस ने प्रसिद्ध पाईथागोरस प्रमेय को विकसित किया जिसका उपयोग आधुनिक ज्यामिति में किया जाता है। पाईथागोरसवादी "प्राण के देहान्तरण" या पुनर्जन्म के विचार को मानते थे।

उनकी अवधारणा इस यूनानी आधार पर निर्भर थी कि मानव प्राण अमर और अनन्त है। वास्तव में प्राण देह से पूर्व ही अस्तित्व में है। जब किसी व्यक्ति का जन्म होता है, तो एक अनन्त प्राण को कुछ समय के लिए एक देह में "फँसाया" जाता है। देह प्राण के लिए एक प्रकार का बन्दीगृह है। भौतिक देह, या बन्दीगृह जन्म और क्षय की प्रक्रिया में से होकर जाती है। जब देह अन्ततः मर जाती है, तो प्राण अपने बन्दीगृह से मुक्त हो जाता है। पुनर्जन्म की विभिन्न विचारधाराओं में प्राण इसके पश्चात् एक नई देह को धारण करता है। इसके साथ-साथ प्राण प्रवसन *(migrates)* भी करता है। प्राण या तो उच्चतर जीवित प्राणी के रूप में या निम्नतर जीवित प्राणी के रूप में देहधारण कर सकता है। प्रायः अगला देहान्तरण या देहधारण सबसे निकट देहधारण में अर्जित किए गए नैतिक स्तर द्वारा निर्धारित होता है। पूर्ण छुटकारा तब होता है जब प्राण अन्ततः देहधारण के चक्र से मुक्त होता है और देहरहित आत्मा के रूप में बना रहता है, जो कि भौतिक देह के सीमित करने वाले प्रभावों से स्वतन्त्र होता है। प्लेटो ने इन पूर्वधारणाओं को स्वीकार किया और उसने अपने कुछ विचारों को इन में जोड़ा।

प्लेटो ने मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में अपनी परिकल्पनाओं को अपने प्रसिद्ध संवाद *फेडो (Phaedo)* में व्यक्त किया है। दृश्य एथेन्स के बन्दीगृह का है, जहाँ सुकरात *(Socrates)* तीक्ष्ण और अशान्त करने वाले दार्शनिक प्रश्नों के द्वारा एथेन्स के युवाओं को दूषित करने के तथाकथित "अपराध" के कारण अपनी मृत्यु-दण्ड की प्रतीक्षा कर रहे हैं। हम सुकरात से उसके अन्तिम घण्टों में मिलते हैं जब वह उस द्वारपाल (संतरी) की प्रतीक्षा कर रहे हैं जो उसके लिए हेमलॉक विष लाएगा। सुकरात अपने मित्रों और अनुयायियों से घिरे हुए हैं। (प्लेटो अस्वस्थता के कारण अनुपस्थित है)। सुकरात के आनन्दमय मनोभाव और उसके मित्र जो अभी से शोक में डूबे हुए हैं उनकी भययुक्त आशंका के बीच, मनोदशा का एक बहुत बड़ा अन्तर है।

सुकरात अपने अन्तिम घण्टों को अपने अनुयायियों को यह शिक्षा देते हुए व्यतीत करते हैं कि मृत्यु के उपरान्त कौन-से आनन्द होंगे। वह अपने मित्रों से कहता है: "मेरे शब्द भी केवल एक गूँज मात्र ही हैं; परन्तु इसके लिए कोई कारण नहीं है कि जो बातें मैंने सुनी हैं उनको पुनः क्यों न दोहराऊँ: और वास्तव में, क्योंकि मैं एक अन्य स्थान में जा रहा हूँ, मेरे लिए यह बहुत उचित है कि मैं अपने आने वाले तीर्थ के विषय में विचार करूँ और बात करूँ। अभी और सूर्यास्त के मध्य में इससे उत्तम मैं और क्या कर सकता हूँ?"[2]

सुकरात फिर इस विषय पर लम्बी चर्चा को आरम्भ करने के द्वारा भविष्य के जीवन पर अपने भरोसे की घोषणा करते हैं: "और अब, हे मेरे न्यायियो, मैं तुम्हारे लिए यह प्रमाणित करना चाहता हूँ कि मृत्यु के समय में वास्तविक दार्शनिक के पास आनन्दित होने का कारण है, और यह भी कि मृत्यु के उपरान्त वह आने वाले जगत में उत्तम भलाई को प्राप्त करने की आशा कर सकता है।[3]

इसके पश्चात् वह प्राण की अमरता के लिए लम्बा और जटिल "प्रमाण" देता है। सुकरात विरोधी बातों पर अधारित तर्क प्रस्तुत करता है। वह सभी बातों के सार्वभौमिक विरोधात्मकता की परिकल्पना करता है—कि हम प्रतिदिन प्रकृति में एक प्रणाली को देखते हैं जिसमें बातें उनके विरोधी वस्तु द्वारा उत्पन्न की जाती हैं। निद्रावस्था के पश्चात् जागृत अवस्था आती है, और उसके पश्चात् निद्रावस्था पुनः आती है। कोई भी बात जो बड़ी बनती है वह तभी बड़ी बन सकती है जब वह पहले उससे छोटी थी। जो कुछ भी घटता है वह तभी घट सकता है जब वह पहले बड़ा था।

इसी प्रकार से, केवल वह ही मर सकता है जो पहले जीवित था। जीवन अपनी विरोधी बात—अर्थात् मृत्यु को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार से मृत्यु को अपने विरोधी को उत्पन्न करना चाहिए, जो कि जीवन है।

सुकरात फिर यह प्रमाणित करने का प्रयास करते हैं कि लोगों के जन्म से पहले उनके प्राणों का अस्तित्व था। यह तर्क प्लेटो के प्रसिद्ध स्मरण के सिद्धान्त *(theory of recollection)* पर निर्भर है। स्मरण के सिद्धान्त में, प्लेटो ने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया (इस वार्तालाप तथा अन्य वार्तालापों में, विशेषकर *मेनो (Meno)* में) कि जब हमारा जन्म होता है तो हमारे मनों में कुछ विचार होते हैं जो केवल जन्म से पूर्व प्राण की अवस्था से आए होंगे। उदाहरण के लिए, सौन्दर्य, भलाई, न्याय, और पवित्रता के विषय में हमारे विचार इस जीवन के अनुभव से नहीं आते हैं वरन् जन्म के समय पहले ही से उपस्थित होते हैं। जिस प्रणाली को हम "सीखना" कहते हैं, वास्तव में, स्मरण शक्ति को उकसाने का कार्य है जिससे कि हम उन विचारों को स्मरण करें जिन्हें हम स्पष्ट रीति से तब समझते थे जब हमारे प्राण जन्म के समय से पहले शारीरिक अभिलाषाओं के नकारात्मक प्रभाव से मुक्त थे।

एक बार सुकरात ने जब स्मरण के इस विचार को, और इसके साथ जन्म से पहले प्राण के

2 *प्लेटो के लेख,* इर्विन एडमन द्वारा सम्पादित (न्यू यॉर्क: रैण्डम हाऊस, 1956), 114।

3 पूर्वोक्त 117

अस्तित्व को प्रमाणित कर दिया, तो फिर इस बात को मानना सरल है कि शरीर की मृत्यु के पश्चात् प्राण का अस्तित्व बना रहता है।

सुकरात के एक छात्र, सेब्स *(Cebes),* को अभी भी सन्देह था। वह अपने गुरु से कहता है, "फिर, हे सुकरात, आपको तर्क करना होगा कि हमें भयभीत नहीं होना चाहिए—और फिर भी, देखा जाए तो, वे हमारे भय नहीं हैं, परन्तु हमारे भीतर एक बच्चा है जिसके लिए मृत्यु बहुत भयावह है: हमें उसको भी मनाना होगा कि उसको अन्धेरे में भयभीत नहीं होना चाहिए।[4]

सुकरात आगे तर्क करते हैं कि प्राण एक आत्मिक सत्त्व है। वे समझाते हैं कि आत्मिक सत्त्व होने के कारण प्राण क्षय और विलय की क्षमता रखने वाले पदार्थ से निर्मित नहीं है। इसलिए, वह मर *नहीं सकता।* सुकरात का उत्तर यह है: "विचार करो, हे सेब्स: सब कही गई बातों का निष्कर्ष क्या यह नहीं है?—कि प्राण ईश्वरीय, और अमर, और बुद्धिजीवी, और एकरूपी, और अक्षय, और अपरिवर्तनीय है; और यह भी कि शरीर मानवीय, और मरणाधीन, और अबुद्धिजीवी, और बहुरूपी, और क्षयपूर्ण, और परिवर्तनीय है। मेरे प्रिय सेब्स, क्या इसे नकारा जा सकता है?"[5]

दूषण की समस्या

परन्तु सुकरात के तर्क में गड़बड़ी है। इस बात को समझाने के पश्चात् कि प्राण अपरिवर्तनीय है, वह यह घोषणा करता है कि एक बिन्दु पर प्राण परिवर्तनीय है। प्राण नैतिक दूषण *(corruption)* की क्षमता रखता है। वह प्राण के प्रदूषण की बात करता है जिसे आने वाले अन्य देहधारण के माध्यम से शुद्ध होना पड़ेगा: "मेरा तात्पर्य है कि जिन लोगों ने पेटूपन, उपद्रव, और पियक्कड़पन का पीछा किया है, और जिन्होंने इनसे बचने के विषय में सोचा भी नहीं, वे गदहे और उस प्रकार के पशुओं में परिवर्तित होंगे।"[6]

वर्तमान पाठक के लिए पुनर्जन्म के विषय में सुकरात का विचार हास्यप्रद प्रतीत होता है (शर्ली मक्लेन जैसी प्रसिद्ध नायिका के समर्थन के होते हुए भी)। वह कहता है कि मनुष्य भेड़िये, बाज, मधुमक्खी, या ततैये बनते हैं। (इसका अर्थ होगा कि हमें मकड़ियों के प्रति चिन्ताशील होना चाहिए कि कहीं ऐसा न हो कि हम अपने परदादाओं को कुचल दें।)

वर्तमान समय में पुनर्जन्म के विषय में बढ़ती हुई रुचि कुछ रोचक प्रश्नों को उठाती है। इतने अधिक लोगों को पुनर्जन्म का विचार आकर्षक क्यों लगता है? एक सरल उत्तर यह हो सकता है कि ऐसा प्रतीत होता है कि पुनर्जन्म हमें जीवन के लिए दूसरा अवसर प्रदान करता है।

---

4 पूर्वोक्त 137

5 पूर्वोक्त 140

6 पूर्वोक्त 143

हम सोचते हैं कि यदि हमें अपना जीवन दोबारा जीने का अवसर मिले तो बातें कैसी होंगी। हम सोचते हैं कि हम क्या परिवर्तन करेंगे। हमारे स्वप्न, जीवन के "क्या होता यदि" या "हो सकता था" से भरे होते हैं। हम सबके पास असुलझे दोषबोध का कुछ बोझ होता है। जीवन की यात्रा में दूसरी बार जाना, हमें अवसर देता है कि हम अपने पापों के लिए प्रायश्चित्त करें, विफलताओं और अभावों की पूर्ति करें। बार-बार देहधारण के विचार में यह आशा है कि प्रगति हो रही है, अर्थात् यह आशा कि हम अपनी अभिलाषाओं में या अपने नैतिक प्रदर्शन में और ऊपर बढ़ते जा सकते हैं।

फिर भी पुनर्जन्म में बड़ी कठिनाई है जिसकी चर्चा उसके मानने वाले लोग विरले ही करते हैं। यह है सचेत जागरूकता की निरन्तरता *(continuity of conscious awareness)* की समस्या।

मैं एक सचेत मनुष्य हूँ। इस चेतना में स्मरणशक्ति नामक एक अद्भुत बात पाई जाती है। मुझे बचपन के अनुभव स्मरण हैं। मेरी स्मरणशक्ति के कोष में मेरे व्यक्तिगत इतिहास की जानकारी रखी हुई है। निस्सन्देह कुछ स्मृतियाँ अप्रिय हैं और अन्य मनोहर हैं। मैं स्वयं का व्यक्तिगत इतिहास हूँ। मैं केवल वह नहीं हूँ जो मैं इस क्षण में करता हूँ, सोचता हूँ, या अभास करता हूँ। मैं वही मानव व्यक्तित्व हूँ जिसने 1943 में क्रिसमस के सुबह को उपहार खोले थे। निश्चय ही मेरे शरीर, विचार, और *मुझमें* 1943 से परिवर्तन हुए हैं। ये परिवर्तन जीवन के साथ होते रहते हैं। परन्तु 1943 के बच्चे में और वर्तमान के वयस्क में व्यक्तित्व की निरन्तरता है।

अब कल्पना करें कि यह जीवन मेरा तीसरा, चौथा, या सौवाँ देहधारण है। मैं पिछले देहधारणों को कितना स्मरण करता हूँ? मेरे लिए, उत्तर सरल है: कुछ भी नहीं। जन्म से पूर्व किसी भी जीवन अनुभव के विषय में मुझे कुछ भी स्मरण नहीं है। मैं समझता हूँ कि कुछ लोगों ने सम्मोहन और अन्य उपायों के माध्यम से यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि उनके पास पिछले जीवन की धुँधली स्मृतियाँ हैं। परन्तु ये तर्क वास्तविक स्मृतियों से कम और कल्पना से अधिक सम्बन्धित प्रतीत होते हैं।

क्या आपको स्मरण है कि आप अपने जन्म से पहले इस संसार में जीवन जी रहे थे? यदि नहीं, तो दुविधा स्पष्ट है। यदि जन्मों के मध्य चेतना की निरन्तरता नहीं है, तो फिर पुनर्जन्म का क्या लाभ है? यदि चेतना की निरन्तरता नहीं है, कोई भी स्मृति नहीं है, तो हम व्यक्ति की निरन्तरता की बात कैसे कर सकते हैं? यदि मैं बिना व्यक्तिगत चेतना के इस जीवन के पश्चात् भी जीता रहूँ, तो क्या वह आने वाला जीवन वास्तव में मैं ही हूँ?

यह पूरी परिकल्पना, जो कुछ पाठकों के लिए विचित्र प्रतीत हो सकती है, एक बहुत ही महत्वपूर्ण बात पर आधारित है। तर्क के पीछे दूषित प्राण की समस्या और अनसुलझे न्याय का प्रश्न छिपा हुआ है।

संवेदनशील लोगों के बीच यह चिन्ता है कि यह संसार सर्वदा सिद्ध न्याय नहीं करता है। हम प्रायः देखते हैं कि धर्मी लोग दुःख उठाते हैं और दुष्ट लोग सम्पन्न होते हैं। यह संसार क्रूरता के पक्ष में प्रतीत होता है और चलचित्रों में दिखाए जाने के विपरीत, निर्बल खिलाड़ी विजयी होने के स्थान पर प्रायः पराजित ही होता है।

यह प्रश्न बना रहता है: मैं परोपकार और बलिदान के कार्य क्यों करूँ यदि जीवन न्याय को सुनिश्चित नहीं करता है। वास्तव में, नैतिक व्यवहार का पूरा प्रश्न दलदल के समान अनिश्चित बन जाता है। जिस प्रकार से रूसी उपन्यासकार फ़्योदर दोस्तोयेव्स्की *(Fyodor Dostoevsky)* ने अपने उपन्यास *करामाज़ोव ब्रदर्स (The Brothers Karamazov)* में लिखा, "यदि परमेश्वर नहीं है, तो सब कुछ स्वीकृत है।" यहाँ उसने केन्द्रीय विषय को सही पहचाना—यदि कोई परमेश्वर नहीं है, तो इस बात की निश्चयता नहीं है कि अन्ततः न्याय होगा। यदि कोई निश्चयता नहीं है कि अन्ततः न्याय होगा, तो फिर लोगों के पास क्या कारण है कि लोग नैतिक बाध्यता के अन्तर्गत कार्य करें? इससे अच्छा यह होगा कि सब लोग केवल अपने हित को ध्यान में रखते हुए कार्य करें।

संसार में "करना चाहिए" की आवश्यकता

अपने दैनिक जीवन में, "*करना चाहिए" (ought)*, "*करना पड़ेगा" (should)*, "*अवश्य करना चाहिए" (must)* जैसे शब्दों को बिना उपयोग किए, हम अधिक समय तक बात नहीं कर सकते हैं। हम अपने बच्चों से कहते हैं, "तुम्हें सच बोलना चाहिए।" यदि वे पूछें, "क्यों?" तो हम क्या कहते हैं? हम अपने अधिकार का लाभ उठाते हुए उत्तर दे सकते हैं, "क्योंकि मैं कह रहा हूँ।" हम यह कहकर उनके स्वहित का लाभ उठा सकते हैं, "क्योंकि सत्यनिष्ठा उत्तम नीति है।" परन्तु मिठाई के डब्बे से मिठाई निकालते समय बच्चा यह बात तो सोचता भी नहीं है कि सच में सत्यनिष्ठा उत्तम नीति है।

जब भी कोई कहता है, "तुम्हें करना चाहिए," तो हम इन दो में से एक प्रत्युत्तर देने के विषय में सोच सकते हैं: "ऐसा कौन कहता है?" या "मैं क्यों करूँ?" ये प्रश्न नैतिक अनिवार्यता के आधार या उसकी नींव के विषय में प्रश्न उठाते हैं। क्या ऐसा कोई अकाट्य कारण है कि कोई भी जन किसी भी विषय में यह कह सकता है कि "करना चाहिए"?

हिन्दी भाषा में, इस कथन में कि, "मैं कुछ करना *चाहता हूँ*," और इस कथन में कि, "मुझे कुछ करना *चाहिए,*" में बहुत ही महत्वपूर्ण अन्तर है। यह *इच्छा* और *कर्तव्य* के मध्य का अन्तर है। यदि मैं अपने कर्तव्य को पूरा करने की इच्छा रखूँ, तो कोई द्वन्द्व नहीं है। यदि हैं वह करना चाहूँ

जिसे मुझे करना चाहिए, तो मेरे निर्णय सरल हैं। नैतिक संघर्ष तब होता है जब मेरी इच्छा और मेरे कर्तव्य में द्वन्द्व होता है। जब मैं वह करना चाहता हूँ जिसे मुझे करना नहीं चाहिए या मैं वह नहीं करना चाहता हूँ जिसे मुझे करना चाहिए, तभी मैं व्यथित विवेक की पीड़ा को अनुभव करता हूँ।

कर्तव्य शब्द को एक से अधिक रीतियों से उपयोग किया जाता है। जर्मनी के दार्शनिक इमानुएल काण्ट ने दो प्रकार के "कर्तव्य की उचितता" या कर्तव्यादेश में भेद किया। उसने "कल्पित कर्तव्यादेश" *(hypothetical imperative)* और "नैतिक कर्तव्यादेश" *(moral imperative)* में भेद किया।

कल्पित कर्तव्यादेश उस प्रकार के कर्तव्य से सम्बन्धित है जिसमें कुछ निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए कुछ साधनों का उपयोग किया जाना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, यदि मैं कार्य के लिए निकलूँ और ऐसा प्रतीत होता है कि वर्षा होगी, तो मैं स्वयं से कह सकता हूँ, "मुझे छतरी ले जानी *चाहिए।*" यहा मैं नैतिक कर्तव्य की बात नहीं कर रहा हूँ। (जब तक मेरे ऊपर यह नैतिक बाध्यता न हो कि मुझे अपनी देह का ध्यान रखना चाहिए।) इसके विपरीत, मैं इसकी बात कर रहा हूँ: यदि मैं चाहता हूँ कि मैं न भीगूँ, तो मुझे उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपलब्ध साधनों का उपयोग करना चाहिए। वर्षा से बचने के लिए मेरे पास छतरी होनी चाहिए। यदि मैं भीगना न चाहूँ, तो मुझे अपनी छतरी ले जानी चाहिए।

एक और उदाहरण पर ध्यान दें। कल्पना करें कि एक व्यक्ति चोर बनने का निर्णय लेता है। उसकी इच्छा है कि वह एक सफल चोर बने। वह इस प्रकार से सोचता है: "यदि मैं एक सफल चोर बनना चाहूँ, तो मुझे सावधान *रहना चाहिए* जिससे कि मैं चोरी करते समय पकड़ा न जाऊँ।" यहाँ यह चोर कल्पित कर्तव्यादेश के अर्थ में सोच रहा है। यदि वह नैतिक कर्तव्यादेश के अर्थ में सोच रहा होता, वह स्वयं से यह कह रहा होता कि, "मुझे चोरी करना ही नहीं चाहिए।"

जैसे ही हम कल्पित से नैतिक की ओर आते हैं, हम कर्तव्य के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। कर्तव्य नैतिकता के विषय से सम्बन्धित है। यहाँ *कर्तव्य* शब्द के साथ नैतिक बाध्यता जुड़ी हुई है। इसका अर्थ है कि मैं जो भी करता हूँ उसे इस बात के अधीन होना चाहिए कि मुझे क्या करना चाहिए।

हम सब इच्छा और कर्तव्य के मध्य द्वन्द्व का अनुभव करते हैं। हम सब जानते हैं कि हम कुछ ऐसे कार्य करने की इच्छा रखते हैं जो ठीक नहीं हैं। कम से कम हम इस द्वन्द्व की गम्भीरता को अनुभव करते हैं। परन्तु तब क्या होता यदि नैतिक रीति से उचित कार्य जैसा कुछ न होता। सोचिए कि क्या होता यदि उचित और अनुचित केवल सामाजिक परम्पराएँ होतीं, जो ऐसे नियम हैं जिनकी सहायता से समाज का संचालन होता है। सोचिए कि क्या होता यदि सभी कर्तव्यादेश केवल कल्पित कर्तव्यादेश हैं जिनका नैतिक कर्तव्यादेश से कोई सम्बन्ध नहीं है। तब चोर को केवल यह ध्यान रखना चाहिए कि वह पकड़ा न जाए। तब चोर के लिए बुरा कार्य तभी होता यदि वह सफलतापूर्वक चोरी करने में विफल होता।

यह सब मृत्यु के उपरान्त के जीवन से कैसे सम्बन्धित है? इसका सरल उत्तर है: सब कुछ।

यदि उचित और अनुचित जैसा कुछ नहीं है, अर्थात् यदि *नैतिक* बाध्यता जैसी कोई बात नहीं है, तो न्याय्यता *(justness)* जैसी कोई बात नहीं है। यदि न्याय्यता जैसी कोई बात नहीं है, तो इसका अर्थ है कि न्याय जैसी भी कोई बात नहीं है। न्याय केवल एक भावना बन जाती है। न्याय केवल किसी व्यक्ति या समूह के चुने हुए विचारों को प्रकट करता है। यदि किसी समाज में अधिकाँश लोगों का चुना हुआ विचार है कि व्यभिचार को पुरस्कृत किया जाए, तो न्याय तब होगा जब किसी व्यभिचारी को उसके व्यभिचार के लिए पुरस्कार दिया जाता है। यदि किसी समाज में अधिकाँश लोगों का चुना हुआ विचार है कि व्यभिचार को दण्डित किया जाए, तो न्याय तब होता है जब व्यभिचारी को दण्डित किया जाता है। परन्तु इस प्रणाली में, मूलभूत निर्णायक न्याय जैसा कुछ नहीं है क्योंकि किसी व्यक्ति या किसी समूह की इच्छा कभी भी न्याय के लिए आधारभूत नैतिक नियम को निर्धारित नहीं कर सकती है। यह केवल उसके चुने हुए विचारों को प्रकट कर सकती है।

दूसरी ओर, यदि उचित और अनुचित जैसा कुछ है, तो हम वास्तविक न्याय्यता की बात कर सकते हैं। तब न्याय को न्यायोचित बातों के आधार पर पुरस्कार और दण्ड के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। उस स्थिति में *कर्तव्य* शब्द वास्तविक नैतिक कर्तव्यादेश की सामर्थ्य से भरा हुआ है।

काण्ट और दोस्तोयेव्स्की ने इस प्रश्न के साथ संघर्ष किया: मूलभूत या परम न्याय के बिना, क्या नैतिक कर्तव्य के लिए ठोस आधार हो सकता है? यदि मूलभूत न्याय नहीं होता है, तो न्यायोचित होने के विषय में हम क्यों सोचें? यदि हम बात को थोड़ा आगे ले जाएँ, तो कह सकते हैं कि यदि मेरे नैतिक निर्णय महत्वहीन हैं, तो *मैं* भी महत्वहीन हूँ। यदि मेरे कार्यों का कोई महत्व नहीं है, तो मेरे जीवन का भी कोई महत्व नहीं है।

यही कारण है कि काण्ट के अनुसार नैतिक बाध्यता के बिना जीवन अर्थहीन जीवन है। हम निश्चय ही व्यक्तिगत रूप से चुने हुए विचारों और भावनाओं के आधार पर अपने जीवन को अर्थ *प्रदान* कर सकते हैं। परन्तु हमारे पास केवल एक भावनात्मक इच्छा होती कि हमारे जीवन का कोई अर्थ हो। यह एक भावनात्मक इच्छा है जिसके दोनों पैर हवा में हैं।

काण्ट ने इस बात की सार्वभौमिक वास्तविकता को पहचाना कि सब मनुष्यों में उचित और अनुचित की समझ है। सब लोग किसी प्रकार के नैतिक कर्तव्य की समझ के आधार पर कार्य करते हैं। हम सब इस "मुझे करना चाहिए" कर्तव्यादेश के भार को अनुभव करते हैं। काण्ट ने फिर यह व्यावहारिक प्रश्न पूछा: "इस नैतिक समझ को अर्थपूर्ण होने के लिए व्यावहारिक रीति से क्या आवश्यक है?"

उसका प्रथम निष्कर्ष अति महत्वपूर्ण था। उसने कहा कि कर्तव्य के विषय में नैतिक समझ को अर्थपूर्ण होने के लिए न्याय्यता जैसी कोई बात होनी चाहिए। न्याय्यता या उचित और अनुचित को

अर्थपूर्ण होने के लिए न्याय को होना चाहिए। इस प्रकार से नैतिक बाध्यता के अर्थपूर्ण होने के लिए न्याय एक आवश्यक प्रतिबन्ध है।

परन्तु समस्या की बात यह है: इस संसार में न्याय सर्वदा नहीं होता है। बहुत सारे चोर अपने प्रयासों में सफल होते हैं। तो क्या इसका अर्थ है कि अपराध करने में लाभ है और यह कि धर्मी व्यक्ति के लिए कोई दोष-निवारण नहीं होगा?

यदि मूलभूत न्याय नहीं होता, तो हम केवल इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं। "निकटस्थ न्याय" *(proximate justice)* हो सकता है, अर्थात् उस स्थिति में कभी-कभी थोड़ा न्याय होता है जब चोर पकड़ा जाता है और चोरी का सामान पूर्ण रीति से लौटाया जाता है, परन्तु फिर भी न्याय से अधिक अन्याय ही होगा। न्याय्यता को मूलभूत रीति से अर्थपूर्ण होने के लिए, हमें निकटस्थ न्याय से अधिक कुछ चाहिए; हमें परम न्याय *(ultimate justice)* की आवश्यकता है।

परम न्याय चुकाए जाने के लिए, पहली माँग यह है कि हमें मृत्यु के पश्चात भी अस्तित्व में होना चाहिए। यदि हम मृत्यु के बाद अस्तित्व में नहीं होंगे, और यदि इस संसार में न्याय सिद्ध रीति से नहीं चुकाया जाता है, तो परम न्याय का चुकाया जाना सम्भव ही नहीं है और हमारी नैतिक बाध्यता की समझ अर्थहीन और वायु पकड़ने के समान है।

यदि परम न्याय चुकाया जाएगा, तो हमें उसका अनुभव करने के लिए उपस्थित होना होगा। जब तक हम मृत्यु के पश्चात् भी अस्तित्व में न रहें, हमें न्याय प्राप्त नहीं हो सकता है। यहाँ काण्ट अय्यूब और सभोपदेशक के विचारों के साथ सुकरात और प्लेटो के विचारों को व्यक्त कर रहा है।

सिद्ध न्यायाधीश की आवश्यकता

परन्तु मान लीजिए कि हम मृत्यु के पश्चात् भी अस्तित्व में बने *रहते हैं।* मान लीजिए कि हम ततैये या गदहे के रूप में एक और देह को धारण करें। तब भी हम अधिक अन्याय द्वारा पीड़ित किए जा सकते हैं। बिलाम के गदहे के समान, हमारा स्वामी एक ऐसा जन हो सकता है जो अकारण हमें मारता हो। या एक ततैये के रूप में उड़ते हुए हम किसी अधर्मी व्यक्ति के द्वारा छिड़के गए मॉर्टीन (कीट-नाशक दवा) के प्रभाव में आ सकते हैं।

अभियुक्त की उपस्थिति के बिना कोई सुनवाई नहीं हो सकती है। परन्तु तब भी सुनवाई नहीं हो सकती है यदि केवल आरोपी व्यक्ति ही उपस्थित है। न्यायाधीश का होना अनिवार्य है। न्यायाधीश नहीं, तो न्याय की घोषणा नहीं हो सकती है। और यदि न्याय की घोषणा नहीं होती है, तो कोई न्याय भी नहीं है।

इसलिए निर्णायक न्याय के लिए एक और आवश्यक प्रतिबन्ध है परम न्यायाधीश की उपस्थिति। कोई साधारण न्यायाधीश नहीं चलेगा। निर्णायक न्याय के किए जाने के लिए, न्यायाधीश में उचित गुण होने चाहिए।

सबसे पहले, स्वयं न्यायाधीश को सिद्ध रीति से न्यायी होना चाहिए। यदि न्यायाधीश के चरित्र

में कोई नैतिक कलंक है, तो सम्भावना यह है कि उसके न्याय की घोषणाएँ कलंकित होंगी और सिद्ध न्याय की हमारी खोज विफल होगी।

कल्पना करें कि न्यायाधीश पूर्ण रीति से सिद्ध तो है परन्तु उसमें और दोष हैं? कल्पना करें कि उसके उद्देश्य अच्छे हैं और वह नैतिक रीति से निर्दोष है, परन्तु उसके पास वह आवश्यक जानकारी नहीं है जो सिद्ध न्याय की घोषणा के लिए आवश्यक है। हम एक ऐसे न्यायाधीश की कल्पना कर सकते हैं जो स्वयं निर्दोष है, घूस नहीं लेता है और पक्षपात नहीं करता है, परन्तु वह परिस्थिति की जटिलताओं को समझने में चूक जाता है। वह अपनी क्षमता के अनुसार न्याय की घोषणा कर सकता है, परन्तु फिर भी यह सिद्ध रीति से न्यायोचित नहीं हो सकता है। सिद्ध न्याय के लिए प्रत्येक सम्भव परिस्थिति का सिद्ध ज्ञान आवश्यक है। सम्भव है कि बिना सिद्ध ज्ञान के भी सिद्ध न्याय हो जाए, परन्तु यह तो एक सौभाग्यपूर्ण संयोग होगा। सिद्ध न्याय को सुनिश्चित करने के लिए, सिद्ध न्यायाधीश के पास सिद्ध ज्ञान होना चाहिए। एक शब्द में, सिद्ध न्यायाधीश को सर्वज्ञानी भी होना चाहिए, कहीं ऐसा न हो कि वह किसी महत्वपूर्ण बात को ध्यान न दे और उसकी न्याय की घोषणा विकृत हो जाए।

परन्तु कल्पना करें कि हमारा सिद्ध न्यायाधीश सिद्ध खराई के साथ और सिद्ध ज्ञान से कार्य करता है और सिद्ध न्याय की घोषणा करता है। क्या यह सिद्ध न्याय को निश्चित करने के लिए पर्याप्त है? नहीं, अभी भी नहीं। यदि सिद्ध निर्णय की घोषणा की जाती है, तो उसको कार्यान्वित भी किया जाना चाहिए। सिद्ध नियम, सिद्ध व्यवहार को सुनिश्चित नहीं करते हैं। सिद्ध न्याय की घोषणाएँ सिद्ध परिणामों को सुनिश्चित नहीं करती हैं। अपराधी जेल से भाग सकता है और न्याय को धोखा दे सकता है।

सिद्ध न्याय के किए जाने के लिए, न्यायाधीश के पास सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह न्याय को सिद्ध रीति से लागू भी करे। उसके पास इतनी सामर्थ्य होनी चाहिए कि वह सुनिश्चित कर पाए कि न्याय के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को हटाए। एक भी विद्रोही अणु नहीं हो सकता है जो उसकी सामर्थ्य और उसके अधिकार के क्षेत्र के बाहर हो, कहीं ऐसा न हो कि वह अणु बालू का वह कण बने जो न्याय की सम्पूर्ण प्रणाली को रोक दे। इसलिए सिद्ध न्यायाधीश के पास सिद्ध सामर्थ्य होनी चाहिए। उसे सर्वशक्तिमान या सर्वसामर्थी होना चाहिए।

बाइबल के इस कथन में शुभ समाचार है कि "प्रभु हमारा सर्वशक्तिमान परमेश्वर राज्य करता है" (प्रकाशितवाक्य 19:6)। यदि प्रभु सर्वशक्तिमान परमेश्वर राज्य नहीं करता है, तो हमारे पास न्याय की कोई आशा नहीं है। एक असमर्थ प्रभु परमेश्वर न्याय नहीं कर सकता है। केवल एक नैतिक रीति से सिद्ध, सर्वज्ञानी, अपरिवर्तनीय, अनन्त और सर्वसामर्थी परमेश्वर ही निश्चित कर सकता है कि कर्तव्य की हमारी नैतिक समझ अर्थपूर्ण है। यदि परमेश्वर नहीं है, तो न्याय भी नहीं है। यदि न्याय नहीं है, तो मूल रीति से उचित और अनुचित जैसा कुछ नहीं है।

यह पुनः हमें दोस्तोयेव्स्की के निष्कर्ष की ओर वापस ले जाता है, यदि परमेश्वर नहीं है, तो सब कुछ स्वीकृत है। इस प्रकार के निष्कर्ष से मनुष्य और समाज के पास नैतिकता के लिए कोई वास्तविक आधार नहीं रह जाता है। नैतिक आधार के बिना, समाज को बनाए रखना असम्भव हो जाता है। यह कुछ समय तक बचा रह सकता है, अर्थात् जब तक ईश्वर-सम्बन्धित नियमों के अवशेष उसे बाँधे रखे। परन्तु अन्ततः यह अपनी असहनीय परम्पराओं के भार के कारण विफल हो जाएगा।

इसलिए काण्ट ने व्यावहारिक कारणों से परमेश्वर के अस्तित्व और मृत्यु के उपरान्त के जीवन के लिए तर्क दिया। उसका कहना था कि यदि न्याय का कोई आधार होना चाहिए, तो हमें इन दोनों बातों को स्वीकार करना होगा।

काण्ट ने समझ लिया था कि इस प्रकार के व्यावहारिक विचार परमेश्वर के अस्तित्व को "प्रमाणित" नहीं करते हैं। वह केवल यह कह रहा था कि यदि जीवन को अर्थपूर्ण होना है, तो एक ऐसा परमेश्वर अवश्य होना चाहिए जो न्याय को सुनिश्चित करे। ये विचार केवल इस बात को प्रमाणित करते हैं कि यदि उचित और अनुचित के विषय में मेरी समझ अर्थपूर्ण है, तो परमेश्वर का अस्तित्व अवश्य है। काण्ट ने कहा, "हमें ऐसे जीना चाहिए मानो परमेश्वर है।"

काण्ट के तर्क की अच्छाई यह नहीं है कि यह परमेश्वर के अस्तित्व या मृत्यु के उपरान्त के जीवन को प्रमाणित करता है। इसकी अच्छाई यह है कि यह उन सब लोगों के दर्शनशास्त्रों को निराधार बना देता है जो पाँचों उँगलियाँ घी में रखना चाहते हैं। यह उन सब विचारों को नाश कर देता है जो पूर्ण ईश्वरवाद और मौलिक विनाशवाद के मध्य सुरक्षा का स्थान ढूँढ़ना चाहते हैं।

यह संयोग की बात नहीं है कि काण्ट के पश्चात् कई दार्शनिक आशाहीन शून्यवादी दर्शन की ओर चले गए हैं। उनका तर्क है कि हम केवल इस कारण से परमेश्वर पर या मृत्यु के बाद के जीवन पर विश्वास नहीं कर सकते हैं कि इनके बिना विकल्प बहुत कुरूप हैं। वे कहते हैं, "आइए हम सच्चाई का सामना करें: न कोई परमेश्वर है न ही कोई न्याय। उचित और अनुचित जैसा कुछ है ही नहीं। हम एक ऐसे संसार में रहते हैं जो नैतिक निर्णयों के प्रति न तो प्रतिकूल है और न ही अनुकूल।" नहीं, बात इससे भी बुरी है। हम एक ऐसे संसार में रहते हैं जो मनुष्य के कार्यों से *अप्रभावित (indifferent)* है। यह निर्णायक *(ultimately)* रूप से मनुष्य की कोई चिन्ता नहीं करता है क्योंकि मनुष्य का कोई मूल्य नहीं है।

हमारे शरीर की प्रत्येक हड्डी मानव जीवन के प्रति ऐसे नकारात्मक दृष्टिकोण का विरोध करती है। हमारी प्रत्येक श्वास इस आशा में ली जाती है कि हमारे जीवन का कोई महत्व है। हमारे मस्तिष्कों के लिए यह विचार असहनीय है कि सब कुछ व्यर्थ है। हम सुकरात और काण्ट जैसे दार्शनिकों की व्यावहारिक परिकल्पनाओं में सान्त्वना तो खोजते हैं, परन्तु हम उससे अधिक की

लालसा करते हैं। हमें ऐसा आश्वासन चाहिए जो इस व्यावहारिक इच्छा से बढ़कर हो कि न्याय होना चाहिए।

हमें आवश्यकता है कि "बाहर से" कोई शब्द आए। हमें कुछ ठोस प्रमाण चाहिए जिससे कि हमारी आशा में कोई भ्रान्ति न हो जो अर्थ के लिए हमारी भीतरी चाहत पर आधारित हो। साहस प्रदान करने के लिए हमें "मानो *(as if) (सम्भावनाओं)*" से कुछ बढ़कर चाहिए।

इसीलिए नए नियम का "समाचार" इतना महत्वपूर्ण है। इसमें हमारे पास लेख है जो परिकल्पनाओं से हटकर ऐतिहासिक वास्तविकता की बात करता है। आइए हम ख्रीष्ट के सन्देश और उसके विवरण पर ध्यान दें। आइए हम नासरत के यीशु के सन्देश को और कब्र पर उसके विजय की साक्षी को सुनें।

अध्याय आठ

यीशु और मरणोत्तर जीवन

दार्शनिकों की परिकल्पनाओं से ऊपर उठने के लिए तथा तन्त्र-मन्त्र से बचने के लिए, हमें यीशु पर अपना ध्यान लगाना होगा। मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में किसी की भी शिक्षा नासरत के यीशु की शिक्षा के तुल्य या उससे उत्तम नहीं है। कब्र के परे जीवन की अवधारणा उसके सन्देश के केन्द्र में थी।

मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में यीशु के प्रसिद्ध वचन यूहन्ना 14 में पाए जाते हैं। यहाँ यीशु अन्तिम भोज के लिए ऊपरी कक्ष में था। यहाँ पर वर्णित चर्चा यीशु के क्रूसीकरण की पूर्वसन्ध्या को और गतसमनी की व्याकुलता से और उसके पकड़े जाने के कुछ ही समय पहले हुई।

अपने मित्रों को सान्त्वना देने के लिए, यीशु ने इस प्रकार घोषणा की: "तुम्हारा हृदय व्याकुल न हो। परमेश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास रखो। मेरे पिता के घर में रहने के बहुत-से-स्थान हैं। यदि न होते, तो मैं तुमसे कह देता, क्योंकि मैं तुम्हारे लिए स्थान तैयार करने जाता हूँ। और यदि मैं जाकर तुम्हारे लिए स्थान तैयार करूँ तो फिर आकर तुम्हें अपने यहाँ ले जाऊँगा कि जहाँ मैं हूँ, वहाँ तुम भी रहो" (यूहन्ना 14:1-3)।

शिष्यों के हृदय व्याकुल क्यों थे? हम जानते हैं कि उस सन्ध्या को यीशु स्वयं "आत्मा में व्याकुल" था (यूहन्ना 13:21)। वह उस घोषणा के कारण व्याकुल था जिसे वह करने वाला था कि

यहूदा के द्वारा कुछ ही समय में उसे पकड़वाया जाएगा।

उस दृश्य की कल्पना करें। ऊपरी कक्ष में शोक के पूर्वाभास का बादल छाया हुआ है। तीन वर्ष की सार्वजनिक सेवकाई, और अपने शिष्यों के साथ निकट संगति के तीन वर्ष उन्हें इस घड़ी तक ले आए थे। यह गम्भीर संकट का समय था। व्याकुल होने के बहुत से कारण थे। वे सब समझ रहे थे कि बातें समाप्ती की ओर जा रही हैं। यीशु जानता था कि उसकी घड़ी आ गई थी। उसने अपने मित्रों को अपनी आने वाली मृत्यु के विषय में बताया। उसने तीन चिन्ताजनक बातों की घोषणा करके उनकी व्याकुलता को बढ़ाया। उसने बताया कि यहूदा उसे पकड़वाएगा, पतरस उसका इनकार करेगा, और सबसे बुरी बात तो यह थी कि वह शारीरिक रूप से उनको छोड़ने वाला था। उसने कहा: "बच्चो, मैं और थोड़ी देर तुम्हारे साथ हूँ। तुम मुझे ढूँढ़ोगे और जैसा मैंने यहूदियों से कहा तुम से भी कहता हूँ कि जहाँ मैं जाने वाला हूँ, तुम नहीं आ सकते" (यूहन्ना 13:33)।

यहाँ पतरस ने कहा, "प्रभु तू कहाँ जाता है?" यीशु ने उत्तर दिया, "जहाँ मैं जाता हूँ, तू अभी वहाँ मेरे पीछे नहीं आ सकता, परन्तु इसके बाद तू आएगा" (13:36)।

यीशु के इन शब्दों के पीछे ऐतिहासिक सन्दर्भ है। शमौन पतरस के साथ यीशु का सम्बन्ध तीन शब्दों से आरम्भ हुआ था, "मेरे पीछे चलो" (मत्ती 4:19)। पतरस अपना जाल छोड़कर यीशु के पीछे चलने लगा। जहाँ भी यीशु गया, पतरस भी वहाँ गया। वह काना के विवाह के समय यीशु के साथ था। रूपान्तरण के पर्वत पर वह यीशु के साथ था। यहाँ तक कि पानी पर चलने में भी वह यीशु के पीछे चला। अब पीछे चलने का समय अचानक से समाप्त हो रहा था। यीशु ने कहा, "अब तुम मेरे पीछे नहीं आ सकते।"

मृत्यु के पास आते समय किसी भी व्यक्ति के लिए एक बहुत कठिन संघर्ष यह जानना है कि उसको बिना किसी मानव संगति के अकेले ही आगे की यात्रा करनी होगी। हम अपने प्रियजन के पलंग के पास बैठ सकते हैं। हम उनका हाथ पकड़ सकते हैं और वे हमारा हाथ पकड़ सकते हैं। परन्तु वह क्षण आता है जब अलगाव हो जाता है। यही वह अलगाव है, जो हमारी आत्माओं को व्याकुल करता है, भले ही वह कितने भी कम समय के लिए हो। प्रायः मृत्यु के ठीक उसी क्षण, जब अन्तिम साँस ली जाती है और हृदय की धड़कन रुक जाती है, यह घोषणा की जाती है, "ये अब नहीं रहे!" इसी कारण से हम मृत्यु को एक विदाई और अलगाव के रूप में वर्णित करते हैं।

जब सारपत की विधवा एलिय्याह का ध्यान रख रही थी, विधवा का पुत्र बहुत अस्वस्थ हो गया और मर गया। पुराना नियम वर्णन करता है कि एलिय्याह ने उसके पुत्र को मृतकों में से जिला दिया। परन्तु उस आश्चर्यकर्म से पहले, उस स्त्री ने अपनी व्याकुलता में एलिय्याह को झिड़का। उसने उससे

कहा: "हे परमेश्वर के जन, मुझे तुझ से क्या काम? तू मेरे यहाँ इसलिए आया है कि मेरे अधर्म का स्मरण दिलाए और मेरे पुत्र की मृत्यु का कारण हो!" (1 राजा 17:18)।

एलिय्याह ने आज्ञा देकर उत्तर दियाः "अपना पुत्र मुझे दे।" तब पवित्रशास्त्र बताता है कि एलिय्याह ने उसके पुत्र को उससे लिया और उसको उस ऊपरी कक्ष पर ले गया जहाँ वह रह रहा था (17:19)।

इससे पहले कि एलिय्याह वह आश्चर्यकर्म करता, उसे मृत लड़के को उसकी माता के हाथों से लेना पड़ा। स्थल से स्पष्ट है कि स्त्री अपने दुःख में अपने बच्चे के शव को पकड़े हुई थी। एलिय्याह को बलपूर्वक उन्हें अलग करना पड़ा।

यह दृश्य असामान्य नहीं है। जितना अधिक सम्भव हो सके हम उतने समय तक अपने प्रिय जनों को पकड़े रहना चाहते हैं। अलगाव का क्षण लगभग असहनीय होता है।

घटना के अन्त में यीशु का कथन भी रहस्यपूर्ण है। उसका इस बात से क्या अर्थ था कि पतरस बाद में उसके पीछे चलेगा? सम्भवतः पतरस ने इन शब्दों से यह समझा होगा कि, "तुम अभी मृत्यु में मेरे पीछे नहीं चल सकते हो, परन्तु आगे चलकर तुम भी मरोगे।"

तो अब प्रश्न यह है: पतरस को कहाँ तक पीछे चलना था? क्या उसको केवल कब्र तक यीशु के पीछे चलना था? नहीं। यीशु ने इन प्रश्नों का उत्तर यूहन्ना 14 में दिया। जब उसने कहा, "तुम्हारा हृदय व्याकुल न हो," तो उसने अपनी आज्ञा के कारण दिया।

पहले उसने शिष्यों को विश्वास का कार्य करने के लिए बुलाया। उसने कहा, "परमेश्वर पर विश्वास रखो और मुझ पर भी विश्वास रखो" (यूहन्ना 14:1)। वह सरल शब्दों में कह रहा था, "मुझ पर भरोसा रखो।" यीशु अन्धे विश्वास की माँग नहीं करता है। जब उसने अपने शिष्यों से कहा कि उस पर भरोसा रखें, तो उसके आग्रह के समर्थन में इतिहास के बहुत से कारण थे। यह ऐसा था मानो कि यीशु कह रहा था, "देखो, मैंने तुम्हें कभी निराश नहीं किया है। मेरे पिता ने कभी भी कोई प्रतिज्ञा नहीं तोड़ी है। मैंने भी ऐसा कभी नहीं किया है। मैंने स्वयं को विश्वसनीय प्रमाणित किया है। अब, जब मैं चला जाऊँगा, तो मेरी प्रतिज्ञा के बल पर मुझ पर भरोसा करने का समय आ गया है। तुम परमेश्वर पर विश्वास करते हो, अब मुझ पर विश्वास करो। अपने व्याकुल हृदयों को शान्त करने की कुँजी यह है कि भविष्य के लिए मुझ पर भरोसा रखो।"

यह मसीहियत का हृदय है। यही कारण है कि हम मसीही *विश्वास* की बात करते हैं, न कि मसीही *धर्म* की। धर्म मनुष्यों की बाहरी क्रियाओं से सम्बन्धित होता है। मसीहियत, अर्थात् मसीही विश्वास, अपने जीवन के लिए परमेश्वर पर भरोसा करने से सम्बन्धित है। यीशु ने अपने चेलों को जो करने को कहा वह एक बहुत बड़ा कार्य था। परमेश्वर *पर* विश्वास करना एक बात है; परन्तु

परमेश्वर को *विश्वसनीय मानना* पूर्णतः भिन्न बात है। व्यावहारिक रूप से यह एक बड़ा कार्य है, भले ही सैद्धान्तिक रूप से *(theoretically)* यह कठिन नहीं होना चाहिए। परमेश्वर पर विश्वास करने और परमेश्वर को विश्वसनीय मानने का भेद वास्तव में बिना अन्तर का भेद होना चाहिए, जो कि केवल शब्दों का खेल है। क्योंकि सच में, यदि हम वास्तव में परमेश्वर पर विश्वास करें, तो हम उन सब बातों पर विश्वास करेंगे जो वह हम से कहता है।

परन्तु वास्तविकता में, प्रायः परमेश्वर पर हमारे सैद्धान्तिक विश्वास और वास्तव में परमेश्वर की बातों पर भरोसा के बीच में एक अन्तर पाया जाता है। हमारा विश्वास शुद्ध नहीं है। जिस प्रकार सोने में धातुमल मिला हुआ होता है, इसी प्रकार हमारे विश्वास में प्रायः सन्देह मिला होता है। हम चिल्लाकर कहते हैं, "मैं विश्वास करता हूँ, मेरे अविश्वास का उपचार कर!" (मरकुस 9:24)।

मृत्यु के क्षण में, भय और सन्देह हृदय पर आक्रमण कर सकते हैं और हमारे विश्वास पर दबाव डाल सकते हैं। यह वही क्षण है जब हमें यीशु के शब्दों को सुनना चाहिए: "मुझ पर भरोसा रखो।"

पिता के घर में स्थान तैयार करना

यीशु ने आगे उस "कहाँ" के सार को समझाया जहाँ चेले आखिरकार उसके पीछे चलेंगे। "मेरे पिता के घर में रहने के बहुत-से-स्थान हैं। . . . मैं तुम्हारे लिए स्थान तैयार करने जाता हूँ" (यूहन्ना 14:2)।

बारह वर्ष की आयु में यीशु ने मन्दिर के ईश्वरविज्ञानियों को स्तब्ध कर दिया था। जब उसके चिन्तित माता-पिता ने उसे वहाँ पाया, तो उसकी माता ने उसे डाँटा: "बेटा, तू ने हम से ऐसा व्यवहार क्यों किया? देख, तेरे पिता और मैं व्याकुल होकर तुझे ढूँढ़ रहे हैं" (लूका 2:48)।

बालक यीशु ने अपनी व्याकुल माता को थोड़ा फटकारते हुए उत्तर दिया: "तुम मुझे क्यों ढूँढ़ रहे थे? क्या तुम नहीं जानते थे कि मुझे अपने पिता के काम में लगे रहना अवश्य है?" (2:49)।

पिता के काम मन्दिर में होते थे। आगे चलकर यीशु ने यरूशलेम के मन्दिर को अपने पिता का घर कहा, "मेरे पिता के घर को व्यापार का घर मत बनाओ" (यूहन्ना 2:16)।

यूहन्ना 14 में यीशु ने फिर से अपने पिता के घर के विषय में बात की। अब वह यरूशलेम के मन्दिर के विषय में बात नहीं कर रहा था। पुरानी वाचा में मन्दिर पृथ्वी पर परमेश्वर का घर था। वह घर नाशवान था और वास्तव में 70 ईसवी में नष्ट हो भी गया था। यीशु तो यहाँ स्वर्ग की बात कर रहा था, जो कि पिता का वास्तविक निवासस्थान है।

यीशु ने अपने चेलों से प्रतिज्ञा की कि वे भी एक दिन उसके पीछे चलते हुए स्वर्ग में पिता के घर में आएँगे। उसने घोषणा की, "मैं तुम्हारे लिए स्थान तैयार करने जाता हूँ।" यीशु ने समझाया कि उनके मध्य से उसका चले जाना, जिससे उनके हृदय व्याकुल हो रहे थे, वास्तव में आनन्द की बात होनी चाहिए। यीशु स्वर्ग में उनके लिए स्थान तैयार करने के लिए उनको छोड़कर गया।

यीशु ने न केवल हमारे लिए स्वर्ग जाने को सम्भव बनाया, वह वास्तव में हमारा आरक्षण सुनिश्चित करने और हमारे लिए हमारा स्थान तैयार करने वहाँ गया है।

मैं प्रति वर्ष अपने घर से महीनों के लिए बाहर रहता हूँ। इतनी अधिक यात्रा करने का मुझ पर दीर्घकालिक प्रभाव पड़ा है। इन वर्षों में मैंने यात्रा करने के सम्बन्ध में अपनी मानसिकता में कई बातों को उभरते हुए पाया है। एक बात तो यह है कि मैं आरक्षण के विषय में अधिक चिड़-चिड़ा हो गया हूँ। एक थके हुए यात्री के लिए यह बहुत निराशाजनक बात होती है कि वह अपने गन्तव्य पर पहुँचे और पाएँ कि होटल ने उसके लिए आरक्षित कमरे के आरक्षण को अभिलिखित नहीं किया तथा किसी और को कमरा दे दिया हो। ऐसी गड़बड़ियाँ होती हैं और जब ये होती हैं तो यह हमें क्रोध दिलाती हैं।

स्वर्ग की हमारी यात्रा में, हमारे पास सर्वोत्तम सम्भावित आरक्षण है, जिसे सर्वश्रेष्ठ अग्रगामी पुरुष *(advance men)* ने तैयार किया है। स्वयं यीशु हमारे पिता के घर में हमारे लिए स्थान तैयार करने के लिए हमसे पहले गया है। उसके आरक्षण में कोई गड़बड़ी नहीं हो सकती है।

यदि हम ख्रीष्ट के हैं, तो हमारा आरक्षण पक्का है। पिता के घर में बहुत स्थान है। हमारे लिए एक ऐसा स्थान है जिसे और कोई छीन नहीं सकता।

अनन्त जीवन के विषय में "वयस्क" दृष्टिकोण

मैं सोचता हूँ कि स्वर्ग के विषय में सबसे अधिक सान्त्वना देने वाले यीशु के शब्द यूहन्ना 14:2 में पाए जाते हैं। यीशु ने कहा, "यदि न होते, तो मैं तुमसे कह देता।"

इस कथन में पिता के जैसा भाव सुनाई देता है। यीशु ऐसे बोल रहा था जैसे पिता अपने बच्चों से बात करता है। हम ध्यान देते हैं कि कुछ समय पहले ही यीशु ने अपने चेलों को "बच्चों" के रूप में सम्बोधित किया था, जब उसने कहा, "बच्चों, मैं और थोड़ी देर तुम्हारे साथ हूँ" (यूहन्ना 13:33)। बच्चों के जीवन में ऐसा समय आता है जब माता-पिता को उनको वास्तविकता के विषय में बताना पड़ता है। शिशुओं को परियों और मिथ्याओं के संसार से बाहर निकालना आवश्यक है। सच्चाई का वह दिन आ पहुँचता है जब बच्चा इतना बड़ा हो जाता है कि सान्ता क्लॉज़ *(Santa Claus)* और ईस्टर बनी *(Easter Bunny)* पर विश्वास नहीं रखता है। एक ऐसा परिवर्तन होता

है जिसमें जीवन का अमिथकीकरण *(demythologizing)* सम्मिलित होता है। बचपन के खेल और सम्मोहन के स्थान पर वयस्कता की वास्तविकताओं को आना चाहिए। एक ऐसा समय आता है जब बचपन की बातों को पीछे छोड़ देना चाहिए। प्रेरित पौलुस ने कहा: "जब मैं बालक था तो बालक के समान बोलता, बालक के समान सोचता और बालक के समान समझता था, परन्तु जब सयाना हुआ तब बालकपन की बातें छोड़ दीं" (1 कुरिन्थियों 13:11)।

यदि कोई व्यक्ति बालकपन की बातों को छोड़ने में विफल होता है, तो वह वयस्कता का बहुत कठिनाई से सामना करेगा। बालकपन की मिथ्याओं को अधिक समय तक पकड़े रहने का अर्थ है मानसिक रूप से अपंग होना।

यीशु समझता था कि यदि उसके चेलों को वयस्कों के रूप में अपने कार्य को करना है, यदि उन्हें, उन पर निश्चय ही आने वाले क्लेशों का सामना करने में सक्षम होना है, तो उन्हें मिथ्या और वास्तविकता के बीच में भेद करने में सक्षम होना होगा।

एक शिक्षक के रूप में, यीशु को भी एक शिक्षक होने के नाते अपने छात्रों के पुराने त्रुटिपूर्ण विचारों को सुधारना था। शिक्षा में केवल नई जानकारी को अर्जित ही नहीं किया जाता है। सच्ची शिक्षा में प्रायः उन प्रिय विचारों और सिद्धान्तों को हटाने की पीड़ादायक प्रक्रिया सम्मिलित होती है, जो गहन छानबीन में त्रुटिपूर्ण प्रमाणित होंगे। यीशु की शिक्षा में त्रुटिपूर्ण अवधारणाओं को सुधारना सम्मिलित था।

परन्तु ऊपरी कक्ष में बात करते हुए, यीशु ने घोषणा की थी कि शिष्यों की कई प्रिय अवधारणाओं में से एक को सुधारे जाने की आवश्यकता नहीं थी। मृत्यु के उपरान्त के जीवन के लिए चेलों की आशा कोई मिथक या कल्पना नहीं थी। अनन्त जीवन पर उनका विश्वास एक प्रकार की इच्छा-पूर्ति पर आधारित नहीं था। इसमें कुछ भी बालकपन का विचार नहीं था।

यीशु ने घोषणा की, "यदि न होते, तो मैं तुमसे कह देता।" यह उद्घोषणा ईश्वरीय प्रकाशन का एक नकारात्मक रूप है। भले ही संकटपूर्ण अस्तित्ववादी *(existential)* ईश्वरविज्ञानी जो कहें, इस बात को सच्चाई के कथन *(propositional truth)* के रूप में लिया जाना चाहिए। यह कथन साहित्यिक रीति से "यदि-तो" प्रतिबन्धित *(conditional)* कथन के रूप में है। यहाँ पर एक सरल प्रतिबन्ध है जो कि तथ्य के विपरीत है।

यीशु यह कह रहा था: "यदि भविष्य के जीवन के विषय में तुम्हारा विश्वास वैध नहीं होता, तो मैं तुम्हारी झूठी आशाओं को सुधार देता। मैं ऐसा नहीं होने देता कि इतना गम्भीर झूठा विचार अभी तक बना रहे। परन्तु सच्चाई यह है कि वास्तव में स्वर्ग है और इस बात पर तुम भरोसा कर सकते हो।"

यह एक अति उत्तम सैद्धान्तिक कथन है। यीशु ने इस विषय में केवल एक निपुण और जानकार

रब्बी के रूप में, या परमेश्वर के अभिषिक्त नबी के रूप में बात नहीं की। उसने परमेश्वर के पुत्र के पूर्ण और अचूक अधिकार के साथ बात की। हम स्मरण करते हैं कि यीशु ने दृढ़तापूर्वक घोषणा की, "स्वर्ग और पृथ्वी का सारा अधिकार मुझे दिया गया है" (मत्ती 28:18)। यहाँ उसने उस अधिकार को प्रकट किया। यदि स्वर्ग पर सारा अधिकार रखने वाला व्यक्ति स्वर्ग के विषय में कुछ कहे, तो इसका अर्थ है कि उस विषय पर उसकी शिक्षा त्रुटिहीन है।

इसलिए, यदि यह सारे मानवीय दावों में सबसे बड़ा दावा सही था, तो स्वर्ग के विषय में यीशु के कथन इस विषय में जानकारी के लिए सबसे उच्च स्तर का और सबसे विश्वसनीय स्रोत है।

यीशु के अधिकार का विषय

यीशु ने दावा किया कि उसे अपना अधिकार सब अधिकार के स्रोत से, वास्तव में अधिकार के निर्माता अर्थात् स्वयं परमेश्वर से प्राप्त हुआ था। उसने इस दावे के साथ-साथ अन्य कथन भी कहे:

> "यह उपदेश मेरा नहीं, परन्तु उसका है जिसने मुझे भेजा। . . . तुम मुझे जानते हो और यह भी जानते हो कि मैं कहाँ से आया हूँ। मैं अपने आप से नहीं आया, परन्तु जिसने मुझे भेजा वह सच्चा है, जिसे तुम नहीं जानते। मैं उसे जानता हूँ क्योंकि मैं उसकी ओर से हूँ और उसी ने मुझे भेजा है।" (यूहन्ना 7:16, 28-29)

> "मुझे तुम्हारे सम्बन्ध में बहुत-सी बातें कहनी हैं, और न्याय करना है, परन्तु जिसने मुझे भेजा है वह सच्चा है और वे बातें जो मैंने उससे सुनीं वे ही मैं जगत से कहता हूँ। . . . मैं अपने आप से कुछ नहीं करता, परन्तु जैसे पिता ने मुझे सिखाया है मैं ये बातें कहता हूँ।" (यूहन्ना 8:26-28)

यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले ने भी इस दावे को दोहराया जब उसने यीशु के अधिकार की साक्षी दी: "जो ऊपर से आता है वह सबसे बढ़कर है; जो पृथ्वी से है वह पृथ्वी का है और पृथ्वी की बातें करता है। वह जो स्वर्ग से आता है सबसे बढ़कर है। . . . क्योंकि जिसे परमेश्वर ने भेजा है वह परमेश्वर की बातें करता है, क्योंकि वह बिना किसी नाप के उसे आत्मा देता है" (यूहन्ना 3:31-34)।

जब हमें महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त होती है, भले ही समाचार पत्र से या किसी विद्वान की पुस्तक से, तो हमसे कहा जाता है कि, "स्रोत पर ध्यान दें।" हम किसी भी सूचना के लिए प्रमाण चाहते हैं जिससे कि हम यह सुनिश्चित कर सकें कि क्या वह जानकारी विश्वसनीय है। यीशु ने

दावा किया कि उसकी जानकारी का स्रोत और उसके अधिकार का स्रोत एक ही था, अर्थात् स्वयं परमेश्वर।

यीशु के समय के लोग, और विशेषकर उसके विरोधी, प्रायः उसके बोलने के ढंग से व्याकुल होते थे:

> इसका परिणाम यह हुआ कि जब यीशु ये बातें कह चुका तो भीड़ उसके उपदेश से चकित हुई, क्योंकि वह उन्हें उनके शास्त्रियों के समान नहीं, वरन् अधिकार सहित उपदेश दे रहा था। (मत्ती 7:28-29)

> उनमें से कुछ उसे पकड़ना चाहते थे, परन्तु किसी ने उस पर हाथ न लगाया। तब सिपाही लौटकर महायाजकों और फरीसियों के पास आए। उन्होंने उनसे पूछा, "तुम उसे क्यों नहीं लाए?" सिपाहियों ने उत्तर दिया, "आज तक ऐसी बातें किसी ने कभी नहीं कहीं जैसी वह कहता है।" (यूहन्ना 7:44-46)

यीशु ने अधिकार सहित उपदेश दिया। यहाँ "अधिकार" के लिए उपयोग किया गया यूनानी शब्द *एक्सूसिया (exousia)* है। *एक्सूसिया* शब्द का निर्माण *एक्स* उपसर्ग, जिसका अर्थ है "से" या "में से," और *ऊसिया* धातु से किया गया है, जो कि "होना" क्रिया का वर्तमान कृदन्त *(present participle)* रूप है। अक्षरशः इस शब्द का अर्थ है "अस्तित्व में से" या "सारतत्व।"

एक्सूसिया शब्द को प्रायः "अधिकार" या "सामर्थ्य" के रूप में अनुवादित किया जाता है। *एक्सूसिया* शब्द में दोनों विचार पाए जाते हैं। हम इसे "सामर्थी अधिकार" के रूप में अनुवाद कर सकते हैं। यह ऐसा अधिकार है जो सारतत्व या अस्तित्व पर आधारित है।

सरल शब्दों में, जब बाइबल कहती है कि यीशु ने अधिकार रखने वाले जन के रूप में उपदेश दिया, इसका सीधा सा अर्थ यह है कि यीशु निरर्थक या काल्पनिक विचारों को नहीं सुना रहा था। उसके शब्दों के पीछे वास्तविकता की "सामग्री" या "सारतत्व" था। उसके अधिकार के पीछे स्वयं परमेश्वर के अस्तित्व या सारतत्व का समर्थन था।

जब परमेश्वर बोलता है, तो जो कहा गया है उसकी सत्यता और वास्तविकता के विषय में सभी विवादों को समाप्त होना होगा, केवल उन लोगों को छोड़कर जो सर्वदा हठीले या फिर पूर्णतः मूर्ख हैं। और कौन परमेश्वर की बातों को सुधारने का दुःसाहस करेगा?

यदि यीशु ने अपने अधिकार के सम्बन्ध में सत्य कहा, तो इस निष्कर्ष को कोई भी आपत्ति नहीं टाल सकती है कि उसने मृत्यु के उपरान्त के जीवन के विषय में सत्य कहा। उसकी घोषणा, "यदि

न होते, तो मैं तुमसे कह देता" सभी सान्त्वनाओं से बढ़कर सान्त्वना प्रदान करती है।

शोकसन्तप्त लोगों के लिए सर्वश्रेष्ठ सान्त्वना

शोकसन्तप्त *(bereaved)* लोगों को सान्त्वना देना एक ऐसा कार्य है जिसे हम सबको समय-समय पर करना पड़ता है। यह प्रायः एक कष्टप्रद और भयभीत करने वाला कार्य है। अन्त्येष्टि कक्ष *(funeral home)* में प्रखर वक्ता भी हकलाता है। हमें लगता है कि शोकित लोगों के लिए ठीक शब्द बोलने के लिए हम पूर्णतः अयोग्य हैं।

एक बार मैं एक अन्त्येष्टि कक्ष में गया जहाँ मेरे पहले नियोक्ता की पत्नी का शव अन्तिम दर्शन के लिए रखा गया था। जब मैं चौदह वर्ष की आयु का था तो उसके पति ने मुझे जूता चमकाने के कार्य के लिए रखा था। मैंने उसके साथ उसके मोची के दुकान में कार्य किया था। इतने वर्षों तक मैंने उसके साथ सम्पर्क बनाए रखा और उसे अपना मित्र मानता था।

जब मैं उस अन्त्येष्टि कक्ष में गया, तो मेरे पास कहने के लिए कोई शब्द नहीं थे। लगभग एक घण्टे के लिए उसके साथ बैठने के अतिरिक्त मुझे कुछ और करना ठीक नहीं लगा। मेरे पास उसे देने के लिए केवल मेरी उपस्थिति ही थी, जो इस बात की अनकही साक्षी थी कि मैं दुःख की इस घड़ी में उसकी चिन्ता करता हूँ। मैं चुप रहा क्योंकि मेरे पास ऐसे कोई शब्द नहीं थे जो आवश्यकता के लिए उपयुक्त होते। मेरी शब्दावली विफल हो गई। मैं किसी भी बात को अधिकार के साथ अर्थात् *एक्सूसिया* से नहीं कह पाया।

जब मरियम और मार्था के भाई लाज़र की मृत्यु होने पर यीशु उनके घर गया। उसने *एक्सूसिया* सम्पन्न शब्दों से उन्हें सान्त्वना दी। उसने मार्था से कहा, "तेरा भाई फिर जी उठेगा" (यूहन्ना 11:23)।

मार्था ने यीशु के शब्दों से समझा कि वह भविष्य में पुनरुत्थान की आशा के विषय में बात कर रहा है: "मैं जानती हूँ कि अन्तिम दिन में पुनरुत्थान के समय वह जी उठेगा" (11:24)। इसके प्रति यीशु ने उत्तर दिया: "पुनरुत्थान और जीवन मैं ही हूँ। जो मुझ पर विश्वास करता है यदि मर भी जाए फिर भी जीएगा, और प्रत्येक जो जीवित है, और मुझ पर विश्वास करता है, कभी नहीं मरेगा। क्या तू इस पर विश्वास करती है" (11:25-26)।

नासरत के यीशु ने इससे अधिक साहसपूर्ण वक्तव्य कभी नहीं कहा। उसने अनन्त जीवन को सीधे-सीधे स्वयं से जोड़ा। उसने अनन्त जीवन को, अर्थात् समस्त मानव जाति के सबसे महान् शत्रु पर, अर्थात् मृत्यु पर विजय को, उस पर विश्वास रखने से जोड़ा। ख्रीष्ट पर विश्वास करने का अर्थ है अनन्त जीवन को प्राप्त करना।

जगत के इतिहास में कुछ ही लोगों ने इस प्रकार का दावा करने का दुःसाहस किया है। और एक ही जन ने उस दावे को कार्यों के साथ प्रमाणित किया।

यीशु के शब्दों से अधिक प्रबल उसके कार्यों का विवरण है। उसका उदाहरण उसके शब्दों की सामर्थ्य के तुल्य है। मार्था को दिए गए सान्त्वना के शब्दों के कुछ ही क्षणों पश्चात् यीशु लाज़र की कब्र पर गया। मार्था ने आपत्ति जताई कि कब्र के सामने के पत्थर को न हटाया जाए। लाज़र चार दिनों से मृतक था। ऐसा प्रतीत होता है कि उसके शव पर लेप नहीं लगाया गया था। मार्था अपने भाई के शव से अपेक्षित दुर्गन्ध के कारण भय से पीछे हट गयी।

जब पत्थर को हटाया गया, यीशु ने ऊँचे स्वर से आज्ञा दी। ईश्वरीय आदेश देते हुए उसने लाज़र को आज्ञा दी कि वह मृत्यु से लौट आए: "हे लाज़र, निकल आ!"

लाज़र के हाँथ और पैर कब्र के वस्त्रों से बन्धे हुए थे। क्योंकि उसका प्राण चला गया था, इसीलिए वह मृत्यु की पकड़ में कसकर बन्धा हुआ था। फिर भी, यीशु की आज्ञा सुनकर मृत्यु ने अपनी पकड़ छोड़ दी। लाज़र का हृदय धड़कने लगा। उसकी नसों में रक्त फिर से बहने लगा। सड़ रहे ऊतक फिर से स्वस्थ हो गए। लाज़र में चेतना पुनः आ गई। वह अचानक चलने-फिरने लगा। कब्र के वस्त्रों में बँधे होते हुए भी, वह चलकर अपनी कब्र से बाहर निकला। यीशु ने पास खड़े लोगों को एक और आज्ञा दी: "उसके बन्धन खोल दो और उसे जाने दो" (यूहन्ना 11:44)।

यीशु ने जो कार्य लाज़र के लिए, याईर की पुत्री के लिए (लूका 8:40-42, 49-56), और नाइन नगर की विधवा के पुत्र के लिए (लूका 7:11-15) किया, वह स्वयं उसकी देह में भी हुआ।

उसकी मृत्यु के दिन, ठट्ठा करने वालों द्वारा इन शब्दों से यीशु का उपहास किया गया, "उसने अन्य लोगों को बचाया। यदि यह परमेश्वर का ख्रीष्ट अर्थात् उसका चुना हुआ है, तो अपने आपको बचाए" (लूका 23:35)। अपनी मृत्यु की घड़ी में यीशु जानता था कि स्वर्गदूतों की सेना एक क्षण में आकर उसको छुड़ाने के लिए उपलब्ध थी। ख्रीष्ट द्वारा एक शब्द मात्र भी उसके लिए स्वर्गदूतों को सक्रिय करने के लिए पर्याप्त होता। परन्तु मरना उसका कर्तव्य था। उसने वह प्याला पीया और अपने अन्तिम शब्दों के साथ उसने अपने आपको अपने पिता को सौंप दिया।

तीन दिनों के लिए परमेश्वर का पुत्र मरा पड़ा था। तीन दिन तक पिता चुप था। तीन दिन तक यीशु का उपहास करने वालों ने उसके प्रति शत्रुता में विजयी होने का आनन्द उठाया। तीन दिन तक उसके मित्र और शिष्यों ने अपनी अद्वितीय हानि के कारण शोक मनाया। तीन दिन तक वे भय और घबराहट में छिपे रहे।

फिर सर्वशक्तिमान प्रभु परमेश्वर ने चुप्पी तोड़ी। वह चिल्लाया नहीं। कोई तुरही की ध्वनि नहीं हुई। वाटिका में तब तक शान्ति थी, जब तक मरियम मगदलीनी वहाँ रोई नहीं। मरियम यह देखकर

व्याकुल थी कि यीशु की देह कब्र में नहीं थी। उसका शव वहाँ नहीं था, और मरियम को लगा कि यह यीशु की गरिमा के विरुद्ध अन्तिम और सबसे अर्थहीन प्रहार था। मरियम ने सोचा कि ख्रीष्ट की देह को किसी ने चुरा लिया था।

एक जन मरियम के पीछे खड़ा था। उसने सोचा कि यह माली है। उस जन ने कहा: "हे नारी, तू क्यों रो रही है? तू किसे ढूँढ़ रही है?" (यूहन्ना 20:15)। मरियम ने उत्तर दिया, "महोदय, यदि तू उसे कहीं उठा ले गया है तो मुझे बता कि तू ने उसे कहाँ रखा है, और मैं उसे ले जाऊँगी" (20:15ख)।

फिर मरियम ने उस पुरुष को उसका नाम लेते हुए सुना: "मरियम!" उसका स्वर सुनकर उसने तुरन्त उसे पहचान लिया। उसने मुड़कर कहा, "रब्बूनी!" जिसका अर्थ है "गुरु।"

यीशु मृतकों में से जी उठा था। "वह जी उठा है" यह वाक्य मसीहियत का सबसे पहला विश्वास वचन बना।

ख्रीष्ट का पुनरुत्थान मसीही कलीसिया की केन्द्रीय अभिपुष्टि है। सम्पूर्ण मसीही धर्म इस बात की सत्यता पर टिका हुआ है। यदि पुनरुत्थान नहीं हुआ, तो मसीहियत नहीं है। यदि पुनरुत्थान नहीं हुआ, तो कलीसिया में बने रहने का कोई कारण नहीं है। तब तो कलीसिया केवल एक और सामाजिक संस्था होती जो मिथ्यापूर्ण धार्मिक पोषाक में लोकोपकारी *(humanitarian)* समाज सेवा कर रही होती।

यीशु के दैहिक पुनरुत्थान के बिना मसीहियत का निर्माण करने के बहुत प्रयास हुए हैं। उन्नीसवी शताब्दी में तथाकथित उदारवादी मसीहियों ने तथा-कथिक "अनावश्यक" आश्चर्यकर्म रूपी भूसी को हटाकर नैतिक बीज को बनाए रखने के द्वारा मसीही विश्वास को आधुनिक बनाने का प्रयास किया। अलौकिक तत्वों को इस आधार पर नकारा गया कि एक ऐसा धर्म प्रस्तुत किया जाए जो अनुयायियों को बिना जीवन के उपरान्त की काल्पनिक बातों में फँसाए इस संसार में जीवन को सुधारे। उनके लिए यीशु भाईचारे के प्रेम का सर्वोत्तम आदर्श बना जिसने एक ऐसा परोपकारी आत्म-त्याग प्रदर्शित किया जिसका अन्त उसकी वीरतापूर्ण मृत्यु में हुआ। मृत्यु के बन्धन से ईश्वरीय उद्धारकर्ता और कब्र के ऊपर विजेता यीशु अब नैतिकता का मानवीय शिक्षक बन गया था।

इस प्रकार के यीशु को कलीसिया की आवश्यकता नहीं है। इस स्थिति में आराधना या तो निरर्थक सेवा है या फिर नैतिकता के एक मृतक शिक्षक के नाम पर की गई ईश-निन्दा है। हमारे पास सुकरात के लिए कोई कलीसिया नहीं है। हम सिसरो *(Cicero)* के लिए कोई भजन नहीं गाते हैं। हम अरस्तू से प्रार्थना नहीं करते हैं। यदि यीशु केवल एक मानवीय शिक्षक है, तो हमें उसकी आराधना भी नहीं करनी चाहिए।

पुनरुत्थान के लिए पौलुस का तर्क

कलीसिया के इतिहास के आरम्भ से ही बिना पुनरुत्थान के मसीहियत का निर्माण करने के प्रयास होते आ रहे हैं। प्रेरित पौलुस को कुरिन्थियों की तनावपूर्ण कलीसिया में इस समस्या का सामना करना पड़ा। कुरिन्थियों की मण्डली के लिए पौलुस की डाँट आज भी उतनी ही प्रासंगिक है जितना कि वह उस समय थी। सम्भवतः यह आज और भी अधिक प्रासंगिक हो सकती है क्योंकि जो विचार-धारा कभी एक विशिष्ट परिस्थिति तक सीमित थी और केवल एक स्थानीय समस्या थी, अब इक्कीसवी शताब्दी की कलीसिया में वह एक महामारी बन गई है।

प्रेरित पौलुस ने कुरिन्थियों को एक महत्वपूर्ण प्रश्न के साथ सम्बोधित किया: "अब यदि ख्रीष्ट का यह प्रचार किया जाता है कि वह मृतकों में से जिलाया गया है तो तुम में से कुछ यह क्यों कहते हैं कि मरे हुओं का पुनरुत्थान है ही नहीं?" (1 कुरिन्थियों 15:12)।

यहाँ हम आरम्भिक मसीही समुदाय में ऐसे सदस्यों को पाते हैं जिन्होंने मृत्यु के उपरान्त के जीवन को नकारा। उन्होंने दृढ़ता से इस बात को नकारा। उन्होंने इस बात पर बल देकर कहा कि मृतकों का पुनरुत्थान नहीं होता है। उनका दावा था कि कोई भी, यहाँ तक कि यीशु भी, कब्र से नहीं बच पाया।

इस दृष्टिकोण का उत्तर देने के लिए पौलुस ने अपने विरोधियों को उन्हीं के तर्कों पर तर्क देते हुए दिखाया कि यीशु ख्रीष्ट के दैहिक पुनरुत्थान के बिना मसीही विश्वास पूर्ण रूप से असंगत और निरर्थक है। आइए हम प्रेरित के तर्क को बिन्दुवार रूप से देखें कि वह किस रीति से पुनरुत्थान को नकारने वाले विचार के तार्किक निहितार्थों को दिखाता है। वह प्रगतिशील रूप से आगे बढ़ता है, और अचूक तर्क पर आधारित नकारात्मक निहितार्थों की एक श्रृंखला को दिखाता है।

बिन्दु 1: "यदि मरे हुओं का पुनरुत्थान नहीं है तो ख्रीष्ट भी नहीं जिलाया गया" (1 कुरिन्थियों 15:13)।

इस प्रकार के तर्क से कौन वाद-विवाद कर सकता है। किसी भी सार्वभौमिक *(universal)* नकारात्मक तर्कवाक्य (मरे हुओं का पुनरुत्थान नहीं है) का कोई अपवाद नहीं हो सकता है। अमध्याश्रित अनुमान *(immediate inference)* के नियम अनुमति नहीं देते है कि "कोई नहीं" और "कुछ" एक साथ चलें। यहाँ एक ऐसा तर्कवाक्य है जिसके निष्कर्ष को नकारा नहीं जा सकता है। यदि पहली बात सत्य है, तो अवश्य ही दूसरी बात भी सत्य है। यदि मरे हुओं का पुनरुत्थान नहीं है, तो अवश्य ही ख्रीष्ट भी नहीं जिलाया गया।

बिन्दु 2: "यदि ख्रीष्ट जिलाया नहीं गया तो हमारा प्रचार करना व्यर्थ है, और तुम्हारा विश्वास भी व्यर्थ है" 15:14)।

यहाँ पौलुस स्वयं को उन सब उदारवादी मसीहियत के प्रकारों के विरोध में रखता है जो एक

ओर तो ख्रीष्ट के पुनरुत्थान को नकारना चाहते हैं और साथ ही दूसरी ओर प्रचार करके लोगों को तथाकथित "विश्वास" के लिए बुलाते हैं। पौलुस के दृष्टिकोण में, यह दो नाव पर पैर रखकर चलने का मूर्खतापूर्ण प्रयास है। वह इसे व्यर्थता के निरर्थक कार्य के रूप में देखता है। ख्रीष्ट के वास्तविक, दैहिक पुनरुत्थान के बिना मसीही प्रचार व्यर्थ है।

पौलुस यहाँ झूठी दुविधा *(false dilemma)* का तर्कदोष *(fallacy)* नहीं कर रहा है। वह समझता है कि यहाँ दोनों में से एक ही सत्य हो सकते हैं। या तो ख्रीष्ट जिलाया गया है, या फिर प्रचार करना और विश्वास व्यर्थ हैं।

बिन्दु 3: "इससे भी बढ़कर हम परमेश्वर के झूठे साक्षी ठहरते हैं, क्योंकि हमने परमेश्वर के विषय में यह साक्षी दी कि उसने ख्रीष्ट को जिला उठाया। परन्तु यदि मृतक वास्तव में जिलाए नहीं जाते तो उसने ख्रीष्ट को भी नहीं जिलाया" (15:15)।

सुस्पष्ट बात को दोहराने के द्वारा पौलुस यहाँ मानो अपने पाठकों का अपमान कर रहा है। पद के दूसरे भाग को जोड़ने के द्वारा (परन्तु यदि मृतक वास्तव में जिलाए नहीं जाते तो उसने ख्रीष्ट को भी नहीं जिलाया) पौलुस पूर्णतः स्पष्ट निष्कर्ष को व्यक्त कर रहा था। मैं सोचता हूँ कि प्रेरित अपनी लेखनी में यहाँ पर कटाक्ष का उपयोग कर रहा है। यह बात समझने के लिए बहुत सरल है कि यदि मृतक जिलाए नहीं जाते तो परमेश्वर ने ख्रीष्ट को नहीं जिलाया।

परन्तु यहाँ एक अधिक गम्भीर बात भी है। पौलुस एक यहूदी ईश्वरविज्ञानी के रूप में लिख रहा था। वह झूठी साक्षी देने की गम्भीरता को भली-भाँति जानता था। मनुष्यों के विरुद्ध झूठी साक्षी देना दस आज्ञाओं के अनुसार मृत्युदण्ड के योग्य अपराध है। परमेश्वर के विरुद्ध झूठी साक्षी देना तो इससे भी गम्भीर अपराध है।

पौलुस का तर्क यह था: यदि ख्रीष्ट जिलाया नहीं गया है, तो पौलुस और अन्य प्रेरितों को झूठे नबी ठहराकर दण्डित किया जाना चाहिए। फिर तो वे यहोवा के झूठे साक्षियों के साथ के ठहरेंगे। पुनरुत्थान के विषय में प्रेरितों की उद्घोषणा को नकारते हुए उनको अच्छे नैतिक शिक्षक के रूप में मानने का अर्थ था झूठे नबियों की मूर्खता की प्रशंसा करना। प्रेरित ने स्वयं इसे एक अर्थहीन विरोधाभास समझा। यदि पुनरुत्थान के विषय में उसकी साक्षी झूठी थी तो उसने स्वयं को एक विश्वसनीय शिक्षक के रूप में अयोग्य समझा। यहाँ पौलुस ने अपने और शेष प्रेरितों की प्रतिष्ठा को दाँव पर लगा दिया। पौलुस के कहने का अर्थ था, "इस बिन्दु पर मुझे ग्रहण करो या फिर मुझे त्याग दो।"

बिन्दु 4: "और यदि ख्रीष्ट नहीं जिलाया गया है तो तुम्हारा विश्वास व्यर्थ है; तुम अब तक अपने पापों में पड़े हो!" (15:17)।

एक बार फिर से प्रेरित ने विचार को उसकी व्यर्थता तक ढकेला। पुनरुत्थान के बिना, मसीही

विश्वास व्यर्थ है। यह तो निष्फल है, तथा समय, ऊर्जा और भक्ति का दुरुपयोग है। एक झूठी आशा पर विश्वास करने का अर्थ है अपने हृदय को पूर्ण निराशा के मार्ग में लगाना। पुनरुत्थान के बिना, हमारे पास कोई आशा नहीं है। जीवन की यात्रा के अन्त में हमारे पास केवल उलझा हुआ दोषबोध ही है।

पौलुस के अनुसार यीशु का पुनरुत्थान इस बात के लिए स्पष्ट चिह्न है कि परमेश्वर ने हमारे पापों के प्रायश्चित्त के रूप में ख्रीष्ट के बलिदान को स्वीकार किया था (रोमियों 1:4)। इसलिए, यदि वह जिलाया नहीं गया, तो हम अपने पापों में बने हुए हैं। हमारा कोई उद्धारकर्ता नहीं है। हमारा विश्वास और ख्रीष्ट की मृत्यु, दोनों ही व्यर्थ हैं। हम ऐसे ऋणी हैं जो अपना ऋण नहीं चुका सकते हैं।

बिन्दु 5: "तब तो वे भी जो ख्रीष्ट में सो गए हैं, नाश हो गए" (15:18)।

पुनरुत्थान न होने के नकारात्मक निहितार्थों *(implications)* में से सम्भवतः यह सबसे अधिक भयंकर है। पौलुस इस कठोर निष्कर्ष से पीछे नहीं हटा: पुनरुत्थान न होने का अर्थ है कि मृत्यु सब आशा को समाप्त करती है। दाँते एलीगियरी *(Dante Alighieri)* ने अपने ग्रन्थ ईश्वरीय *सुखान्तिकी (Divine Comedy)* में नरक के द्वार पर एक चिह्न की कल्पना की जिस पर लिखा है "हे यहाँ प्रवेश करने वाले सब लोगों, सारी आशा छोड़ दो।" पौलुस ने इस चिह्न को अभी और इसी समय लगा दिया। यह नरक के द्वार पर नहीं परन्तु प्रत्येक अन्त्येष्टि कक्ष के द्वार पर लगा हुआ है।

प्रत्येक जन जिसने अपने किसी प्रियजन को खोया है उस मार्मिक आशा को जानता है जो बनी रहती है। यह एक ऐसी आशा है कि कहीं और कभी हम फिर से अपने प्रियजन को देखेंगे। जब मृत्यु हमें अपने प्रियजनों से अलग करती है तो हम इसी आशा को थामे रहते हैं।

एक बहुत बुरे दिन, मैं अपनी पुत्नी और उसके पति के साथ एक अस्पताल के प्रसूति-गृह के प्रसव-कक्ष में बैठा हुआ था। मेरी पुत्नी ने एक छोटी लड़की को जन्म दिया था। बच्ची मृत जन्मी थी। ऐसे समयों में, अस्पताल का नियम था कि कुछ समय के लिए माता-पिता मृत शिशु को पकड़ सकते हैं। कुछ चित्न लिए गए। बच्चे के पदचिह्नों को स्याही के माध्यम से अभिलिखित किया गया। बच्चे को नाम दिया गया और उसके भार और उसकी लम्बाई को लिखा गया। बच्चे के कुछ बालों को काटकर अभिलेख पत्न पर चिपकाया गया। जब बच्चे को मिट्टी देने की तैयारी के लिए ले जाया गया तो माता-पिता को वह पत्न दिया गया। उस पत्न को "स्मृति प्रमाण-पत्न" कहा गया।

मेरी बेटी चित्न और प्रमाण पत्न लिए हुए अस्पताल से घर आई। और साथ ही साथ वह इस बड़ी आशा के साथ भी घर आई कि एक दिन वह फिर से अपनी बेटी को देखेगी, परन्तु जीवित अवस्था में।

परन्तु यदि ख्रीष्ट को जिलाया नहीं गया, पौलुस तर्क करता है, तो जो लोग मरे हैं, वे सर्वदा के

लिए नाश हो गए हैं। सब मनुष्यों की नियति है कि उन्हें एडगर ऐलन पो की कविता "द रेवन" के दोहराए गए शब्द को ही जपना पड़ेगा: "फिर कभी नहीं।"

बिन्दु 6: "अन्यथा जो मरे हुओं के लिए बपतिस्मा लेते हैं वे क्या करेंगे? यदि मृतक जिलाए ही नहीं जाते हैं तो फिर उनके लिए इन्हें क्यों बपतिस्मा दिया जाता है?" (15:29)।

पौलुस ने उन लोगों की असंगतता दिखाते हुए तर्क को आगे बढ़ाया जो कुरिन्थुस में मृतकों को बपतिस्मा देते थे। मृतकों के बपतिस्मा के विषय में यह वर्णन सम्पूर्ण नए नियम में एकमात्र स्थान है जहाँ इस चलन की बात की गई है। इस स्थल के कारण बहुत लोग विस्मित हुए हैं। पौलुस ने इस चलन को न तो सराहा है और न ही दोषी ठहराया। उसने केवल स्वीकार किया कि कुरिन्थुस के लोगों में से कुछ लोग ऐसा करते थे और उसने कहा कि यदि पुनरुत्थान नहीं है तो यह भी निरर्थक है। यदि पुनरुत्थान नहीं है तो मरे हुओं को बपतिस्मा देना समय और पानी को व्यर्थ में खो देना है।

बिन्दु 7: "हम भी क्यों प्रत्येक घड़ी संकट में रहते हैं? मेरे उस घमण्ड के कारण जो ख्रीष्ट यीशु हमारे प्रभु में तुम्हारे लिए है, मैं दृढ़तापूर्वक कहता हूँ कि मैं प्रतिदिन मरता हूँ। यदि मैं इफिसुस में वन-पशुओं से लड़ा तो मानवीय भाव से मुझे क्या लाभ?" (15:30-32)।

यहाँ हम एक रुचिकर लागूकरण देखते हैं। प्रेरित ने स्वयं अपनी सेवा को इस दृढ़ विश्वास के लिए प्रमाण बनाया कि पुनरुत्थान के कारण ही उसके क्लेश "अर्थपूर्ण" थे। उसने ख्रीष्ट में अपनी सेवा की शपथ खाने के द्वारा अपने पक्ष की पुष्टि की। एक ईश्वरभक्त यहूदी के लिए इस प्रकार की शपथ खाना कोई छोटी बात नहीं थी। उसने साक्षी दी कि पुनरुत्थान से पृथक उसकी स्वयं की सेवा भी व्यर्थ है। पौलुस की सेवा को चिह्नित करने वाले अत्यन्त कठिन पीड़ा और प्रयास के सारांश के लिए, पाठक कुछ क्षण लेकर 2 कुरिन्थियों 11 को पढ़ सकता है, जहाँ पौलुस ने सेवा में अपने दुःख उठाने का संक्षिप्त विवरण दिया है।

पुनरुत्थान के समर्थन में एक प्रचलित तर्क कुछ इस प्रकार से है: विश्वास करने के लिए कौन सी बात अधिक कठिन है कि ख्रीष्ट मृतकों में से जी उठा या कि इस झूठ के लिए प्रेरित मरने के लिए तैयार थे?

मुझे कभी भी इस प्रकार के तर्क सन्तोषजनक नहीं लगे हैं। सतही स्तर पर, हमें स्वीकार करना होगा कि यद्यपि ऐसे कट्टर लोग विरले ही पाए जाते हैं जो इतने पथभ्रष्ट हैं कि वे किसी झूठी बात के लिए या किसी ऐसी बात के लिए भी मर जाएँगे, जिसे वे जानते हैं कि वह झूठी है, फिर भी यह मृतकों में से पुनरुत्थान जैसा दुर्लभ नहीं है।

अपनी सेवा के प्रति पौलुस की अद्भुत भक्ति या अपने विश्वास के लिए उसके मर जाने का समर्पण इस बात को पूर्णतः प्रमाणित नहीं करते हैं कि उसका विश्वास वैध था।

परन्तु, इससे यह बात अवश्य प्रमाणित होती है कि उसका व्यवहार हमारी इस अपेक्षा से मेल खाता है जिसकी आशा हम एक ऐसे व्यक्ति के व्यवहार से कर सकते हैं जो जी उठे यीशु का प्रत्यक्षदर्शी था। और जो बात पौलुस के लिए सत्य थी वह अन्य प्रेरितों के लिए भी सत्य थी। वे ख्रीष्ट के पुनरुत्थान पर पूर्ण भरोसा रखते हुए जीए और मरे।

बिन्दु 8: "यदि मृतक जिलाए नहीं जाते, 'तो आओ, खाएँ, पिएँ, क्योंकि कल तो मरना ही है!" (15:32)

यहाँ पौलुस ने सभी धार्मिक भावुकता और परोपकारिता को हटा ही दिया। उसने प्राचीन भोगवादी *(Epicurean)* के सिद्धान्त को दोहराया। यदि मृत्यु के पश्चात् जीवन नहीं है, तो खुला सुखवाद *(hedonist)* ही एकमात्र उचित जीवनशैली है। इससे पहले कि हम अन्तिम पीड़ा द्वारा निगल लिए जाएँ, अच्छा होगा कि हम अधिक से अधिक सुख को प्राप्त कर लें। आधुनिक सन्देहवाद के प्रति प्रेरितीय प्रत्याशा यह है: पूरी शक्ति लगाकर अधिक से अधिक बटोर लो क्योंकि "जीवन हमें एक ही बार जीना है"; या फिर, दूसरे प्रकार से कहें तो, क्योंकि "सफल वही है जिसने मरने से पहले सबसे अधिक सुख भोगा हो।"

बिन्दु 9: "यदि हमने केवल इसी जीवन में ख्रीष्ट पर आशा रखी है तो हमारी दशा सब मनुष्यों से अधिक दयनीय है" (15:19)।

यद्यपि यह बात पौलुस के तर्क में पहले आती है, मैंने इस बिन्दु को अन्त के लिए बचा रखा था। बिना यीशु ख्रीष्ट के दैहिक पुनरुत्थान वाले मसीही धर्म को बनाने के सब प्रयासों के विरुद्ध यह पौलुस का दृढ़ प्रतिवाद *(protest)* है। यदि मसीही आशा का महत्व इस जीवन तक सीमित है, तो मसीही लोग सबसे अभागे लोग हैं। उनका दुर्भाग्य यह है: वे झूठी आशा पर आधारित जीवन जीते हैं। वह आशा सब बातों को नियन्त्रित करती है। इसके अनुसार प्रतिफल विलम्ब से प्राप्त होगा, अर्थात् भविष्य के प्रतिफल के लिए वर्तमान में दुःख उठाना होगा।

पौलुस कह रहा था कि यदि आप मसीहियों के विरुद्ध प्रतिरोधी है, तो आपको प्रतिरोध के स्थान पर दया करनी चाहिए। पथभ्रष्ट आशा के साथ जीने वाले मसीहियों को दया की आवश्यकता है। उनको दया की आवश्यकता है क्योंकि निश्चय ही वे सब मनुष्यों से अधिक दयनीय हैं।

प्रत्यक्षदर्शियों का आधार

पुनरुत्थान के लिए पौलुस के तर्क का सबसे महत्वपूर्ण आयाम यह है: यह केवल विकट विकल्पों के विचारवान आधार पर टिका हुआ नहीं है। पौलुस का यह निष्कर्ष नहीं था कि क्योंकि पुनरुत्थान के बिना जीवन अभागा है, इसलिए हमें गहरी साँस लेकर, अपनी आँख बन्द कर लेनी चाहिए, और पुनरुत्थान पर विश्वास का निर्माण करना चाहिए। पौलुस ने यह नहीं कहा कि हमें इस प्रकार से

जीना है *मानो* पुनरुत्थान है क्योंकि उसके बिना हमें इन सब निराशाजनक निष्कर्षों का सामना करना ही होगा। उसका नौ-बिन्दुओं वाला तर्क केवल समर्थन के लिए था। इसके द्वारा उसने बात की असंगतता को प्रकट किया। परन्तु ख्रीष्ट के पुनरुत्थान पर उसके भरोसे के लिए यह आधार नहीं था।

पुनरुत्थान के पक्ष में पौलुस का तर्क विचारवान दर्शनशास्त्र से आगे जाता था। उसने ऐसा प्रमाण दिया जिसे न तो प्लेटो *(Plato)* और न ही कान्ट *(Kant)* दे सकते थे। यीशु के पुनरुत्थान की ऐतिहासिक वास्तविकता के लिए उसने प्रत्यक्षदर्शियों की साक्षी को माना।

> मैंने यह बात जो मुझ तक पहुँची थी उसे सबसे मुख्य जानकर तुम तक भी पहुँचा दी कि पवित्रशास्त्र के अनुसार ख्रीष्ट हमारे पापों के लिए मरा, और गाड़ा गया, तथा पवित्रशास्त्र के अनुसार तीसरे दिन जी भी उठा, तब वह कैफा को, और फिर बारहों को दिखाई दिया। इसके पश्चात् वह पाँच सौ से अधिक भाइयों को एक साथ दिखाई दिया, जिनमें से अधिकाँश अब तक जीवित हैं, पर कुछ सो गए। तब वह याकूब को दिखाई दिया, और फिर सब प्रेरितों को, और सब से अन्त में मुझे भी दिखाई दिया, जो मानो अधूरे समय का जन्मा हूँ। (1 कुरिन्थियों 15:3-8)

यह नासरत के यीशु के सम्बन्ध में इतिहास का वर्णन है। उसका जीवन, उसकी मृत्यु, और उसके पुनरुत्थान के विषय में पवित्रशास्त्र द्वारा पहले से ही बताया गया था। उसके पुनरुत्थान की साक्षी खाली कब्र के आधार पर निकाले गए निहितार्थों और निष्कर्षों पर आधारित नहीं थी। लापता शव पर्याप्त नहीं था। साक्षी यीशु के जीवित प्रकटीकरण पर आधारित थी और एक या दो लोगों के ऊपर नहीं, वरन् अनेक लोगों के ऊपर।

पौलुस ने उन लोगों के नाम लिए जिन्होंने यीशु को कब्र में गाड़े जाने के पश्चात् जीवित देखा था। इस सूची में कुछ ऐसे लोग हैं जिन्होंने यीशु के पंजर में अन्तिम भाले को बेधते हुए देखा था। इसमें वे लोग भी हैं जिन्होंने उसके शव को गाड़ने के लिए तैयार किया था।

प्रत्यक्षदर्शियों में एक ऐसा भी समूह था जिनकी संख्या पाँच सौ से अधिक थी। इसके साथ-साथ, पौलुस का दावा था कि अधिकतर प्रत्यक्षदर्शी जीवित थे। मानो वह कह रहा था: "देख लो। प्रत्यक्षदर्शियों से आप अब भी पूछ-ताछ कर सकते हैं।"

अब हमारे पास उन पाँच सौ लोगों से पूछ-ताछ करने का अवसर नहीं है। परन्तु हमारे पास प्रेरितीय प्रत्यक्षदर्शियों का लिखित विवरण है। हम अभी भी यूहन्ना या मत्ती के विवरण को पढ़ सकते हैं।

अन्त में, पौलुस ने घोषणा की कि उसने व्यक्तिगत रूप से जी उठे ख्रीष्ट को देखा था। पौलुस

के शब्द रोमांचक हैं। दूसरों से प्राप्त वर्णन के ऊपर, प्रेरित ने घोषणा की: "वह मेरे द्वारा भी देखा गया।"

पौलुस ने कहा, "मैंने उसे देखा!" इस बात को प्लेटो और काण्ट कभी नहीं कह सकते थे।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि पौलुस मृत्यु पर ख्रीष्ट के विजय में पूर्ण रीति से आश्वस्त था। उसका अन्तिम निष्कर्ष इस भावोत्तेजक साक्षी का सीधा-सीधा परिणाम है: "इसलिए हे मेरे प्रिय भाइयो, दृढ़ और अटल रहो तथा प्रभु के कार्य में सर्वदा बढ़ते जाओ, क्योंकि तुम जानते हो कि तुम्हारा परिश्रम प्रभु में व्यर्थ नहीं है" (1 कुरिन्थियों 15:58)।

पौलुस का "इसलिए" इस बात का संकेत देता है कि वह अन्तिम महान निष्कर्ष पर पहुँचा है। इस गम्भीर आदेश के लिए ठोस आधार है: अटल रहो। पुनरुत्थान की निश्चयता अटलता की माँग करती है। जी उठे ख्रीष्ट को जानने वालों में अनिश्चयता का गुण नहीं पाया जाता है। पुनरुत्थान प्राण के लिए एक ऐसा लंगर प्रदान करता है जो इसे एक अटल वस्तु बनाता है। इसके साथ-साथ विश्वासियों को सर्वदा प्रभु के कार्य में बढ़ना चाहिए। पुनरुत्थान बहुतायत से कार्य को बढ़ावा देता है। यह इस प्रकार का परिश्रम है जो इस बात में विश्राम करता है कि ख्रीष्ट के लिए किया गया कोई भी कार्य व्यर्थ नहीं है। हमारा परिश्रम, हमारी पीड़ा, हमारा दुःख उठाना—यहाँ तक कि हमारी मृत्यु भी—कभी भी व्यर्थ नहीं होती हैं।

अध्याय नौ

मरना लाभ है

ब्लेज़ पास्कल *(Blaise Pascal)* ने एक बार कहा कि मनुष्य के दुर्भाग्य का एक महत्वपूर्ण आयाम इस बात में पाया जाता है—कि वह सर्वदा एक ऐसे जीवन की कल्पना कर सकता है जिसे अर्जित करना उसके लिए सम्भव नहीं है। ऐसा इसलिए है क्योंकि हम सबके पास स्वप्न देखने की क्षमता है, अर्थात् हम अपनी कल्पनाओं को कहीं भी उड़ान भरने की अनुमति देते हैं।

परन्तु, जब हम अपनी कल्पना करने की शक्तियों को उनकी सीमा तक ले जाते हैं और सम्भावित सर्वोत्तम जीवन की कल्पना करने का प्रयास करते हैं, तो हम अज्ञात बातों की बाधा से टकरा जाते हैं। भला कौन कल्पना कर सकता है कि स्वर्ग वास्तव में कैसा है? यह हमारी समझ से परे है। यह हमारी सबसे महत्वाकाँक्षी स्वप्नों से भी परे है।

किसी ज्ञानी ने कहा कि यदि हम सबसे अधिक सुखद अनुभव की कल्पना करें और उसी को अनन्त काल के लिए करते रहने के विषय में सोचें, तब हम किसी ऐसी बात की कल्पना कर रहे होंगे जो स्वर्ग से अधिक नरक से मेल खाएगा। हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि सर्वोत्तम सुख की स्थिति कैसी होगी। हमारे पास तुलना करने के लिए कोई ठोस बिन्दु नहीं है।

मरणोत्तर जीवन के रहस्यमय और अपरिचित स्वभाव के कारण हैमलेट ने घोषणा की:

कौन भार ढोता, जीवन का जुआ खींचता,
अपना खून-पसीना रात-दिन एक करता,

यदि मृत्यु-पर्यन्त का कोई भय न होता।
वह अनजाना देश, जहाँ से लौटकर
कोई पथिक नहीं आता, मन भरमाता है
वहाँ पहुँचने पर जाने क्या पड़े भोगना,
इस भय से हम दुःख यहाँ के सहते जाते।
ये शंका हम लोगों को कायर बनाती है।
(*हैमलेट,* अंक 3, दृश्य 1)

सम्भवतः हैमलेट अपनी कविता में पास्कल की टिप्पणी के दूसरे आयाम को समझता था। न केवल हमारे पास क्षमता है वर्तमान के अस्तित्व से उत्तम अस्तित्व की कल्पना कर सकने की, परन्तु हमारे पास वर्तमान जीवन से भी बुरे अस्तित्व की कल्पना कर सकने की शक्ति भी है। मरणोत्तर जीवन के इस अनजान स्वभाव के कारण ही हम उन पीड़ाओं को सहते हैं जो हमारे पास हैं और उन बातों की ओर नहीं जाते हैं जिन्हें हम नहीं जानते हैं।

मरणोत्तर जीवन के विषय में हमारी कल्पनाएँ प्राथमिक रूप से साम्यानुमान *(analogy)* तक सीमित हैं। इस संसार से परे जाने का अर्थ है एक भिन्न आयाम में जाना। उस भिन्न आयाम में कुछ निरन्तरता है और कुछ विच्छिन्नता सम्मिलित हैं। जहाँ तक निरन्तरता है, हम इस संसार से सम्बन्धित साम्यानुमानों के माध्यम से विचार कर सकते हैं। विच्छिन्नता *(inscrutable)* की बातें अबोधगम्य बनी रहती हैं। अपने अनुभव से परे जाने वाली बातों को हम समझ ही नहीं सकते हैं।

यद्यपि बाइबल भविष्य में हमारी अवस्था के विषय में कुछ अस्पष्ट है, यह पूर्ण रीति से चुप भी नहीं है। हमें संकेत दिए जाते हैं, अर्थात् ऐसे महत्वपूर्ण सुराग कि मरणोत्तर जीवन कैसा है। हमारे सामने भविष्य की महिमा का एक प्रकार का ललचाने वाला पूर्वानुभव रखा गया है, जो हमें काले अन्धेरे काँच के पीछे की थोड़ा सी झलक देता है। परन्तु कुछ बातें हैं जिन्हें सम्पूर्ण स्पष्टता के साथ हम पर प्रकट किया गया है।

इस अध्याय में मैं सुसमाचारों और पत्रियों में मरणोत्तर जीवन के विषय में शिक्षात्मक दावों को ध्यान से देखना चाहता हूँ। अगले अध्याय में, मैं अपने ध्यान को यूहन्ना के भेदसूचकीय लेख (प्रकाशितवाक्य) में वर्णित जीते-जागते चित्रों पर लगाऊँगा।

मध्यवर्ती अवस्था

बाइबल मानव जीवन की दो अवस्थाएँ नहीं, वरन् तीन अवस्थाओं की शिक्षा देती है। पहला तो वह जीवन है जिसे हम पृथ्वी पर अनुभव करते हैं। अन्तिम अवस्था भविष्य में हमारे जी उठे शरीरों की

है। और फिर एक अवस्था है जो हमारे मृत्यु के क्षण और अन्तिम पुनरुत्थान के मध्य का समय है। इस समय को मध्यवर्ती अवस्था *(intermediate state)* कहा जाता है।

ऐतिहासिक रूप से, मसीही ईश्वरविज्ञान के अनुसार मध्यवर्ती अवस्था में हमारे प्राण स्वर्ग में तब तक व्यक्तिगत रूप से अस्तित्व में होंगे जब तक उन्हें महिमामय शरीर नहीं दिया जाएगा। मध्यवर्ती अवस्था में हम अस्तित्व में बने रहते हैं, और हम शरीर के बिना आत्माओं के रूप में जीवित होंगे।

प्राण निद्रा *(soul sleep)* की धारणा धर्म के कुछ समूहों में प्रचलित हो गई है। यह धारणा मृत्यु के लिए बाइबल द्वारा उपयोग "नींद" शब्द पर आधारित है। यह सिखाती है कि मृत्यु के समय से विश्वासियों के प्राण महान् पुनरुत्थान तक एक प्रकार की निलम्बित प्राणवत्ता *(suspended animation)*, अचेतन अवस्था में, और समय के बीतने से अनभिज्ञ बने रहेंगे। यह प्राण निद्रा और इस जीवन में अनुभव की जा रही निद्रा के बीच समरूपता देखता है। जब हम इस जीवन में सोते हैं, तो हमें समय के रुक जाने की अनुभूति होती है, जबकि हम अचेतन अवस्था में होते हैं।

परन्तु नए नियम में प्राण निद्रा का विचार नहीं पाया जाता है। जैसे हमने स्पष्टता से देखा है, पौलुस ने कहा कि मध्यवर्ती अवस्था हमारे वर्तमान जीवन से श्रेष्ठ है क्योंकि हम उसी घड़ी ख्रीष्ट की उपस्थिति में चले जाते हैं। यह कल्पना करना कठिन है कि यदि हम ख्रीष्ट की उपस्थिति में अचेतन बने रहते तो वह अवस्था वर्तमान अवस्था से उत्तम कैसे हो सकती है।

निस्सन्देह नींद में हम पीड़ा और क्लेश से विश्राम पाते हैं, परन्तु हमें इस जीवन में ख्रीष्ट के साथ उस सचेतन संगति को तुच्छ नहीं जानना चाहिए जिसका आनन्द हम वर्तमान में उठाते हैं। ऐसे समय आते हैं जब हम अचेतन नींद की लालसा करते हैं जिससे कि हमें इस संसार की चिन्ताओं से विश्राम मिल सके, परन्तु सामान्य रूप से हमारी इच्छा रहती है कि हम जाग जाएँ जिससे कि हम पुनः सचेतन जीवन को आरम्भ कर सकें। मसीही चरम सुख *(bliss)* का महान् आदर्श रिप वैन विंकल *(Rip Van Winkle)* की कहानी नहीं है।

बाइबल हमें मध्यवर्ती अवस्था की जो झलक देती है वह चेतना की अवस्था की ओर संकेत देती है। यद्यपि इस बात पर अत्यधिक बल नहीं दिया जाना चाहिए, धनी मनुष्य और लाज़र का दृष्टान्त दर्शाता है कि दोनों मनुष्य पूर्ण रूप से सचेतन थे।

दृष्टान्त में धनी मनुष्य और अब्राहम के मध्य एक वार्तालाप है। धनी मनुष्य ने अपनी यातना में होकर अब्राहम से दया की याचना की। अब्राहम ने उत्तर दिया: "हे पुत्र, स्मरण कर कि तू अपने जीवन में सब अच्छी वस्तुएँ प्राप्त कर चुका है और इसी प्रकार लाजर बुरी वस्तुएँ; पर अब वह यहाँ

शान्ति पा रहा है और तू पीड़ा में पड़ा तड़प रहा है। इसके अतिरिक्त हमारे और तेरे मध्य एक अथाह खाई निर्धारित की गई है, कि यहाँ से यदि कोई उस पार जाना भी चाहे तो न जा सके, और वहाँ से यदि कोई इस पार हमारे पास आना चाहे तो न आ सके" (लूका 16:25-26)। धनी मनुष्य ने फिर विनती की कि उसके जीवित भाइयों को एक सन्देश दिया जाए जिससे कि वे यातना के स्थान के विषय में चिताए जा सकें (27-28 पद), परन्तु उस निवेदन को भी ठुकरा दिया गया। इस दृष्टान्त में, यीशु ने चित्र बनाया कि "अब्राहम की गोद" सचेतन कल्याण *(felicity)* का स्थान है और अधोलोक सचेतन यातना का स्थान है।

प्रकाशितवाक्य में वर्णित यूहन्ना के दर्शन में मरे हुए उन विश्वासियों के दृश्य हैं जो महिमा की अन्तिम स्थिति की प्रतीक्षा कर रहे हैं:

> जब उसने पाँचवीं मुहर खोली, तो मैंने वेदी के नीचे उनके प्राणों को देखा जो परमेश्वर के वचन तथा उसकी निरन्तर गवाही के कारण वध किए गए थे। वे उच्च स्वर से पुकार कर कह रहे थे, "हे पवित्र और सच्चे प्रभु, तू कब तक न्याय न करेगा? तथा कब तक पृथ्वी के निवासियों से हमारे रक्त का प्रतिशोध न लेगा?" उनमें से प्रत्येक को श्वेत चोगा दिया गया, और उनसे कहा गया, "थोड़ी देर तक और विश्राम करो, जब तक कि तुम्हारे संगी दासों और भाइयों की, जो तुम्हारे सदृश वध होने वाले हैं, गिनती पूरी न हो जाए। (प्रकाशितवाक्य 6:9-11)

यहाँ स्पष्ट रूप से शहीदों के प्राण अपनी मध्यवर्ती अवस्था में विश्राम कर रहे हैं। परन्तु यह विश्राम अचेतन निद्रा की अवस्था नहीं है। यह सचेतन विश्राम है, अर्थात् एक ऐसा विश्राम जिसमें वे बातचीत कर सकते हैं।

तुरन्त स्वर्ग में उपस्थित?

मध्यवर्ती अवस्था के विषय पर नए नियम का एक और महत्वपूर्ण स्थल लूका 23:43 है। यहाँ यीशु ने उस डाकू से बात की जो उसके पास वाले क्रूस पर था: "मैं तुझ से सच कहता हूँ, आज ही तू मेरे साथ स्वर्गलोक में होगा।"

मूल यूनानी भाषा में, हिन्दी के समान, इस वाक्य में कोई अल्प-विराम नहीं है। कुछ अनुवादों ने यीशु के शब्दों को ऐसे व्यक्त किया—"आज तू मेरे साथ होगा।" अर्थात्, डाकू से की गई प्रतिज्ञा यह थी कि वह ख्रीष्ट के साथ संगति का आनन्द उठाएगा, और कि वह संगति उसी दिन आरम्भ हो जायेगी।

प्राण निद्रा *(soul sleep)* के समर्थक विराम चिह्नों को भिन्न रीति से उपयोग करते हैं। वे वाक्य को इस प्रकार से लिखते हैं कि यीशु के शब्द इस प्रकार सुनाई दें: "आज मैं तुझ से कहता हूँ, तू मेरे साथ स्वर्गलोक में होगा।" इस विचार के अनुसार *आज* शब्द उस समय की ओर संकेत नहीं करता है जब डाकू यीशु के साथ स्वर्गलोक में होगा। वरन्, यह उस समय को दर्शाता है जब यीशु ने भविष्य में किसी अनिश्चित समय में पुनः भेंट करने की प्रतिज्ञा की थी।

यद्यपि वाक्य को इस प्रकार से लिखना व्याकरण के अनुसार सम्भव है, किन्तु सन्दर्भ से और साहित्य के नियमों के अनुसार यह सटीक नहीं है। यीशु के लिए यह कहना अनावश्यक होता कि वह डाकू से किसी और समय के विषय में बात कर रहा था। डाकू से यह कहना निरर्थक होता कि "आज" उस समय की ओर संकेत है जब वे दोनों वार्तालाप कर रहे थे। यदि उनके मध्य पहले यह वार्तालाप हुआ होता और यीशु ने कहा होता, "किसी दिन मैं तुम्हें कोई महत्वपूर्ण बात बताऊँगा, परन्तु आज सही समय नहीं है," तो यह उपयुक्त होता कि जब उस महत्वपूर्ण जानकारी को प्रकट करने का समय आया तो यीशु कहता: "ठीक है, आज वह दिन है जब मैं तुम्हें वह बात बताऊँगा जिसे मैंने पहले बताने से मना कर दिया था। आज मैं तुम्हें बताता हूँ कि भविष्य में किसी समय तुम मेरे साथ स्वर्गलोक में होगे।" परन्तु, इस प्रकार के वार्तालाप के लिए कोई प्रमाण नहीं है।

यह व्याख्या और अधिक संदिग्ध हो जाती है यदि हम इस कथन के समय यीशु की शारीरिक दशा पर ध्यान दें। वह क्रूसीकरण की पीड़ा के मध्य था, जब उसके प्रत्येक शब्द के लिए उसे पूरा प्रयास करना पड़ रहा था। यह असम्भाव्य प्रतीत होता है कि यीशु ने डाकू को यह बताने के लिए अपने श्वास को व्यर्थ में गँवाया होगा कि वह उससे तथाकथित "आज" के विषय में बात कर रहा है।

प्रथम दृष्टि में ही ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन वाक्य संरचना ही ठीक है। *आज* शब्द वास्तविक रूप से अर्थपूर्ण हो जाता है यदि हम समझें कि यीशु कह रहा है, "मैं तुझ से कहता हूँ, *आज* ही तू मेरे साथ स्वर्गलोक में होगा।" तब इन शब्दों का अर्थ है, "आज जिस दिन तुम मर रहे हो, इसी दिन जब तुम्हारे पास आशा छोड़ने के लिए अनेक कारण हैं—पृथ्वी पर तुम्हारे जीवन के अन्तिम दिन—आज ही के दिन तुम एक अति उत्तम अवस्था में प्रवेश करोगे जो तुम्हारी वर्तमान अवस्था से कहीं बढ़कर है। आज ही के दिन तुम स्वर्गलोक में प्रवेश करोगे।"

जब तक इसके विपक्ष में कोई दृढ़ बाइबलीय प्रमाण नहीं है, तब तक यही अनुवाद ठीक है।

इस प्रकार का कोई प्रमाण नहीं है। और वास्तव में, यह बात कि विश्वासी तुरन्त मध्यवर्ती अवस्था में प्रवेश करते हैं, शेष पवित्रशास्त्र के दृष्टिकोण से भी मेल खाता है।

पृथ्वी पर के जीवन से उत्तम

नया नियम हमें पूर्ण रूप से आश्वस्त करता है कि मध्यवर्ती अवस्था पृथ्वी पर के जीवन से उत्तम है। प्रेरित पौलुस घोषणा करता है:

> क्योंकि मैं यह जानता हूँ कि तुम्हारी प्रार्थनाओं और यीशु ख्रीष्ट के आत्मा की सहायता से इस कैद का प्रतिफल मेरा छुटकारा होगा। मेरी हार्दिक आशा और अभिलाषा यह है कि मैं किसी बात में लज्जित न होऊँ, परन्तु जैसे पूरे साहस से ख्रीष्ट की महिमा मेरी देह से सदा होती रही है वैसे ही अब भी हो, चाहे मैं जीवित रहूँ या मर जाऊँ। क्योंकि मेरे लिए जीवित रहना तो ख्रीष्ट और मरना लाभ है। परन्तु यदि सदेह जीवित रहूँ तो इसका अर्थ मेरे लिए फलदायी परिश्रम है; परन्तु मैं किस बात को चुनूँ यह नहीं जानता। मैं इन दोनों के बीच असमञ्जस में पड़ा हूँ। मेरी लालसा तो यह है कि कूच करके ख्रीष्ट के पास जा रहूँ, क्योंकि यह अति उत्तम है, परन्तु तुम्हारे कारण शरीर में जीवित रहना मेरे लिए अधिक आवश्यक है। (फिलिप्पियों 1:19-24)

पौलुस ने मृत्यु को *लाभ* कहा। हम प्रायः सोचते हैं कि मृत्यु *हानि* है। निश्चित रूप से, किसी प्रिय जन की मृत्यु में पीछे छूटे लोगों के लिए हानि सम्मिलित होती है। परन्तु उस जन के लिए जो इस संसार से स्वर्ग जाता है, मृत्यु लाभ है।

पौलुस ने इस संसार के जीवन को तुच्छ नहीं समझा था। उसने कहा कि वह पृथ्वी पर रहने की इच्छा और स्वर्ग जाने की इच्छा के बीच "असमञ्जस में पड़ा" था। जिस अन्तर को उसने इंगित किया वह था कि इस जीवन और स्वर्ग के मध्य का अन्तर अच्छे और बुरे का अन्तर नहीं था। तुलना तो अच्छे और उत्तम के बीच थी। ख्रीष्ट में यह जीवन अच्छा है। स्वर्ग में जीवन उत्तम है। फिर भी पौलुस ने बात को इससे आगे बढ़ाया। उसने घोषणा की कि कूच करके ख्रीष्ट के पास जाना *अति उत्तम* है (23 पद)। स्वर्ग जाने में केवल थोड़े से सुधार से कहीं बढ़कर सम्मिलित है। लाभ तो महान् है। स्वर्ग इस संसार के जीवन से अति उत्तम है।

यह बात पौलुस द्वारा कुरिन्थियों के लिए की गई तुलना के समान है:

क्योंकि हमारा पलभर का यह हल्का-सा क्लेश एक ऐसी चिरस्थायी महिमा उत्पन्न कर रहा है जो अतुल्य है। हमारी दृष्टि उन वस्तुओं पर नहीं जो दिखाई देती हैं, पर उन वस्तुओं पर है जो अदृश्य हैं, क्योंकि दिखाई देने वाली वस्तुएँ तो अल्पकालिक हैं, परन्तु अदृश्य वस्तुएँ चिरस्थायी हैं।

क्योंकि हम जानते हैं कि यदि हमारा पृथ्वी पर का तम्बू सदृश घर गिरा दिया जाए तो परमेश्वर से हमें स्वर्ग में ऐसा भवन मिलेगा जो हाथों से बना हुआ नहीं, परन्तु चिरस्थायी है। क्योंकि इस घर में तो हम कराहते और लालसा रखते हैं कि अपने स्वर्गीय भवन को पहिन लें और इसे पहिन कर हम नंगे न पाए जाएँ। सचमुच, जब तक हम इस तम्बू में हैं तो बोझ से दबे हुए कराहते हैं, क्योंकि हम वस्त्र उतारना नहीं, वरन् पहिनना चाहते हैं कि जो कुछ मरणशील है, वह जीवन द्वारा निगल लिया जाए। अब जिसने हमें इसी अभिप्राय के लिए तैयार किया है, वह परमेश्वर है। उसने हमें बयाने में आत्मा दिया है। (2 कुरिन्थियों 4:17-5:5)

यहाँ पौलुस ने अस्थायी और चिरस्थायी के मध्य, तथा अल्पकालिक और अनन्त के मध्य अन्तर को दिखाया।

देह का पुनरुत्थान

पौलुस ने मध्यवर्ती अवस्था से परे उस भविष्य के परमानन्द *(bliss)* की परम *(ultimate)* आशा की ओर भी देखा, अर्थात् मानव जीवन के तृतीय पड़ाव की ओर, जिसमें हमारी देहों का पुनरुत्थान सम्मिलित है। प्रेरितों के विश्वास वचन में यह पुष्टिकरण है "मैं विश्वास रखता हूँ . . . देह के पुनरुत्थान पर।" विश्वास के इस बिन्दु का ध्यान ख्रीष्ट की देह के पुनरुत्थान पर नहीं, वरन् हमारी देहों के पुनरुत्थान पर है। ख्रीष्ट का पुनरुत्थान हमारे पुनरुत्थान का अग्रगामी है। वह उन सब लोगों का प्रथम फल है जो पुनरुत्थान में सहभागी होंगे (1 कुरिन्थियों 15:20-23)।

पौलुस ने हमारी पुनरुत्थित देहों के विषय को 1 कुरिन्थियों 15 के प्रबल निष्कर्ष में समझाया: "परन्तु कोई कहेगा, "मृतक कैसे जिलाए जाते हैं? और वे किस प्रकार की देह में आते हैं?" हे मूर्ख! जो कुछ तू बोता है जब तक वह मर न जाए जिलाया नहीं जाता। और जो कुछ तू बोता है, तू वह देह नहीं बोता जो उत्पन्न होने वाली है, परन्तु निरा दाना, चाहे गेहूँ का या किसी और अनाज का। परन्तु परमेश्वर अपने इच्छानुसार उसे देह देता है, और हर एक बीज को उसकी विशेष देह" (1 कुरिन्थियों 15:35-38)।

पौलुस ने कृषि पर आधारित उपमा को प्रस्तुत किया। इस जीवन और पुनरुत्थान के जीवन में जिस परिवर्तन का हम अनुभव करते हैं वह एक बीज के समान है जो अंकुरित होता है। किसी बीज से जीवन उत्पन्न होने के लिए, पहले उसे गाड़ा जाना होगा। उसे सड़ना होगा। इससे पहले कि घाँस से फूल उगे, बीज सड़ता है। भूमि से उभरकर निकलने वाले पौधे की महिमा रोपे गए बीज से कहीं बढ़कर होती है।

प्रेरित ने अपनी उपमा को बनाए रखने के लिए विभिन्न प्रकार की देह और रूप की बात की जिनमें इस संसार में जीवन प्रकट होता है:

> सब शरीर एक समान नहीं, परन्तु मनुष्यों का शरीर एक प्रकार का है, पशुओं का दूसरे प्रकार का। पक्षियों का शरीर अन्य है, तो मछलियों का भिन्न प्रकार का। स्वर्गीय देह हैं और पार्थिव देह भी हैं, परन्तु स्वर्गीय देह का तेज और है तो पार्थिव देह का और। सूर्य का तेज और है, चाँद का तेज और, और फिर तारों का तेज भी और है, वरन् एक तारे का तेज दूसरे से भिन्न है। (1 कुरिन्थियों 15:39-41)।

पौलुस ने सृष्टि में पाए जाने वाली महिमा के बढ़ते हुए क्रम की एक श्रृंखला का सन्दर्भ प्रस्तुत किया। उसने एक ऐसी महिमा की बात की जो वर्तमान के लिए अदृश्यमान बनी रहती है। उसका तर्क कुछ इस प्रकार से है: सम्पूर्ण वास्तविकता के प्रति हमारी सीमित दृष्टि में हम जो कुछ अस्तित्व में है उसके एक छोटे से भाग की एक झलक मात्र देखते हैं। हम आत्मिक रूप से अदूरदर्शी हैं। यह बात सोचना अति अहंकारी पूर्ण होगी कि हमारी सीमित दृष्टि के द्वारा हम जीवन के सम्पूर्ण विस्तार को देख सकते हैं। यदि हम एक क्षण के लिए सोचें कि इस बड़ी सृष्टि के विषय में, जिसमें हम रहते हैं, हमारे पास कितना ज्ञान है, तो हम समझ पाते हैं कि हमारे अनुभव की सीमाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। सम्पूर्ण प्रकृति के विषय में हमारा अनुभव विशाल समुद्र में एक बूँद से भी कम है। और यदि हम सम्पूर्ण प्रकृति की परिपूर्णता को समझ भी जाते, तो यह हमें पारलौकिक जगत में झाँकने की अनुमति नहीं प्रदान करता। इससे हमें यह शिक्षा प्राप्त होती है: वास्तविकता के जिस भाग को हम समझ पाते हैं, वह यह स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है कि जीवन की विविधता उससे कहीं अधिक बढ़कर है जिसका हम अभी तक अनुभव कर चुके हैं।

इसके पश्चात्, पौलुस ने भिन्नता को दिखाया: "मृतकों का जी उठना भी ऐसा ही है। नश्वर देह बोई जाती है, अविनाशी देह जिलायी जाती है, अनादर के साथ बोई जाती है और महिमा के साथ जिलाई जाती है, निर्बल दशा में बोई जाती है और सामर्थ्य में जिलाई जाती है, स्वाभाविक दशा में

बोई जाती है और आत्मिक दशा में जिलाई जाती है। जबकि स्वाभाविक देह है तो आत्मिक देह भी है" (1 कुरिन्थियों 15:42-44)।

पार्थिव देह और पुनरुत्थित देह में भिन्नता सुस्पष्ट है। इसमें ये तत्व पाए जाते हैं:

स्वाभाविक देह	**पुनरुत्थित देह**
नश्वरता	*अविनाशी*
अनादर	*महिमा*
निर्बलता	*सामर्थ्य*
स्वाभाविक	*आत्मिक*

नश्वरता, अनादर और निर्बलता ऐसे गुण हैं जिनसे हम परिचित हैं। वे हमारे प्रतिदिन के अनुभव के स्वाभाविक भाग हैं। वे स्वाभाविक देहों के गुण हैं। पुनरुत्थान के समय इन गुणों के स्थान पर इनके विपरीत गुण आएँगे। अविनाशी, महिमा और सामर्थ्य आत्मिक देह के गुण हैं।

आत्मिक देह का स्वभाव कैसा होता है

आत्मिक देह वाक्याँश सुनने में अटपटा लगता है। हम प्रायः सोचते हैं कि आत्मा और देह पूर्णतः एक दूसरे के विपरीत हैं। परन्तु पौलुस केवल अपनी बात को रखने के लिए विरोधाभास का उपयोग नहीं कर रहा था। वह एक आत्मिक बनाए गई देह की बात कर रहा था जिसे उसकी स्वाभाविक सीमाओं से रूपान्तरित *(transform)* किया गया है। यह एक महिमान्वित देह है, एक ऐसी देह जो एक नए आयाम में जिलाई गई है।

आत्मिक देह के विषय में हमारे पास उपलब्ध एकमात्र वास्तविक संकेत यीशु की पुनरुत्थित देह का धुँधला चित्र है। हम जानते हैं कि पुनरुत्थान के पश्चात् यीशु की देह उस देह से भिन्न थी जो गाड़ी गई थी। उसके दैहिक पुनरुत्थान ने निरन्तरता *(continuity)* और अनिरन्तरता *(discontinuity)* दोनों को प्रकट किया। हम पढ़ते हैं कि लोगों को उसको पहचानने में कुछ कठिनाई हुई, परन्तु साथ ही लोगों ने उसे पहचाना भी। यीशु ने अपने चेलों के साथ जलपान किया। उसने थोमा को अपने क्रूसीकरण के चिह्न दिखाए। उसने उससे कहा: "अपनी उँगली यहाँ ला और मेरे हाथों को देख, और अपना हाथ बढ़ाकर मेरे पंजर में डाल और अविश्वासी नहीं, परन्तु विश्वासी

हो" (यूहन्ना 20:27)। थोमा ने यीशु के निर्देश का पालन करते हुए क्रूसीकरण के चिह्न को छुआ अथवा नहीं, यह सुसमाचार में वर्णित नहीं है, परन्तु उसके पास अवसर था कि वह ऐसा कर सकता था।

यूहन्ना ने यीशु के विषय में एक रहस्यमय कथन भी लिखा जिसके कारण उसके पुनरुत्थित देह के विषय में बहुत सारी अटकलें भी लगाईं गईं: "आठ दिन के पश्चात् उसके चेले फिर घर के भीतर थे और थोमा उनके साथ था। जब द्वार बन्द थे, तब यीशु आया और उनके मध्य खड़े होकर कहा, 'तुम्हें शान्ति मिले।'" (यूहन्ना 20:26)

यूहन्ना ने यह वाक्याँश क्यों लिखा "जब द्वार बन्द थे"? क्या यह वाक्याँश इसलिए जोड़ा गया कि हमें चेलों के विषय में कुछ बताया जाए या फिर इसलिए कि हमें यीशु की पुनरुत्थित देह के विषय में कुछ बताया जाए? देखने में तो यह एक अनावश्यक बात प्रतीत होती है। सम्भवतः यूहन्ना केवल इस बात पर बल देना चाहता था कि क्रूसीकरण के पश्चात् चेले भय की अवस्था में थे। ऐसा प्रतीत होता है कि वे द्वार के भीतर बहुत समय व्यतीत कर रहे थे। 19 पद में उसने कहा, "जब वहाँ के द्वार जहाँ चेले थे, यहूदियों के डर के मारे बन्द थे, तब यीशु आकर उनके मध्य खड़ा हो गया।"

हम उस दृश्य की पुनर्रचना सम्भवतः इस प्रकार से कर सकते हैं: भय की स्थिति में चेले द्वार बन्द करके एक साथ बैठे हुए थे। जब उनका ध्यान भय और विस्मय पर लगा हुआ था, यीशु उनके मिलने के स्थान में आया, उसने शान्ति से द्वार को खोलने के पश्चात् प्रवेश करके उनसे बात की। इस परिदृश्य में बन्द द्वार हमें यीशु की पुनरुत्थित देह के विषय में केवल इतना ही बताता है कि वह चल-फिर सकता था और द्वार खोल सकता था।

दूसरी ओर, सम्भवतः यूहन्ना कह रहा था कि यीशु बिना द्वार को खोले कमरे के मध्य प्रकट हो गया। इसका अर्थ यह है कि पुनरुत्थित देह में क्षमता थी कि वह ठोस वस्तुओं से बिना बाधित हुए चल-फिर सकती थी। स्थल में यह बात स्पष्ट शब्दों में नहीं लिखी गई है। स्थल को इस रीति से समझना सम्भव है, परन्तु यह किसी भी रीति से स्थल का अनिवार्य अर्थ नहीं है। यह अनुमान ही बना रहता है।

जो बात निश्चित है वह यह है कि पौलुस ने यीशु को हमारे पुनरुत्थित देहों के स्वभाव के आदर्श के रूप में देखा:

> इसलिए यह भी लिखा है, ''पहला मनुष्य आदम, जीवित प्राणी बना,'' और अन्तिम आदम जीवनदायक आत्मा। अतः पहले आत्मिक नहीं वरन् स्वाभाविक था, और तब आत्मिक आया। पहला मनुष्य पृथ्वी से है अर्थात् पार्थिव, दूसरा मनुष्य स्वर्ग से है। जैसे वह पार्थिव है, वैसे ही वे

> भी हैं जो पार्थिव हैं, और जैसा वह स्वर्गीय है, वैसे ही वे भी हैं जो स्वर्गीय हैं। और जैसे हमने उस पार्थिव का रूप धारण किया है, वैसे ही उस स्वर्गीय का भी रूप धारण करेंगे। (1 कुरिन्थियों 15:45-49)

हम सब मनुष्य आदम के पार्थिव स्वभाव में सहभागी होते हैं। हम पार्थिव सन्तान हैं। हमारी देह पृथ्वी से सम्बन्धित सब प्रकार की पार्थिव निर्बलताओं से ग्रसित होती हैं। हमारी पुनरुत्थित देह स्वर्ग में बनाए गए तम्बू होंगे। स्वर्गीय देह में कर्क रोग या हृदय के रोग हो जाने की कोई सम्भावना नहीं होगी। पतन के शाप को हटा दिया जाएगा। हम नए आदम अर्थात् स्वर्गीय मनुष्य के स्वरूप और समानता को धारण करेंगे। फिर भी निरन्तरता होगी। हम तब भी पुरुष और स्त्री होंगे। हमारी व्यक्तिगत पहचान बनी रहेंगी। हम इस जीवनकाल के लोगों के रूप में पहचाने जा सकेंगे। परन्तु जब स्वर्गीय रूप द्वारा पार्थिव देह के बन्धन तोड़े जाएँगे तो अनिरन्तरता भी होगी।

निरन्तरता और अनिरन्तरता

स्वर्ग के विषय में अटकले लगाते समय हम एक विकट समस्या का सामना करते हैं और वह है पहचाने जाने का प्रश्न। हम लोगों को उनकी शारीरिक विशेषताओं के द्वारा पहचानते हैं। आयु और भार सबसे प्रत्यक्ष विशेषताएँ होती हैं। क्या शिशुपन में मरने वाला व्यक्ति सर्वदा के लिए शिशु के रूप में होगा? क्या वृद्ध लोगों के मुखों पर झुर्रियाँ होंगी? क्या मैं मोटा होऊँगा या पतला, लम्बा होऊँगा या नाटा?

इस प्रकार के प्रश्नों को पूछने का अर्थ है (जिन्हें पूछने से हम स्वयं को रोक नहीं पाते हैं) अनिरन्तरता के तत्वों के विषय में हमारी समझ की सीमाओं से भिड़ना। मेरा मानना है (और मैं इतना ही कह रहा हूँ) कि जब हम पार्थिव जगत को छोड़कर अपनी महिमामय अवस्था में प्रवेश करेंगे तो ये सब प्रश्न हमें अप्रासंगिक प्रतीत होंगे।

पौलुस ने बल देकर कहा कि यद्यपि हम वर्तमान की अपनी व्यक्तिगत पहचान के साथ निरन्तरता को बनाए रखेंगे, हम फिर भी रूपान्तरण *(transformation)* को अनुभव करेंगे।

> हे भाइयो, मैं यह कहता हूँ कि माँस और लहू परमेश्वर के राज्य के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते, और न विनाश, अविनाशी का अधिकारी हो सकता है। देखो, मैं तुम्हें एक रहस्य की बात बताता हूँ: हम सब सोएँगे नहीं परन्तु सब के सब बदल जाएँगे। यह एक क्षण में, पलक मारते ही,

> अन्तिम तुरही के बजाए जाने के समय होगा। क्योंकि तुरही बजेगी, मृतक अविनाशी दशा में जिलाए जाएँगे और हम बदल जाएँगे। क्योंकि इस नाशमान का अविनाशी को और मरणशील का अमरता को पहिनना अवश्य है परन्तु जब यह नाशमान अविनाश को पहन लेगा और यह मरणशील अमरता को पहन लेगा, तो यह लिखा हुआ वचन पूरा हो जाएगा: ''मृत्यु को विजय ने निगल लिया है।" (1 कुरिन्थियों 15:50-54)

विनाश का सम्बन्ध मृत्यु की प्रक्रिया से है। इस अर्थ में नाशमान का तात्पर्य नैतिक पतन से नहीं है। यह सम्बन्ध शरीर के पतन से है। पतन और क्षय की प्रक्रिया का अविनाशी अवस्था से कोई सम्बन्ध नहीं है। जो बात शारीरिक विनाश से स्वतन्त्र है, उसे सब प्रकार के पतन और क्षय से छूटना होगा। इसका अर्थ है कि अविनाशी अवस्था में वृद्धावस्था, झुर्रियाँ, दाने और रोग के लिए कोई स्थान नहीं है। न केवल मृत्यु वरन् मृत्यु के सभी साथियों को भी पुनरुत्थित देह द्वारा हराया जाएगा।

अध्याय दस

आने वाली बातों का दर्शन

पवित्रशास्त्र में हमें जो मरणोत्तर जीवन का सबसे ज्वलंत *(vivid)* और प्रभावशाली वर्णन मिलता है, वह यूहन्ना के प्रकाशितवाक्य के अन्त में है। यूहन्ना सौभाग्यशाली था कि उसने आत्मा में भविष्य का एक भव्य दर्शन देखा। यूहन्ना के प्रभावशाली दर्शन का चरमोत्कर्ष नए आकाश और नई पृथ्वी के अनावरण में पाया जाता है: "तब मैंने नया आकाश और नई पृथ्वी को देखा क्योंकि पहला आकाश और पहली पृथ्वी मिट गई थी, और कोई समुद्र भी न था" (प्रकाशितवाक्य 21:1)।

यहाँ हम संक्षेप में दुःख उठा रही कलीसिया के अन्तिम लक्ष्य को, तथा छुटकारे के लिए परमेश्वर की सम्पूर्ण योजना के चरमोत्कर्ष को देखते हैं। सृष्टि का भविष्य नए आकाश और नई पृथ्वी के प्रकटीकरण में पाया जाता है।

हमें बताया गया है कि पहला आकाश और पहली पृथ्वी का अन्त होगा। इसका क्या अर्थ है? व्याख्याकार इस प्रश्न पर एकमत नहीं हैं। कुछ लोग पहली सृष्टि के मिटाए जाने को पतित संसार पर परमेश्वर के न्याय के रूप में देखते हैं। वे विश्वास करते हैं कि परमेश्वर के प्रकोप के द्वारा पुरानी पद्धति का विनाश होगा। फिर सृष्टि के नए कार्य के द्वारा पुरानी पद्धति का स्थान नई पद्धति ले लेगी। परमेश्वर कुछ नहीं में से नई पद्धति को उत्पन्न करेगा।

इस विषय पर दूसरा विचार, और जो मुझे भी ठीक लगता है, यह है कि नई पद्धति में कुछ नहीं

से नई सृष्टि उत्पन्न नहीं होगी, वरन् पुरानी पद्धति का *नवीकरण* होगा। इसकी नवीनता पर परमेश्वर द्वारा किए गए छुटकारे की छाप होगी। पवित्रशास्त्र प्रायः बात करता है कि सम्पूर्ण सृष्टि छुटकारे के अन्तिम कार्य की प्रतीक्षा कर रही है। किसी वस्तु को पूर्णतः नाश करके उसके स्थान पर पूर्णतः नई वस्तु की सृष्टि करना, छुटकारे का कार्य नहीं है। छुड़ाने का अर्थ है किसी ऐसी वस्तु को बचाना जो खो जाने के आसन्न खतरे में है। नवीकरण मौलिक हो सकता है। उसमें प्रज्वलन द्वारा शुद्धिकरण सम्मिलित हो सकता है, परन्तु शुद्धिकरण का कार्य अन्ततः विनाश करने के स्थान पर छुड़ाता है। नया आकाश और नई पृथ्वी को शुद्ध किया जाएगा। नई पद्धति में बुराई का कोई स्थान नहीं होगा।

अव्यवस्थित समुद्र की अनुपस्थिति

नया आकाश और नई पृथ्वी के स्वभाव का एक संकेत इन गुप्त शब्दों में पाया जाता है, "और कोई समुद्र भी न था।" जिन लोगों को समुद्र तट और उसका सौन्दर्य और मनोरंजन अच्छा लगता है, उन्हें ऐसी नई पृथ्वी की कल्पना करना विचित्र लग सकता है जिसमें समुद्र नहीं है। परन्तु प्राचीन यहूदियों के लिए, बात कुछ और ही थी। यहूदी साहित्य में समुद्र को प्रायः अशुभ, अहितकारी और डराने, धमकाने वाली बातों के चित्रण के रूप में उपयोग किया जाता था। प्रकाशितवाक्य की पुस्तक में इससे पहले हम पशु को समुद्र से निकलते हुए देखते हैं (प्रकाशितवाक्य 13)। उसी प्रकार शामी *(Semitic)* मिथ्याओं में प्रायः आदिकालीन *(primordial)* समुद्र के विशाल जन्तु की बात होती है जो अन्धकारमय अव्यवस्था का प्रतीक है। बाबुल की तियामत *(Tiamat)* देवी इस बात का एक उदाहरण है।

यहूदी मानसिकता में नदी, सोता, या झरना भलाई के लिए सकारात्मक चिह्न थे। यह मरुस्थलीय वातावरण के लिए स्वाभाविक था जहाँ सोता ही स्वयं जीवन था। यदि हम पलिस्तीन का मानचित्र देखें, तो हम देखते हैं कि यरदन नदी उस भूमि के जीवन के लिए कितनी महत्वपूर्ण है। वह एक निर्जल और सूखी भूमि के मध्य एक पट्टी के समान है जो उत्तर में गलील के समुद्र को दक्षिण के मृत सागर से जोड़ती है।

पश्चिमी पलिस्तीन के भूमध्यसागरीय तट पर पथरीली रेती और बहिर्विष्ट पहाड़ियाँ पाई जाती है। प्राचीन इब्री लोगों ने व्यापार के लिए समुद्र में मार्ग विकसित नहीं किया क्योंकि वहाँ का भूभाग नौचालन के लिए उपयुक्त नहीं है। उनके लिए समुद्र का अर्थ था: समस्या। भूमध्यसागर से प्रचण्ड आँधियाँ आती थीं।

हम भजन 46 में इस विरोधात्मक चित्रण को देखते हैं। भजनकार लिखता है: "परमेश्वर

हमारा शरणस्थान और बल है, संकट के समय तत्पर सहायक। इसलिए हम नहीं डरेंगे, चाहे पृथ्वी उलट जाए, और पर्वत समुद्र-तल में जा पड़े, चाहे समुद्र गरजे और फेन उठाए, और उसके उमड़ने से पर्वत काँप उठे" (1-3 पद)। फिर वह जोड़ता है, "एक नदी है जिसकी धाराएँ परमेश्वर के नगर को, अर्थात् परमप्रधान के पवित्र निवासस्थान को हर्षित करती हैं" (4 पद)।

मैं केन्द्रीय फ्लॉरिडा में रहता हूँ। हमारे क्षेत्र को कभी-कभी "अमरीका की बिजली राजधानी" कहा जाता है। ग्रीष्मकाल में बिजली की आँधियाँ आती हैं। मेरे नाती-पोते प्रायः आँधियों के गर्जन के कारण भयभीत हो जाते हैं। उनकी कल्पना के अनुसार स्वर्ग में उस प्रकार के गर्जन निश्चय ही नहीं होंगे।

परन्तु यहूदी लोग आँधियों के साथ-साथ समुद्र से आने वाली अन्य समस्याओं के कारण भी डरते थे। उनके पारम्परिक शत्रु, जिन्होंने बारम्बार उन पर आक्रमण किया, समुद्र तट पर रहने वाला देश था। पलिश्ती लोग समुद्र की दिशा से आते थे।

यहूदी लोग एक ऐसे नए संसार की ओर देखते थे जहाँ समुद्र द्वारा चित्रित बुराइयाँ नहीं होंगे। नई पृथ्वी में जल होगा। उसमें नदी होगी। उस में जीवन-देने-वाले सोते होंगे। परन्तु वहाँ समुद्र नहीं होगा।

छुड़ाई गई नगरी

यूहन्ना ने आगे बताया, "फिर मैंने पवित्र नगरी, नए यरूशलेम को परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से उतरते देखा; वह ऐसी सजाई गई थी जैसी दुल्हिन अपने पति के लिए श्रृंगार किए हो" (प्रकाशितवाक्य 21:2)। नई पद्धति का शिरोबिन्दु *(zenith)* तब होता है जब परमेश्वर की नगरी, अर्थात् छुड़ाई गई सिय्योन, अर्थात् स्वर्ग से उतरने वाले यरूशलेम का आगमन होता है।

यहूदी साहित्य में नगर का चित्रण मिश्रित *(ambivalent)* है। नगर का चित्रण कभी नकारात्मक है और कभी सकारात्मक है। एक ओर यहूदी लोग घुमन्तु लोग थे। वे एक चरागाह से दूसरे चरागाह की ओर जाते थे। वे तम्बू में रहने वाले लोग थे। इस्राएल के परमेश्वर की आराधना सबसे पहले तम्बू में की गई, अर्थात् मिलाप वाले तम्बू में।

फिर भी इस्राएल के लोग स्थिरता की, अर्थात् स्थायित्व की लालसा करते थे। जब दाऊद और सुलैमान के शासन के समय मिलाप वाले तम्बू के स्थान पर भव्य मन्दिर को स्थापित किया गया, तो लोगों ने आनन्द मनाया। वे कुलपिता अब्राहम के समान थे, जिसके विषय में कहा गया है: "विश्वास ही से [अब्राहम] प्रतिज्ञा के देश में परदेशी होकर रहा, अर्थात् परदेश में इसहाक और याकूब के

साथ, जो उसी के समान प्रतिज्ञा के उत्तराधिकारी थे, तम्बुओं में रहा। *वह उस स्थिर नींव वाले नगर की प्रतीक्षा में था* जिस का रचने और बनाने वाला परमेश्वर है" (इब्रानियों 11:9-10)।

नए नियम में ख्रीष्ट को आने वाली अच्छी बातों के महान् महायाजक के रूप में प्रस्तुत किया जाता है जिसने "और भी बड़े तथा सिद्ध तम्बू में से होकर प्रवेश किया जो हाथ का बनाया हुआ अर्थात् इस सृष्टि का नहीं" (इब्रानियों 9:11)।

दूसरी ओर, नगर का चित्रण यहूदी साहित्य में तब नकारात्मक था, जब यह मनुष्य द्वारा स्वयं के लिए एक स्मारक बनाने के अहंकारी प्रयासों का प्रतिनिधित्व करता था। यह महत्वपूर्ण है कि उत्पत्ति का लेखक पहले हत्यारे कैन के कार्यों में वर्णित करता है कि उसने एक नगर बनाया: "तब कैन, यहोवा की उपस्थिति से निकल गया, और अदन के पूरब में नोद नामक देश में जाकर बस गया। और कैन अपनी पत्नी के पास गया, और वह गर्भवती हुई, तथा उसने हनोक को जन्म दिया। और कैन ने एक नगर बसाया और अपने पुत्र के नाम पर उस नगर का नाम हनोक रखा" (उत्पत्ति 4:16-17)। कैन का नगर अपवित्र था, जैसा कि सदोम और अमोरा के नगर भी अपवित्र थे।

यहूदी आशा के लिए यरूशलेम केन्द्रीय बिन्दु बन गया। परमेश्वर ने प्रतिज्ञा की कि वह वहाँ, अर्थात् सिय्योन पर्वत पर, उनके साथ निवास करेगा। मन्दिर को वहीं बनाया गया और लोग तीर्थ-यात्रा करने वहीं जाते थे। मसीहा-राजा को यरूशलेम जाकर ही मरना था।

इस्राएल को कई नरसंहारों का सामना करना पड़ा है, और सबसे बड़ा नरसंहार 70 ईसवी में तब हुआ जब रोमियों ने पवित्र नगरी का पूर्णतः विनाश किया और यहूदी लोग विश्व भर में तितर-बितर हो गए। कई शताब्दियों के लिए—आज तक भी—जब यहूदियों ने फ़सह का पर्व मनाया, तो उन्होंने एक दूसरे को अपनी हृदयस्पर्शी आशा सुनाई: "अगले वर्ष हम यरूशलेम में इसे मनाएँगे।"

इस्राएल को यहोवा की दुल्हन कहा गया है, ठीक वैसे ही जैसे नए नियम में कलीसिया को ख्रीष्ट की दुल्हन कहा जाता है। यूहन्ना के दर्शन में, नए यरूशलेम के रूप को, विवाह समारोह में दुल्हन के भव्य रूप के समान दिखाया जाता है। जब नया यरूशलेम प्रकट होगा, मनुष्य का नगर मिट जाएगा और परमेश्वर की नगरी को स्थापित किया जाएगा।

इस नगरी के आगमन की घोषणा को एक ऊँचे स्वर ने किया: "तब मैंने सिंहासन से एक ऊँची आवाज़ को यह कहते सुना, 'देखो, परमेश्वर का डेरा मनुष्यों के बीच में है, वह उनके मध्य निवास करेगा। वे उसके लोग होंगे तथा परमेश्वर स्वयं उनके मध्य रहेगा'" (प्रकाशितवाक्य 21:3)।

नए यरूशलेम की मुख्य विशेषता परमेश्वर की *निकटतम उपस्थिति (immediate*

presence) होगी। परमेश्वर अपने लोगों के मध्य होगा। वह उनके साथ निवास करेगा। परमेश्वर को फिर कभी दूर, तथा प्रतिदिन के अनुभव से अलग नहीं समझा जाएगा। वह अपने तम्बू को अपने लोगों के मध्य लगाएगा।

पुराने नियम में यहेजकेल के दर्शन के अन्तिम शब्द पवित्र नगरी के सारतत्व को व्यक्त करते हैं: "नगर का घेरा अठ्ठारह हजार हाथ हो, और उस दिन से नगर का नाम 'यहोवा वहाँ है' *(THE LORD IS THERE)* होगा" (यहेजकेल 48:35)।

जब यूहन्ना ने अपने सुसमाचार की प्रस्तावना को लिखा, उसने लोगोस *(Logos)* की, अर्थात् परमेश्वर के वचन की बात की जो आरम्भ में परमेश्वर के साथ था और जो परमेश्वर था। उसने लिखा: "और वचन जो अनुग्रह और सच्चाई से परिपूर्ण था, देहधारी हुआ, और हमारे बीच में निवास किया, और हमने उसकी ऐसी महिमा देखी जैसी पिता के एकलौते की महिमा" (यूहन्ना 1:14)।

जब यूहन्ना ने देहधारण के विषय में बात की, उसने कहा कि वचन ने हमारे मध्य "निवास किया।" उसने जिस शब्द का उपयोग किया उसका अर्थ है, "अपना तम्बू खड़ा किया" या "तम्बू लगाया।" यीशु को इम्मानुएल कहा गया है, जिसका अर्थ है "परमेश्वर हमारे साथ है।" देहधारी परमेश्वर का पहली बार यरूशलेम आना थोड़े समय के लिए था। वह यरूशलेम आया और फिर वह यरूशलेम से चला गया। परन्तु वह नए यरूशलेम का स्थायी निवासी होगा। वह कभी भी उस पवित्र नगरी से विदाई नहीं लेगा। उस स्थान से प्रस्थान का कोई बिन्दु नहीं होगा।

सब शोक का अन्त

नए आकाश और नई पृथ्वी के वर्णन को आगे बढ़ाते हुए यूहन्ना ने लिखा: "और वह उनकी आँखों से सब आँसू पोंछ डालेगा; फिर न कोई मृत्यु रहेगी न कोई शोक, न विलाप और न पीड़ा रहेगी। पहिली बातें बीत गई हैं" (प्रकाशितवाक्य 21:4)।

किसी व्यक्ति की आँखों से आँसू पोंछने का कार्य मनुष्यों के अनुभवों में से एक अति अतरंग अनुभव है। यह करुणा का एक स्पर्शनीय कार्य है। यह सांकेतिक संचार का एक भेदक रूप है। यह सान्त्वना का स्पर्श है।

जब मैं छोटा बालक था, तब मेरे चोटिल होने पर मेरी माता सर्वदा मुझसे कोमलता से व्यवहार करती थी। जब मेरी आँखों से आँसू निकलते थे और मैं फूट फूटकर रोता था, मेरी माता अपना रुमाल लेकर मेरे गाल से आँसूओं को पोंछती थी। वह प्रायः "आँसूओं को चूमकर हटाती थी।"

मेरी माता ने कई बार मेरे आँसू पोंछे। उनकी सान्त्वना उस समय के लिए कार्यकारी होती थी और मेरे सिसकना थम जाता था। पर मैं फिर से चोट खाता था और मेरे आँसू फिर से बहने लग जाते थे। आज, कई वर्षों पश्चात् भी, मैं अभी भी आँसू बहाता हूँ। अभी भी मेरे पास रोने की क्षमता है।

परन्तु जब परमेश्वर आँसू पोंछेगा, तो वह सब रोने का अन्त होगा। यूहन्ना ने घोषणा की कि नई पृथ्वी पर कोई रोना नहीं होगा। जब परमेश्वर हमारी आँखों को सब प्रकार के दुःख भरे रोने से सुखाएगा, तो उसकी सान्त्वना चिरस्थायी होगी। दुःख भरे आँसूओं के लिए कोई कारण नहीं होगा। मृत्यु नहीं होगी। कोई भी दुःख या पीड़ा नहीं होगी। ये कठिनाइयाँ उन पहली बातों का भाग है जो बीत जाएँगी।

नए यरूशलेम में कब्रिस्तान नहीं होंगे। वहाँ शवालय, अन्त्येष्टि कक्ष, चिकित्सालय और पीड़ानाशक औषधि नहीं होंगी। ये सभी बातें इस संसार की यात्रा के भाग हैं। ये सब बीत जाएँगी।

यूहन्ना ने लिखा: "तब जो सिंहासन पर बैठा था, उसने कहा, 'देख, मैं सब कुछ नया कर देता हूँ!' फिर उसने कहा, 'लिख, क्योंकि ये वचन विश्वसनीय और सत्य हैं'" (प्रकाशितवाक्य 21:5)।

यदि कोई घोषणा अविश्वसनीय सुनाई पड़ती है तो वह यह है कि एक ऐसा स्थान है जहाँ से पीड़ा, दुःख, आँसू और मृत्यु को निकाल दिया गया है। ऐसे स्थान के विचार मात्र से हृदय काँप जाता है। हमें इसकी कल्पना करने से भी डर लगता है, क्योंकि कहीं ऐसा न हो कि हम स्वयं को निराशा के लिए तैयार कर रहे हों। परन्तु परमेश्वर के सिंहासन से प्रबल वाणी ने स्पष्ट रूप से यूहन्ना कहा, "लिख, क्योंकि ये वचन विश्वसनीय और सत्य हैं।"

इन शब्दों को "सत्य" कहने का अर्थ है कि वे वास्तविकता से मेल खाती हैं। ये काल्पनिक बातों की खोखली प्रतिज्ञाएँ नहीं हैं। वे "विश्वसनीय" हैं का अर्थ है कि हताशा के भय के बिना हम उन पर भरोसा कर सकते हैं।

यूहन्ना ने इससे अधिक भी सुना: "उसने मुझ से फिर कहा, 'हो चुका। मैं अल्फा और ओमेगा, आदि और अन्त हूँ। जो प्यासा हो उसे मैं जीवन के जल के सोते से मुफ्त पिलाऊँगा'" (प्रकाशितवाक्य 21:6)।

यूनानी वर्णमाला अल्फा अक्षर से आरम्भ होती है और ओमेगा अक्षर के साथ अन्त होती है, जो हिन्दी के 'अ' और 'ज्ञ' के समान हैं। ख्रीष्ट ने यूहन्ना पर प्रकट किया कि वह सब बातों का आरम्भ और अन्त है। हम सृष्टि के विजय के विजयी सुर को सुनते हैं। यहाँ अर्थहीन दोहराव के अनन्त चक्र का कोई विचार नहीं है। मानव इतिहास का एक लक्ष्य, तथा एक नियति है। सब बातों

की सृष्टि करने वाला सब बातों को एक अर्थपूर्ण अन्त तक लाता है। व्यर्थता और अर्थहीनता उस जन के प्रकाश में भगाए जाते हैं जो अल्फा और ओमेगा है।

हमारे विश्वास का कर्ता और सिद्ध करने वाला सब प्यासे लोगों के लिए तृप्त करने वाले जल की प्रतिज्ञा करता है। पवित्रशास्त्र में प्यास का प्रभावशाली चित्रण बार-बार दिखाई देता है। भजनकार ने लिखा था: "जैसे हरिणी नदी के जल के लिए हाँफती है, वैसे ही, हे परमेश्वर, मैं तेरे लिए हाँफता हूँ। मैं परमेश्वर के लिए, हाँ, जीवित परमेश्वर के लिए प्यासा हूँ" (भजन 42:1-2)। परमेश्वर के लिए मानव की लालसा को उस हरिणी के जैसे दिखाया गया है जो जल की खोज के कारण हाँफती है। यह भावना तीव्र है; प्यास अत्यधिक है। इसी प्रकार के व्यक्ति के विषय में, जिसमें परमेश्वर के लिए तीव्र तड़प है, यीशु ने इस आशीर्वाद की घोषणा की: "धन्य हैं वे जो धार्मिकता के भूखे और प्यासे हैं, क्योंकि वे तृप्त किए जाएँगे" (मत्ती 5:6)।

यीशु के शब्द सामरी स्त्री के साथ कुएँ के पास हुए उसके वार्तालाप का स्मरण दिलाते हैं: "यदि तू परमेश्वर के वरदान को जानती और यह भी कि वह कौन है जो तुझ से कहता है, 'मुझे पानी पिला,' तो तू उस से माँगती, और वह तुझे जीवन का जल देता। . . . जो कोई उस जल में से पीएगा जो मैं उसे दूँगा, अनन्तकाल तक प्यासा न होगा, परन्तु वह जल जो मैं उसे दूँगा उसमें अनन्त जीवन के लिए उमण्डने वाला जल का सोता बन जाएगा" (यूहन्ना 4:10-14)।

ये प्रतिज्ञाएँ क्रूस पर यीशु के इन शब्दों के साथ उत्कर्ष पर पहुँचती हैं: "पूरा हुआ!" उसने अपना कार्य पूरा किया था और विजय सुनिश्चित की गई थी।

फिर यूहन्ना ने लिखा: "जो जय प्राप्त करे वह इन बातों का वारिस होगा, और मैं उसका परमेश्वर होऊँगा और वह मेरा पुत्र होगा। परन्तु डरपोकों, अविश्वासियों, घृणितों, हत्यारों, व्यभिचारियों जादूगरों, मूर्तिपूजकों और सब झूठों का भाग उस झील में होगा जो आग और गन्धक से जलती रहती है। यह दूसरी मृत्यु है" (प्रकाशितवाक्य 21:7-8)।

इस खण्ड में गम्भीर चेतावनी सुनाई देती है। यह ख्रीष्ट द्वारा अन्तिम न्याय के कार्य की बात करती है। विश्वासयोग्य लोगों के लिए प्रतिज्ञा की जाती है कि वे ख्रीष्ट के उत्तराधिकार में पूर्ण रूप से सहभागी होंगे। जब हमें परमेश्वर के परिवार में लेपालक सन्तान बनाया जाता है तो हमें ख्रीष्ट के सह-उत्तराधिकारी कहा गया है। परन्तु जो लोग ख्रीष्ट के प्रति अपने विरोध में बने रहते हैं, वे जो स्वयं को ख्रीष्ट-विरोधी के साथ जोड़ते हैं, उन्हें स्वर्ग के परम-सुख से हटाया जाएगा और उन्हें अग्नि की झील में डाल दिया जाएगा। लिखे गए पापों की सूची (झूठ, मूर्तिपूजा, इत्यादि) ख्रीष्ट-विरोधी के अनुयायियों के लक्षण का सारांश है जो हठपूर्वक ख्रीष्ट के प्रति निष्ठा नहीं दिखाएँगे।

पवित्र नगरी की चमक

जैसे-जैसे वह अपने दर्शन का वर्णन आगे बताता जाता है, वैसे-वैसे यूहन्ना नए यरूशलेम की और अधिक विशेषताओं को प्रकट करता जाता है:

> फिर जिन सात दूतों के पास सात अन्तिम विपत्तियों से भरे सात कटोरे थे, उनमें से एक ने मेरे पास आकर कहा, "यहाँ आ, मैं तुझे दुल्हन अर्थात् मेमने की पत्नी दिखाऊँगा।"
>
> तब वह मुझे आत्मा में एक विशाल और ऊँचे पर्वत पर ले गया और उसने पवित्र नगरी यरूशलेम को स्वर्ग में से परमेश्वर के पास से नीचे उतरते हुए दिखाया। परमेश्वर की महिमा उसमें थी। उसकी चमक अत्यन्त बहुमूल्य पत्थर अर्थात् उस यशब के समान थी जो स्फटिक सदृश उज्ज्वल था। (प्रकाशितवाक्य 21:9-11)

जिस स्वर्गदूत ने यूहन्ना को पहले महान् वेश्या, अर्थात् बाबुल नगर को दिखाया था (17 अध्याय), वह उसे पूर्णतः विपरीत नगर को दिखाने ले गया। पवित्र नगरी परमेश्वर की ज्योतिर्मय महिमा से भरपूर थी। उससे स्तब्धकारी प्रतिभा चमक रही थी। विशेषकर उसकी ज्योति को यशब पत्थर के समान बताया गया है।

प्रकाशितवाक्य के आरम्भिक अध्यायों में सिंहासन पर विराजमान ईश्वरीय जन का वर्णन इन शब्दों में किया गया: "वह जो बैठा था यशब और माणिक्य के सदृश दिखाई देता था" (प्रकाशितवाक्य 4:3)। यशब पत्थर पीले या लाल या हरे हो सकते हैं। वे पारभासी *(translucent)* भी हो सकते हैं। माणिक्य लाल था। नगरी, जो प्रकाश के समान पारदर्शी और लालिमा लिए हुई थी, परमेश्वर की शकीना महिमा *(shekinah glory)* को प्रतिबिम्बित करते हुए प्रतीत हो रही थी।

यूहन्ना ने आगे बताया: "उसकी शहरपनाह विशाल तथा ऊँची थी, जिसके बारह फाटक थे जिन पर बारह स्वर्गदूत थे। उन फाटकों पर इस्राएलियों के बारह गोत्रों के नाम लिखे थे। पूर्व की ओर तीन फाटक, उत्तर की ओर तीन फाटक, दक्षिण की ओर तीन फाटक, और पश्चिम की ओर तीन फाटक थे" (प्रकाशितवाक्य 21:12-13)।

प्राचीन जगत में, किसी नगर की सामर्थ्य और प्रताप को उसकी शहरपनाह के आधार पर आँका जाता था। शहरपनाह न केवल नगर की सीमाओं को रेखांकित करती थी, वरन् वे शत्रु के आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षा का एक अत्यावश्यक तत्व होती थी। प्राचीन युद्ध में घेराबन्दी और अवक्षेपक *(catapult)* का उपयोग किया जाता था जिससे कि शहरपनाह की सुरक्षा को निरस्त किया जाए। आज यरूशलेम के पुराने नगर में जाने वाले पर्यटक तुरन्त ही उसकी शहरपनाह से

प्रभावित होते हैं। बड़े पत्थरों से निर्मित, यरूशलेम की शहरपनाह पचहत्तर फुट ऊँची खड़ी है। यह दृश्य वर्तमान के पर्यटक के लिए कितना भी स्तब्धकारी क्यों न हो, इससे भी अद्भुत तथ्य यह है कि समय के साथ भूक्षरण ने पचहत्तर फुट और छिपा दिया है तथा वह भूमिगत है।

किन्तु पृथ्वी पर के यरूशलेम की शहरपनाह नए यरूशलेम की तुलना में फीकी पड़ जाएगी। यह शहरपनाह विशाल और ऊँची होगी, यह दिखाते हुए कि भीतर रहने वाले सभी लोग पूर्णतः सुरक्षित हैं। बिना परमेश्वर से निमन्त्रण प्राप्त किए प्रवेश करने का प्रयास करने वाले किसी भी जन के लिए यह एक अभेद्य बाधा होगी। फिर भी बारह गोत्रों के नाम वाले बारह फाटकों के माध्यम से लोग उसमें आ सकते हैं। उद्धार यहूदियों के द्वारा है (यूहन्ना 4:22)। छुटकारे के इतिहास की जड़ को यहूदी देश में लगाया गया है। परन्तु नए यरूशलेम में फाटक होंगे जिससे कि सब देशों से लोग प्रवेश कर सकें। यद्यपि यह अपने आरम्भिक देश इस्राएल का आदर करेगा, यह एक ऐसा स्थान होगा जिसमें वे सब लोग प्रवेश कर सकेंगे जो मेमने के साथ निवास करने की इच्छा रखते हैं।

यूहन्ना ने न केवल बारह फाटक देखे, उसने उसी संख्या की आधारशिलाएँ भी देखीं: "नगर की शहरपनाह की बारह आधारशिलाएँ थीं, जिन पर मेमने के बारह प्रेरितों के बारह नाम लिखे थे" (प्रकाशितवाक्य 21:14)।

हम गाते हैं कि कलीसिया की एक नींव यीशु है। परन्तु नए नियम के चित्रण में ख्रीष्ट को बहुधा कलीसिया के कोने का पत्थर कहा गया है। प्रेरित और नबियों को नींव के रूप में पहचाना गया है: "और प्रेरितों तथा भविष्यद्वक्ताओं की नींव पर, जिसके कोने का पत्थर मसीह यीशु स्वयं है, [तुम] बनाए गए हो" (इफिसियों 2:20)।

यह महत्वपूर्ण है कि नए यरूशलेम की शहरपनाह एक नहीं, वरन् बारह नींव पर निर्मित होगी। बारह फाटक और बारह नींव की समानता, जो इस्राएल के बारह गोत्र और बारह प्रेरितों को चित्रित करती है, पुराने और नए नियम की एकता को और परमेश्वर के सभी लोगों के समावेश को प्रकट करती है।

यूहन्ना के दर्शन में फिर एक अनोखी घटना हुई: "जो मुझ से बातें कर रहा था उसके पास नगर और उसके फाटकों और शहरपनाह को नापने के लिए सोने का एक मापदण्ड था। नगर वर्गाकार रूप में बसा था। उसकी लम्बाई, चौड़ाई के बराबर थी। उसने उस मापदण्ड से नगर को नापा तो वह दो हज़ार चार सौ किलोमीटर निकला। उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊँचाई एक समान थी। उसकी शहरपनाह को स्वर्गदूत ने मनुष्यों की उस नाप के अनुसार नापा जो स्वर्गदूतों की भी है तो वह एक सौ चौवालीस हाथ निकली" (प्रकाशितवाक्य 21:15-17)।

दर्शन में, स्वर्गदूत ने पवित्र नगरी को सोने के मापदण्ड से नापा। नपाई से नगर की सिद्ध सममिति *(symmetry)* प्रकट हुई। कोई भटकी हुई रेखाएँ नहीं है, सब कुछ सन्तुलन में बना हुआ है। परमेश्वर का नगर सिद्ध रूप से समतल है। हम ध्यान देते हैं कि नगर घनाकार प्रतीत होता है। घनाकार पुराने नियम में महापवित्र स्थान का स्मरण दिलाता है (1 राजा 6:20 देखें)। सम्भवतः यह नए यरूशलेम की एक विशेषता को समझाता है जो निश्चय ही यहूदियों के लिए आश्चर्यजनक रही होगी, अर्थात् कि नगर में कोई मन्दिर नहीं होगा (प्रकाशितवाक्य 21:22)। सम्पूर्ण नगर ही मन्दिर होगा और परमेश्वर की उपस्थिति से भरा हुआ होगा।

स्वर्गदूत ने पाया कि नगर का नाप दो हजार चार सौ किलोमीटर (बारह सौ स्टाडिया) था। यह संख्या चित्रात्मक है। इसमें स्टाडिया की एकाई को बारह से गुणा किया गया है। एक ऐसे नगर की कल्पना करने का प्रयास करें जिसकी लम्बाई नई दिल्ली से कोच्चि तक है।

शहरपनाह के नाप भी अद्भुत थे। एक सौ चौवालीस हाथ की संख्या भी बारह का गुणज है। एक हाथ को व्यक्ति की उँगली से उसकी कोहनी तक नापा जाता था। इसलिए कुछ लोगों ने अनुमान लगाया है कि शहरपनाह की ऊँचाई 216 फिट है।

यूहन्ना ने आगे कहा, "शहरपनाह यशब की बनी थी, और नगर स्वच्छ काँच के सदृश शुद्ध सोने का था" (प्रकाशितवाक्य 21:18)।

किसी ने एक बार मुझे एक विडियो का कैसेट दिया जिसमें उन घटनाओं का वर्णन किया गया था जो उस वर्ष में घटित हुई जिसमें मेरा जन्म हुआ था, अर्थात् 1939 में। एक वर्णित घटना हर्स्ट मैनशन *(Hearst mansion)* के भवन का निर्माण है, जो उस समय तक का अमरीका में निर्मित सबसे विस्तृत और बहुमूल्य निजी निवास स्थान था। उस घर में सौ से अधिक कमरे थे और 1939 में उसका मूल्य $3 करोड़ था। उसमें सोने का काम भव्य था। परन्तु नए यरूशलेम की तुलना में हर्स्ट मैनशन भी कुत्ते का घर है।

हम ऐसे नगर की कल्पना नहीं कर सकते हैं जो काँच के सदृश शुद्ध सोने का है। हम स्मरण करते हैं कि सुलैमान के मन्दिर को बहुत अधिक सोने से मढ़वाया गया था। परन्तु नए यरूशलेम में केवल सोने से मढ़वाई नहीं की गई होगी। नए यरूशलेम में तो शुद्ध सोना ही होगा जो परमेश्वर की पवित्रता की सुन्दरता को प्रसारित करेगा।

नगर की नींव पर फिर से बात करते हुए, यूहन्ना ने एक जीता-जागता वर्णन प्रस्तुत किया: "उस नगर की नींव के पत्थर सब प्रकार के बहुमूल्य पत्थरों से सुसज्जित थे। नींव का पहला पत्थर यशब, दूसरा नीलम, तीसरा स्फटिक, चौथा मरकत, पाँचवा गोमेद, छठवाँ माणिक्य, सातवाँ पीतमणि,

आठवाँ पेरोज, नवाँ पुखराज, दसवाँ लहसनिया, ग्यारहवाँ धूम्रकान्त, और बारहवाँ चन्द्रकान्त का था" (प्रकाशितवाक्य 21:19-20)।

नगर की नींव में पाए जाने वाले बहुमूल्य पत्थर उन बहुमूल्य पत्थरों का स्मरण दिलाते हैं जो इस्राएल के महायाजक के सीनाबन्द पर थे (निर्गमन 28:15-20 देखें)। कुछ लोग इन बहुमूल्य पत्थरों के नामों में मूर्तिपूजक धर्म के खण्डन को देखते हैं, क्योंकि यूहन्ना ने उन्हें राशिचक्रीय/राशिफल ज्योतिषशास्त्र में उनके कार्य करने के विपरीत क्रम में सूचीबद्ध किया है। परमेश्वर के नगर में वह वास्तविकता पाई जाती है जिसे मूर्तिपूजक धर्म में विकृत किया जाता है।

उसके पश्चात् यूहन्ना ने नगर के भव्य फाटक और सड़कों का वर्णन किया: "बारह फाटक बारह मोतियों के थे; प्रत्येक फाटक एक एक मोती का था। नगर की सड़क पारदर्शक काँच के सदृश चोखे सोने की बनी थी" (प्रकाशितवाक्य 21:21)।

इस स्थल से यह विचार प्रचलित हुआ है कि स्वर्ग में "मोतियों के फाटक" और "सोने की सड़कें" हैं। यह पद यशायाह 54:12 की नबूवत को स्मरण दिलाता है। प्राचीन रब्बी लोग कभी-कभी यशायाह की नबूवत को यथार्थ रूप से समझते थे और उस समय की ओर देखते थे जब यरूशलेम में ऐसे मोती होंगे जो तीस फीट लम्बी और बीस फीट चौड़ी होंगी, जिनमें दस हाथ लम्बे और बीस हाथ चौड़े द्वार होंगे। (इस प्रकार के मोतियों को उत्पन्न करने वाले सीप कितने ही बड़े होंगे।)

मैं पिट्सबर्ग में जन्मा और बड़ा हुआ। पिट्सबर्ग एक अच्छा नगर है, और इस्पात के उद्योगशालाओं से निकालने वाली कालिख और धुन्ध से ढके नगर की लोकप्रिय छवि से कहीं अधिक सुन्दर है। पिट्सबर्ग नगरीय नवीकरण में अन्य नगरों के लिए मार्गदर्शक रहा है और नगरीय पुनर्जागरण का आदर्श है। पिट्सबर्ग की समस्या इस्पात के उद्योगशालाओं से निकलने वाला धुआँ नहीं है (क्योंकि उनमें से अधिकतर उद्योगशालाएँ अब बन्द हो चुकी हैं)। पिट्सबर्ग नगर के लोगों की स्थायी समस्या इसके सड़कों पर बने कुख्यात गड्ढे हैं। शरद ऋतु के अन्त में पाला के जमने और पिघलने के कारण सड़कों की सतह शीघ्रता से टूटती हैं। ऐसी कहानियाँ भी हैं कि सड़कों के गुफा-जैसे गड्ढों में कुछ गाड़ियाँ सदा के लिए खो गईं।

परन्तु स्वर्गीय नगर में कोई गड्ढे नहीं होंगे। सड़कों के नित्य रख-रखाव के लिए किसी भी प्रकार के सड़क कर *(tax)* की आवश्यकता नहीं होगी। सड़कें पारदर्शक काँच के सदृश चोखे सोने की बनी होंगी और उन्हें ठीक करने की आवश्यकता कभी नहीं होगी।

ये सजीव चित्र सम्भवतः स्वर्ग में विद्यमान महिमा का प्रतीकात्मक चित्रण हैं, पर मैं इसके विषय में हठधर्मिता *(dogmatic)* से बचना चाहूँगा। हमें यह नहीं सोचना चाहिए कि परमेश्वर ठीक वैसा ही नगर नहीं बना सकता है जिसको यूहन्ना ने दर्शन में देखा।

मन्दिर-रहित नगर

जैसे मैंने पहले कहा, यूहन्ना द्वारा देखे गए नए यरूशलेम के दर्शन में एक वस्तु है जो सुस्पष्ट रूप से अनुपस्थित है। उसने लिखा: "मैंने नगर में कोई मन्दिर न देखा, क्योंकि सर्वशक्तिमान प्रभु परमेश्वर और मेमना ही मन्दिर है" (प्रकाशितवाक्य 21:22)।

यह पद यूहन्ना के समय में पढ़ने वाले यहूदियों के लिए स्तब्धकारी रहा होगा। उनके लिए यह मन्दिर-रहित नए यरूशलेम की कल्पना करना पूर्णतः असम्भव थी। उनके भविष्य की आशा का केन्द्र मन्दिर की सिद्ध भव्यता थी।

मन्दिर के प्रति उनका लगाव इतना दृढ़ था कि यीशु की सुनवाई के समय उसके शत्रुओं ने उसके द्वारा कहे गए कुछ शब्दों को तोड़-मरोड़ कर ऐसे शब्दों के रूप में प्रस्तुत किया जो मन्दिर के लिए खतरे के रूप में प्रतीत हो रहे थे। एक झूठे साक्षी ने कहा: "हमने इसे यह कहते सुना है, 'मैं हाथों से बनाए गए इस मन्दिर को ध्वस्त कर दूँगा और तीन दिन में दूसरा खड़ा कर दूँगा जो हाथों से बनाया हुआ न होगा'" (मरकुस 14:58)। सच तो यह है कि यीशु ने मन्दिर के विषय में बात ही नहीं की। जब यहूदियों ने उससे चिह्न माँगा, तो उसने यह कहते हुए उन्हें उत्तर दिया:

> "इस मन्दिर को ढा दो और मैं इसे तीन दिन में फिर खड़ा कर दूँगा।" इस पर यहूदियों ने कहा, "इस मन्दिर को बनाने में छियालीस वर्ष लगे। क्या तू इसे तीन दिन में खड़ा कर देगा?" परन्तु वह तो अपनी देह के मन्दिर के विषय में कह रहा था। इसलिए जब वह मृतकों में से जिलाया गया तो उसके चेलों को स्मरण हुआ कि उसने यह कहा था, और उन्होंने पवित्रशास्त्र तथा उस वचन पर जो यीशु ने कहा था विश्वास किया। (यूहन्ना 2:19-22)

नए यरूशलेम में, मन्दिर के स्थान पर परमेश्वर पिता और मेमने, अर्थात् परमेश्वर पुत्र की निकटतम उपस्थिति होगी। जी उठा ख्रीष्ट परमेश्वर और मनुष्य के लिए "मिलने का स्थान" होगा, क्योंकि वह अपने लोगों के लिए मध्यस्थ है।

जिस प्रकार से यूहन्ना ने कोई मन्दिर नहीं देखा, उसने ज्योति के किसी भौतिक स्रोत को भी नहीं देखा: "उस नगर को सूर्य और चाँद के प्रकाश की आवश्यकता नहीं, क्योंकि परमेश्वर की महिमा ने उसे आलोकित किया है और मेमना उसका दीपक है" (प्रकाशितवाक्य 21:23)।

एक बार फिर से प्रकाशितवाक्य के शब्द पुराने नियम में यशायाह की नबूवत को दोहराते हैं: "फिर न तो दिन को सूर्य और न चाँदनी के लिए चन्द्रमा तेरा उजियाला होगा परन्तु यहोवा तेरे लिए सदा का उजियाला और तेरा परमेश्वर ही तेरा तेज ठहरेगा" (यशायाह 60:19)।

ख्रीष्ट ने घोषणा की थी कि वह "जगत की ज्योति" है (यूहन्ना 8:12)। नये यरूशलेम में, उसके पुनरुत्थान का वैभव, परमेश्वर की चौंधियाने वाली महिमा के साथ मिलकर सूर्य और चन्द्रमा जैसे छोटे प्रकाश स्रोत को फीका कर देगा।

यूहन्ना ने आगे बताया: "सब जातियाँ उसके प्रकाश में चलेंगी, और पृथ्वी के राजा अपने प्रताप को उसमें लाएँगे। उसके फाटक दिन के समय कभी बन्द न होंगे, क्योंकि वहाँ रात्रि न होगी। वे जातियों के वैभव और सम्मान को उसमें लाएँगे; परन्तु कोई भी अपवित्र वस्तु या कोई घृणित कार्य अथवा झूठ पर आचरण करने वाला उसमें प्रवेश न करेगा, परन्तु केवल वे जिनके नाम मेमने के जीवन की पुस्तक में लिखे हैं" (प्रकाशितवाक्य 21:24-27)।

पवित्र नगरी एक ऐसा स्थान होगा जिसमें प्रत्येक देश से लोग मसीहा-राजा को उपहार देने के लिए आएँगे। पृथ्वी के राजा जो छुड़ाए गए लोगों में गिने जाते हैं वे अपनी महिमा, अपने धन और सम्मान को मेमने के चरणों में अर्पित करने के लिए शीघ्रता करेंगे। प्राचीन मजूसी बालक ख्रीष्ट को उपहार देने के लिए दूर से यात्रा करके पहुँचे, परन्तु भविष्य में ख्रीष्ट के सिंहासन पर राजाओं और राजकुमारों के उससे भी वैभवशाली दर्शन होंगे। तब सब देशों से लोग राजाओं के राजा की आराधना करने के लिए एकत्रित होंगे। फाटक सदा के लिए खुले रहेंगे। वहाँ रात्रि का खतरा नहीं होगा, क्योंकि एक क्षण भी ऐसा नहीं होगा जब ख्रीष्ट की उपस्थिति का प्रकाश चमकने से रुकेगा।

यद्यपि नगर के फाटक खुले रहेंगे, उसमें कोई भी अशुद्ध करने वाली वस्तु प्रवेश नहीं कर पाएगी। उन सब लोगों के लिए प्रवेश निषिद्ध होगा जिनके नाम मेमने के जीवन की पुस्तक में नहीं लिखे हैं। यह मेमने का नगर है, इसलिए यह केवल उन लोगों के लिए खुला रहेगा जो उसके हैं।

जैसे-जैसे नगर के नए दृश्य उसके दर्शन में प्रकट हुए, यूहन्ना ने लिखा: "फिर उसने मुझे जीवन के जल की नदी दिखाई, जो स्फटिक के समान स्वच्छ थी और जो परमेश्वर और मेमने के सिंहासन से निकलकर, नगर के मुख्य मार्ग के बीच बहती है। नदी के दोनों किनारों पर जीवन का वृक्ष था, जिसमें बारह प्रकार के फल लगते थे। वह प्रति माह फलता था, और इस वृक्ष की पत्तियाँ जाति-जाति की चंगाई के लिए थीं" (प्रकाशितवाक्य 22:1-2)।

इस दृश्य में अदन की वाटिका के कुछ तत्व पाए जाते हैं। हम प्रायः सोचते हैं कि स्वर्ग उस अवस्था की पुनःप्राप्ति है जिसे हमने पतन में खो दिया था। परन्तु स्वर्ग केवल आरम्भिक पद्धती की पुनःस्थापन ही नहीं है। भविष्य की अवस्था वाला स्वर्ग आदिकालीन अदन की धन्यता से कहीं बढ़कर होगा।

यह दृश्य यहेजकेल की नबूवत के समान भी है:

> तब उसने मुझ से कहा, "यह जल पूर्वी क्षेत्र की ओर बहता है और वहाँ से अराबा होकर समुद्र की ओर बहता है और समुद्र में मिल जाता है और समुद्र का जल मीठा हो जाता है। और फिर ऐसा होगा कि जहाँ-जहाँ यह नदी बहती है, वहाँ-वहाँ बहुत झुण्ड में रहने वाले हर प्रकार के प्राणी जीवन पाएँगे। . . . अतः जहाँ-जहाँ यह नदी पहुँचेगी वहाँ-वहाँ सब कुछ जीवित रहेगा। . . . और नदी के तट पर दोनों ओर खाने के लिए सब प्रकार के वृक्ष उगेंगे। उनके पत्ते मुर्झाएँगे नहीं और उनके फल समाप्त नहीं होंगे। वे हर महीने फलते रहेंगे क्योंकि उनको सींचने वाला पानी पवित्रस्थान से बहता है; उनके फल भोजन के लिए और पत्ते चंगाई के लिए काम आएँगे।" (यहेजकेल 47:8-12)

यहेजकेल के दर्शन में नदी मन्दिर से बहती है। यूहन्ना के दर्शन में नदी मन्दिर से नहीं, वरन् स्वयं ख्रीष्ट से बहती है, जो स्थाई मन्दिर तथा चंगाई प्रदान करने वाले जल का स्रोत है।

यूहन्ना के दर्शन में यह कह पाना कठिन है कि उसने एक जीवन का वृक्ष देखा जिसकी डालियाँ नदी के दोनों किनारों पर थीं या फिर दो अलग जीवन के वृक्षों को देखा। दोनों स्थितियों में वृक्ष जीवन की पद्धति का प्रतीक है जो स्थापित होगी। ऋतुओं के उस वार्षिक चक्र का अन्त होगा जिसमें वसन्त में जन्म होता है और शीतऋतु में मृत्यु। वृक्ष प्रति माह नए फल देंगे। उनकी पत्तियाँ मुर्झाकर नहीं सूखेंगी। प्रकृति में अब काँटे और ऊँटकटारे नहीं पाए जाएँगे। फसल को खतरे में डालने वाला सूखा कभी नहीं पड़ेगा।

वृक्षों की पत्तियाँ उपचारात्मक औषधि होंगी। उनमें जाति-जाति के घावों के लिए चंगाई का लेप होगा। यूहन्ना ने स्पष्ट नहीं किया कि किन रोगों को चंगा किए जाने की आवश्यकता होगी। सम्भवतः उसके मन में प्रकृति की सामान्य पीड़ा के हटाए जाने का विचार है। अथवा यह भी सम्भव है कि उसके मन में उन चोटों की चंगाई है जिनके द्वारा ख्रीष्टविरोधी ने लोगों को पीड़ित किया था।

शाप का हटाया जाना

जिस बात की ओर वृक्षों के चित्रण ने संकेत दिया उसने यूहन्ना के लिए स्पष्ट कर दिया: शाप को उलट दिया जाएगा। उसने लिखा: "फिर वहाँ कोई शाप न रहेगा, पर इस नगर में परमेश्वर और मेमने का

सिंहासन होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे" (प्रकाशितवाक्य 22:3)।

शाप की अवधारणा मानवता के पतन की ओर हमारा ध्यान ले जाती है। शाप अनाज्ञाकारिता के प्रति परमेश्वर का न्याय था। पतन के पश्चात्, परमेश्वर ने हव्वा को बहकाने वाले सर्प को शाप दिया। उसने स्त्री को प्रसव-पीड़ा से ग्रसित किया और पुरुष को कठिन परिश्रम से ग्रसित किया। भूमि काँटों और ऊँटकटारों द्वारा शापित की गई (उत्पत्ति 3)।

शाप की अवधारणा तब भी प्रबलता से आई जब परमेश्वर ने इस्राएल के साथ अपनी वाचा बाँधी: "देखो, मैं आज तुम्हारे सामने आशीष और शाप दोनों रखता हूँ: यदि तुम अपने परमेश्वर यहोवा की उन आज्ञाओं को जो मैं आज तुम्हें देता हूँ सुनो, तो तुम्हें आशीष मिलेगी, परन्तु यदि तुम अपने परमेश्वर यहोवा की आज्ञाओं को न सुनो, और जिस मार्ग पर चलने की आज्ञा आज मैं तुम्हें देता हूँ उस मार्ग को त्याग कर पराए देवताओं के पीछे चलने लगो जिनको तुम नहीं जानते तो तुम पर शाप पड़ेगा" (व्यवस्थाविवरण 11:26-28)।

शाप का अर्थ सकारात्मक आशिषों की हानि से कहीं अधिक है। अन्ततः इसका अर्थ है परमेश्वर की उपस्थिति से हटा दिया जाना। जब ख्रीष्ट क्रूस पर था और परमेश्वर द्वारा "त्यागा" गया था, तो वह ईश्वरीय उपस्थिति से वंचित था। प्रकाश बन्द हो गया, और यीशु को अन्धकार के गर्त में डाल दिया गया। शाप का अर्थ है कि हम इस संसार में परमेश्वर के मुख को नहीं देख सकते हैं। इसका अर्थ है कि हम कुछ सीमा तक परमेश्वर की अनुपस्थिति का अनुभव करते हैं।

शाप का अन्त इस बात का प्रतीक है कि ईश्वरीय छुटकारा पूर्ण रूप से सम्पन्न हो गया है। यूहन्ना के दर्शन में जब शाप को हटाया जाता है, तो दो बातें तुरन्त प्रकट होती हैं। पहली यह है कि परमेश्वर और मेमने की उपस्थिति स्पष्ट है और दूसरी यह है कि उसके लोग स्वेच्छा से उसकी सेवा करते हैं। यह उस स्थिति से पूर्णतः भिन्न है जिसमें पहली बार शाप आया था। शाप अनाज्ञाकारिता के कारण पड़ा। जब शाप चला जाता है, तो अनाज्ञाकारिता नहीं होगी। शाप और पाप, जो शाप का कारण है, स्वर्ग से अनुपस्थित रहेंगे।

इसके परिणामस्वरूप हम स्वर्ग की सर्वोच्च आशा की ओर बढ़ते हैं, अर्थात् परमेश्वर का दर्शन। यूहन्ना ने लिखा: "वे उसके मुख को देखेंगे और उसका नाम उनके मस्तकों पर होगा" (प्रकाशितवाक्य 22:4)।

ईश्वरविज्ञानी इसे "आनन्दप्रद धन्य दर्शन" *(beatific vision)* कहते हैं, अर्थात् परमेश्वर का ऐसा दर्शन जो तात्कालिक और अत्याधिक आनन्द उत्पन्न करता है। यह वह धन्यता और उल्लास है जिसके लिए सब लोगों को सृजा गया था। यहाँ मानव प्राण को कष्ट देने वाला खोखलापन आखिरकार भर दिया जाएगा।

विश्वास के जीवन में इस बात से अधिक कठिन समस्या नहीं है कि हमें एक ऐसे परमेश्वर की

आराधना और सेवा करने के लिए बुलाया गया है जो हमारे लिए पूर्णतः अदृश्य है। हम "दृष्टि से ओझल, मन से ओझल" *(out of sight, out of mind)* कहावत को अपने स्नेह के पात्र के विषय में बहुत अधिक अनुभव करते हैं। हम उसकी महिमा के प्रताप से अपनी आँखों को भरना चाहते हैं। हम चाहते हैं कि वह अपने मुख के प्रकाश को हम पर चमकाए। हम लालसा करते हैं कि वह अपने मुख को हमारी ओर चमकाए।

पुराने नियम में मनुष्यों के पास ईश्वरीय प्रकटीकरण के विवरण केवल ईश्वरदर्शन *(theophanies)* थे। ईश्वरदर्शन में अदृश्य परमेश्वर का दृश्यमान प्रकटीकरण होता है। मूसा ने एक जलती हुई झाड़ी को देखा जो भस्म नहीं हो रही थी। इस्राएल की सन्तानों ने बादल के खम्बे को देखा। इन ईश्वरदर्शनों ने परमेश्वर के मुख के सामने एक आवरण को बनाए रखा।

अपनी पहली पत्री में प्रेरित पौलुस ने लिखा: "देखो, पिता ने हमें कैसा महान् प्रेम प्रदान किया है कि हम परमेश्वर की सन्तान कहलाएँ; और वही हम हैं। इस कारण संसार हमें नहीं जानता, क्योंकि संसार ने उसे भी नहीं जाना। प्रियो, हम परमेश्वर की सन्तान हैं, और अब तक यह प्रकट नहीं हुआ कि हम क्या होंगे। पर यह जानते हैं कि जब वह प्रकट होगा तो हम उसके सदृश होंगे, क्योंकि हम उसको ठीक वैसा ही देखेंगे जैसा वह है" (1 यूहन्ना 3:1-2)।

यूहन्ना ने आनन्दप्रद धन्य दर्शन के इस विषय को प्रेरितीय आश्चर्य के साथ प्रस्तुत किया। उसने इस बात के प्रति बड़े अचम्भे की घोषणा की कि हम परमेश्वर की सन्तान कहलाए जा सकते हैं। लेपालक पुत्रत्व के इस विशेषाधिकार का दिया जाना प्रेम की इस प्रकार की "रीति" या प्रकार" को प्रकट करता है जो सामान्य श्रेणियों से परे है। यह एक उत्कृष्ट प्रेम है जिसके कारण पिता हमें अपनी सन्तान कहने के लिए प्रेरित होता है। हम पूर्ण रूप से इस उपाधि के अयोग्य हैं। इसका आधार हमारी किसी योग्यता में नहीं पाया जा सकता है। इस बात के लिए एकमात्र कारण कि हमें परमेश्वर की सन्तान कहा जाता है, वह अद्भुत प्रेम है जिसे केवल परमेश्वर ही प्रदर्शित कर सकता है।

यूहन्ना ने आगे माना कि यह अभी प्रकट नहीं हुआ है कि हम क्या होंगे। दर्पण अभी भी धुँधला है। भविष्य पर अभी भी बादल छाए हैं। परन्तु हमें कुछ सुराग दिए गए हैं जो हमारे प्राणों को प्रसन्नता से भर देने के लिए पर्याप्त हैं। हम एक बात तो निश्चित रूप से जानते हैं; ज्योति की एक किरण जो दर्पण के अन्धेरे को भेदती है—हम उसके सदृश होंगे।

यह विडम्बनापूर्ण *(ironic)* है कि हम परमेश्वर के स्वरूप में बनाए गए थे। मानव जाति की सृष्टि के पीछे परमेश्वर का उद्देश्य था कि हम परमेश्वर के चरित्र को दर्पण के समान प्रतिबिम्बित करें। परन्तु हमारी पतित स्थिति के कारण हम में परमेश्वर का स्वरूप कलंकित है। हम झूठे स्वरूप

बन गए। मनुष्यों का एक स्वाभाविक गुण है कि हम पाप करते हैं। अपने पाप में, हम सटीक रीति से प्रकट करते हैं कि परमेश्वर कैसा *नहीं* है। परमेश्वर के चरित्र में बुराई की कोई परछाई नहीं है।

परन्तु, जब पाप हम से पूर्णतः हटा दिया जाएगा, तब हम परमेश्वर के प्रमाणिक स्वरूप होंगे। हम उसके सदृश होंगे।

परमेश्वर के मुख को देखने के लिए अनिवार्य पूर्वापेक्षा हृदय की शुद्धता है। धन्य वाणी में यीशु की प्रतिज्ञा है: "धन्य हैं वे जिनके मन शुद्ध हैं, क्योंकि वे परमेश्वर को देखेंगे" (मत्ती 5:8)। पार्थिव मनुष्यों के लिए परमेश्वर इसलिए अदृश्य है क्योंकि किसी भी मनुष्य का हृदय शुद्ध नहीं है। समस्या हमारी आँखों में नहीं, हमारे हृदयों में है।

यूहन्ना हमें घटनाओं का सटीक क्रम नहीं बताता है। क्या हम पहले शुद्ध बना दिए जाएँगे जिससे कि परमेश्वर को देखना सम्भव होगा या क्या अनावृत *(unveiled)* परमेश्वर को देखने से हम तुरन्त शुद्ध हो जाएँगे? हम जानते हैं कि हम केवल तब ही परमेश्वर को देखने के योग्य होंगे जब हम स्वर्ग में महिमान्वित होंगे। इसलिए मैं सोचता हूँ कि इससे पहले कि हम "उसको ठीक वैसा ही देखेंगे जैसा वह है," हमारे हृदयों से अशुद्धता के अवशेष को पूर्णतः शुद्ध किया जाना होगा।

लू वॉलेस के *बेन-हर (Ben-Hur)* के हॉलीवुड चलचित्र में एक भाग है जो ख्रीष्ट के दर्शन की मार्मिकता को दर्शाता है। बेन-हर एक कुएँ के पास है, और वह मिट्टी से मैला, तथा बहुत प्यासा है। कैमरा बेन-हर के मुख को दिखाता है। उसका मुख क्लेश से विकृत है। फिर एक पुरुष की परछाई उसके मुख पर दिखाई देती है। हम उस पुरुष को नहीं देखते हैं। कैमरा बेन-हर के मुख पर बना रहता है। वह पुरुष बेन-हर को पानी देता है। जब बेन-हर उस अनजान दयालु जन को देखने के लिए अपने दुःखी मुख को उठाता है, हम देखते हैं कि एक आकस्मिक तेज उसके मुख को परिवर्तित कर देता है। उसके मुख के मौलिक परिवर्तन को देखकर हम तुरन्त जान जाते हैं कि वह ख्रीष्ट के मुख को सीधे देख रहा है।

मसीही जन की परम आशा यही है। जब हम परमेश्वर के मुख को देखेंगे, पीड़ा और दुःखों की सभी स्मृतियाँ विलुप्त हो जाएँगी। हमारे प्राण पूर्ण रूप से चंगे हो जाएँगे।

परमेश्वर अपने नाम को हमारे मस्तकों पर लिखेगा। ख्रीष्टविरोधी की संख्या वहाँ नहीं होगी। हम एक ऐसे अमिट नाम से चिह्नित किए जाएँगे जो सर्वदा के लिए हमारी पहचान को परमेश्वर के पुत्र और पुत्रियों के रूप में स्थापित करेगा।

नए आकाश और नई पृथ्वी के अपने दर्शन के इस वर्णन को यूहन्ना ने इन भावोत्तेजक शब्दों के साथ समाप्त किया: "फिर कोई रात न होगी। उन्हें न दीपक न सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता

होगी, क्योंकि प्रभु परमेश्वर उन्हें प्रकाश देगा और वे युगानुयुग राज्य करेंगे। तब उसने मुझ से कहा, ये बातें विश्वसनीय और सत्य हैं" (प्रकाशितवाक्य 22:5-6अ)।

एक बार फिर से यूहन्ना ने सभी अन्धकार के हटा दिए जाने पर बल दिया। परमेश्वर की ज्योतिर्मय महिमा उसके लोगों को सर्वदा के लिए ज्योति से सराबोर करेगी। इसके साथ, उन सब को अपना पूरा उत्तराधिकार प्राप्त होगा जो उसके हैं। वे उसे यह कहते हुए सुनेंगे: "आओ, मेरे प्रिय, उस राज्य को उत्तराधिकार में लो जो समय के आरम्भ से तुम्हारे लिए तैयार किया गया है।"

यही वह प्रतिज्ञा है, जिसे इस स्वर्गीय घोषणा द्वारा प्रमाणित किया जाता है, "ये बातें विश्वसनीय और सत्य हैं," जो हमारी वर्तमान की पीड़ा और दुःखों से सम्बन्धित सभी सन्देह को हटाती है। यही वह प्रतिज्ञा है जो प्रेरित की इस तुलना की पुष्टि करती है कि इस जीवन में हमारे द्वारा सहे जाने वाले कष्ट उस महिमा से तुलना किए जाने के योग्य भी नहीं हैं, जिसे परमेश्वर ने स्वर्ग में हमारे लिए रखा है (रोमियों 8:18)। इसी प्रतिज्ञा के द्वारा, जो एक ईश्वरीय शपथ द्वारा सुरक्षित है, हम जानते हैं कि हमारा दुःख उठाना किसी भी रीति से कभी भी व्यर्थ नहीं है।

निष्कर्ष

इफिसियों को लिखी गई अपनी पत्री में, पौलुस ने विश्वासियों के सम्बन्ध में अपने हृदय की गहरी भावनाओं को व्यक्त किया:

> इस कारण मैं भी तुम्हारे उस विश्वास का समाचार सुनकर जो प्रभु यीशु में है और तुम्हारा प्रेम जो सब पवित्र लोगों के प्रति है, तुम्हारे लिए निरन्तर धन्यवाद देता हूँ और अपनी प्रार्थनाओं में तुम्हें स्मरण किया करता हूँ कि हमारे प्रभु यीशु ख्रीष्ट का परमेश्वर, जो महिमा का पिता है, तुम्हें अपनी पूर्ण पहिचान में ज्ञान और प्रकाशन की आत्मा दे। मैं प्रार्थना करता हूँ कि तुम्हारे मन की आँखें ज्योतिर्मय हों, जिससे तुम जान सको कि उसकी बुलाहट की आशा क्या है, और पवित्र लोगों में उसके उत्तराधिकार की महिमा का धन क्या है, और उसका सामर्थ्य हम विश्वास करने वालों के प्रति कितना महान् है। ये सब उसकी उस शक्ति के कार्य के अनुसार है। (इफिसियों 1:15-19)

पास्टरीय अभिलाषा की इस अभिव्यक्ति में, पौलुस ने तीनों महान् मसीही गुणों की बात की—विश्वास, प्रेम और आशा। वह पवित्र लोगों के विश्वास के विषय में सुनकर आनन्द से भर गया, वह ऐसा विश्वास था जो प्रेम में प्रकट हुआ था। परन्तु उसकी प्रार्थना का मुख्य ध्यान इस बात पर था कि परमेश्वर का आत्मा इस प्रकार से विश्वासियों के मनों को ईश्वरीय बुद्धि से ज्योतिर्मय करे कि वे उसकी बुलाहट की आशा को पूर्ण रूप से समझ सकें।

हमारे लिए ईश्वरीय बुलाहट अन्ततः केवल दुःख उठाने के लिए नहीं है, परन्तु एक ऐसी आशा के लिए है जो दुःख पर प्रबल होती है। यह ख्रीष्ट के साथ हमारे भविष्य के उत्तराधिकार की आशा है।

यह आशा प्राण की कामना या खोखली आकाँक्षा मात्र नहीं है। यह ऐसी आशा है जो परमेश्वर की अत्यधिक महान् सामर्थ्य पर आधारित है। यह ऐसी आशा है जो विफल नहीं हो सकती है। वे सब लोग जो इसे अपनाते हैं, उनके लिए यह आशा कभी भी लज्जा या निराशा नहीं लाएगी।

ख्रीष्ट की उपस्थिति में अनन्त आनन्द की आशा, वह आशा जो अल्पकालिक दुःखों के मध्य हमें बनाए रखती है, यीशु ख्रीष्ट की विरासत है। यह उन सब के लिए परमेश्वर की प्रतिज्ञा है जो उस पर अपना भरोसा रखते हैं।

परिशिष्ट

प्रश्न और उत्तर

इस भाग में मैं कुछ ऐसे प्रश्नों के उत्तर देने के द्वारा जो मुझ से पूछे गए हैं, दुःख की समस्या से सम्बन्धित कुछ और विषयों को संक्षिप्त रूप में सम्बोधित करना चाहता हूँ।

आप ऐसे मसीहियों को क्या परामर्श देंगे जो रोग या उम्र-सम्बन्धित दुर्बलता में दुःख उठा रहे हैं और पृथ्वी पर बने रहने की अपेक्षा में स्वर्ग में होना चाहेंगे?

सबसे पहले तो मैं उनकी प्राथमिकता के लिए ऐसे लोगों की सराहना करूँगा। निश्चित रूप से वे अच्छी संगति में हैं। बाइबल के नायक और नायिकाएँ बहुधा इस भावना को व्यक्त करते हैं। हम वृद्ध शमौन को स्मरण करते हैं जिसको मसीहा को देखने के लिए वर्षों तक प्रतीक्षा करने के पश्चात् आखिरकार मन्दिर में बालक यीशु को देखने की आशीष मिली। उसने बालक यीशु को अपने हाथों में लेकर उस कविता को कहा जिसे लातीनी में *नन्क डिमिट्टिस (Nunc Dimittis)* कहा जाता है: "हे स्वामी, अब तू अपने वचन के अनुसार अपने दास को शान्ति से विदा होने दे, क्योंकि मेरी आँखों ने तेरे उद्धार को देख लिया है" (लूका 2:29-30)।

अय्यूब ने अपनी महान् पीड़ा के मध्य परमेश्वर से मृत्यु द्वारा स्वतन्त्र किए जाने की विनती की: "काश, मेरी विनती पूरी होती, और परमेश्वर मेरी लालसा पूरी करता! काश, परमेश्वर मेरी सुनकर मुझे कुचल डालता, वह अपना हाथ बढ़ाकर मुझे काट डालता!" (अय्यूब 6:8-9)। अन्य लोगों के समान, मूसा और यिर्मयाह ने भी यही विनती की।

एक बार मैंने एक व्यक्ति को जहाजी मतली *(seasickness)* की तीव्र वेदना को इस प्रकार से वर्णित करते हुए सुना, "पहले मुझे डर था कि मैं मरने जा रहा हूँ, और फिर मुझे डर था कि मैं नहीं मरूँगा।" जिस बात को उसने उपहासपूर्ण रूप में कहा वह कई पीड़ितों के लिए कठोर सच्चाई है।

जीवन के अन्तिम वर्षों में बिली ग्राहम को सार्वजनिक रूप से यह कहते हुए उद्धृत किया गया है कि वे थक गए हैं और ख्रीष्ट के पास रहने के लिए घर जाने की लालसा कर रहे हैं। डॉ. ग्राहम की बातें प्रेरित पौलुस के समान हैं जब उसने लिखा: "क्योंकि मेरे लिए जीवित रहना तो ख्रीष्ट और मरना लाभ है। परन्तु यदि सदेह जीवित रहूँ तो इसका अर्थ मेरे लिए फलदायी परिश्रम है; परन्तु मैं किस बात को चुनूँ, यह नहीं जानता। मैं इन दोनों के बीच असमञ्जस में पड़ा हूँ। मेरी लालसा तो यह है कि कूच करके ख्रीष्ट के पास जा रहूँ, क्योंकि यह अति उत्तम है, परन्तु तुम्हारे कारण शरीर में जीवित रहना मेरे लिए अधिक आवश्यक है" (फिलिप्पियों 1:21-24)।

पौलुस पृथ्वी पर सेवकाई करते रहने के लिए तैयार था, परन्तु उसकी स्पष्ट प्राथमिकता थी कि वह मरकर ख्रीष्ट के पास जाए। उसी रीति से, हमें भी प्रार्थना करनी चाहिए कि परमेश्वर हमें अनुग्रह दे कि हम इस जगत में फलदाई बने रहें, भले ही हमारी प्राथमिकता यह है कि हम मरकर ख्रीष्ट के पास जाएँ।

दो आधारभूत कारण हैं कि मसीही लोग क्यों कभी-कभी मृत्यु की इच्छा करते हैं। पहला कारण है आत्मिक गन्तव्य तक पहुँचने की हमारी गहरी लालसा। हमारे प्राणों की यात्रा तब तक समाप्त नहीं होती है जब तक हम अपने विश्राम में प्रवेश न कर लें। दूसरा कारण है कष्टों से मुक्त होने की इच्छा।

जैसा कि मैंने इस पुस्तक में पहले कहा है, हमारी मृत्यु का समय परमेश्वर के हाथों में है। हमें ऐसा कुछ नहीं करना चाहिए जो हमारे जाने के समय को पास लाए। परमेश्वर जीवन का स्रोत है और वह जीवन और मृत्यु, दोनों पर सम्प्रभु है। हम मृत्यु के लिए प्रार्थना कर सकते हैं, परन्तु केवल परमेश्वर ही उस निवेदन का उत्तर दे सकता है।

आत्महत्या को हम कैसे समझें? उन लोगों का क्या होता है जो आत्महत्या कर लेते हैं?

ऐतिहासिक रूप से कलीसिया ने आत्महत्या को नकारात्मक दृष्टि से देखा है। परन्तु, सत्य यह है कि कई लोग स्वयं की हत्या करते हैं।

एक बार मुझसे किसी टीवी पर प्रसारित होने वाले वार्तालाप कार्यक्रम में पूछा गया कि क्या आत्महत्या करने वाले लोग स्वर्ग जा सकते हैं। मैंने केवल हाँ में उसका उत्तर दिया। मेरे इस उत्तर के कारण इतने सारे लोगों ने कॉल करना आरम्भ कर दिया कि फोन बजते ही रहे। कार्यक्रम का परिचारक भी मेरे प्रत्युत्तर से स्तब्ध था।

मैंने समझाया कि आत्महत्या को कहीं भी ऐसे पाप के रूप में वर्णित नहीं किया गया है जिसे क्षमा नहीं किया जा सकता है। हम निश्चितता के साथ नहीं जानते हैं कि आत्महत्या करने के क्षण में वह व्यक्ति क्या सोच रहा है। यह सम्भव है कि आत्महत्या निरा अविश्वास का कार्य है, जो व्यक्ति के पूर्णतः निराश होने को प्रकट करता है, जो यह दर्शाता है कि उसमें परमेश्वर के प्रति विश्वास अनुपस्थित है। दूसरी ओर, यह अल्पकालिक या दीर्घकालिक मानसिक रोग का लक्षण हो सकता है। यह भी सम्भव है कि यह गम्भीर आकस्मिक अवसाद के कारण होता है। (इस प्रकार का अवसाद स्वाभाविक कारणों से या यह कुछ औषधियों के अनभिप्रेत उपयोग के कारण हो सकता है।

एक मनोचिकित्सक ने कहा कि यदि आत्महत्या करने वाले लोग चौबीस घण्टे के लिए प्रतीक्षा करते, तो उनमें से अधिकाँश लोग आत्महत्या नहीं करते। इस प्रकार का कथन एक अनुमान अवश्य है, परन्तु यह उन कई लोगों के साथ साक्षात्कार पर आधारित है जिन्होंने आत्महत्या करने का गम्भीर असफल प्रयास करने के पश्चात् अभीभूत कर देने वाली अपनी हताशा से उबर चुके हैं।

बात यह है कि लोग अनेक प्रकार के कारणों से आत्महत्या करते हैं। आत्महत्या के क्षण में किसी व्यक्ति की सोच की जटिलता को केवल परमेश्वर ही पूर्णतः समझ सकता है। इसलिए केवल परमेश्वर ही किसी भी व्यक्ति के विषय में निष्पक्ष तथा उचित न्याय करने के योग्य है। किसी व्यक्ति का उद्धार मूलतः इस बात पर निर्भर है कि क्या केवल विश्वास के द्वारा ख्रीष्ट के साथ उसका मिलन हुआ है या नहीं। यह बात सत्य है कि वास्तविक मसीही लोग भी गम्भीर अवसाद से ग्रसित होने की क्षमता रखते हैं।

यद्यपि हमें लोगों को आत्महत्या करने से निरुत्साहित करना चाहिए, फिर भी हम उन लोगों को परमेश्वर की दया में सौंपते हैं जिन्होंने आत्महत्या की है।

क्या सामान्य दुःख उठाने को, जो ख्रीष्ट के नाम के लिए सताया जाना नहीं है, ख्रीष्ट के दुःख उठाने में सहभागी होना कहा जा सकता है?

मैं सोचता हूँ कि कुछ स्थितियों में ऐसा कहा जा सकता है। यदि हमारा दुःख उठाना विश्वास में होता है, यदि हम दुःख उठाते समय परमेश्वर पर अपना भरोसा रखें, तो हम उस भरोसे का अनुकरण कर रहे हैं जो पिता के प्रति यीशु में था। निश्चय ही उन लोगों से विशेष प्रतिज्ञा की गई है जो अन्याय के कारण दुःख उठाते हैं। धार्मिकता के लिए सताए गए लोगों के पास सान्त्वना के लिए अनेक बाइबलीय प्रतिज्ञाएँ हैं।

परन्तु यदि व्यक्ति किसी रोग या किसी ऐसी त्रासदी के कारण दुःख उठा रहा है जो सताव के कारण नहीं है, तो उस बात को कैसे समझा जाए? यहाँ पर संकट के मध्य परमेश्वर पर अपना भरोसा रखना एक सद्गुण है जिसको पुरस्कृत किया जाएगा। उसमें भी एक प्रकार से ख्रीष्ट का

अनुकरण करना सम्मिलित है। परमेश्वर को निश्चय ही आदर मिलता है जब उसकी सन्तान दुःख के मध्य विश्वास में बनी रहती हैं। इसमें हम ख्रीष्ट के उदाहरण का अनुकरण करते हैं।

यह भी सम्भव है कि हम अपने पापों के उचित परिणामस्वरूप दुःख उठाते हैं। इस अर्थ में देखा जाए तो हम ख्रीष्ट का अनुसरण नहीं कर रहे हैं, क्योंकि सिद्ध होने के कारण, ख्रीष्ट ने कभी भी अपने पाप के लिए दुःख नहीं उठाया। परन्तु इस स्थिति में भी परमेश्वर को आदर देना सम्भव है। परमेश्वर को तब आदर मिला जब क्रूस पर उस डाकू ने स्वीकारा कि वह उस दण्ड का सुपात्र था जिसे वह अनुभव कर रहा था (लूका 23:41)। उसने पहले से किए गए पापों के साथ ईश-निन्दा या परमेश्वर की निन्दा को नहीं जोड़ा।

जब जानवर मरते हैं तो क्या होता है?

यह कोई व्यर्थ प्रश्न नहीं है। हम जानते हैं कि लोग जानवरों और विशेषकर अपने पालतू जानवरों से बहुत लगाव रखते हैं। किसी छोटी लड़की के साथ उसकी बिल्ली या किसी आदमी के साथ उसका कुत्ता उस स्नेह को दिखाते हैं जो मनुष्य और जानवरों के मध्य पाया जाता है।

पारम्परिक रूप से, बहुत से लोगों ने माना है कि जानवरों के लिए कोई भविष्य का जीवन नहीं है। बाइबल इस बात की स्पष्ट शिक्षा नहीं देती है कि जानवर स्वर्ग जाते हैं। इस विचार के विरुद्ध में कि जानवर मृत्यु से पार होते हैं, एक मुख्य तर्क यह दृढ़ विश्वास है कि जानवरों के पास आत्मा (प्राण) नहीं हैं। बहुत लोग आश्वस्त हैं कि मनुष्यों और जानवरों के मध्य विशेष आयाम यह है कि मनुष्यों के पास आत्मा होती हैं और जानवरों के पास नहीं। कुछ लोग कहते हैं कि परमेश्वर का स्वरूप मनुष्य की आत्मा में है।

इसी प्रकार यह भी माना जाता है कि जानवर हमारे समान सोच नहीं सकते हैं। उनकी प्रतिक्रियाओं को तर्क या बुद्धि से कम, मूल वृत्ति *(instinct)* के आधार पर समझाया जाता है। परन्तु *मूल वृत्ति* शब्द अपने आप में बहुत स्पष्ट नहीं है। मूल वृत्ति कब सोच में परिवर्तित हो जाती है? जानवर भी उन बातों को प्रकट कर सकते हैं जिन्हें हम भावनाएँ कहते हैं। वे निश्चय ही बाहरी उत्तेजनाओं का प्रतिउत्तर देते हैं।

बाइबल यह नहीं कहती है कि जानवर सोचते हैं। बाइबल यह नहीं कहती है कि जानवरों के पास आत्मा है। परन्तु न ही बाइबल इन बातों को नकारती है। यह बात निश्चित है कि बाइबल कहती है कि गदहा अपने स्वामी की चरनी को पहचानता है (यशायाह 1:3)। यहाँ कहा जा रहा है कि जानवर "पहचानता (ज्ञान)" है। परन्तु इस खण्ड की व्याख्या चित्रात्मक या काव्यात्मक रीति से भी की जा सकती है, इसलिए हम अभी भी अनिश्चित बने रहते हैं।

हम एक बात के विषय में निश्चित हैं: बाइबल में छुटकारा को सृष्ट्यात्मक *(cosmic)* भाषा में वर्णित किया गया है। जिस प्रकार मनुष्य के पतन से सम्पूर्ण सृष्टि विनाश की ओर गई, उसी प्रकार

सम्पूर्ण सृष्टि आहें भरकर छुटकारे की प्रतीक्षा कर रही है: "क्योंकि सृष्टि बड़ी व्यग्रता से परमेश्वर के पुत्रों के प्रकट होने की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रही है। क्योंकि सृष्टि व्यर्थता के अधीन कर दी गई, परन्तु अपनी ही इच्छा से नहीं, वरन् उसके कारण जिसने उसे अधीन कर दिया, इस आशा में कि सृष्टि स्वयं भी विनाश के दासत्व से मुक्त होकर परमेश्वर की सन्तानों की महिमा की स्वतन्त्रता प्राप्त करे" (रोमियों 8:19-21)।

बाइबल में स्वर्ग और भविष्य के छुटकारा के चित्रों में जानवर पाए जाते हैं। मेमना, सिंह और भेड़िया सभी का उल्लेख किया गया है। एक बार फिर, हो सकता है कि ये चित्र केवल चित्रात्मक रीति से समझाने के लिए हों। परन्तु सृष्ट्यात्मक छुटकारे की प्रतिज्ञा के साथ रखने पर, ये मनुष्य के जानवर साथियों के भविष्य के उद्धार के लिए कुछ सच्ची आशा प्रदान करते हैं।

क्या दुःख उठाने से बचने का प्रयास करना त्रुटिपूर्ण है?

कलीसियाई इतिहास में ऐसे समय हुए हैं जब दुःख उठाने को इस सीमा तक सद्गुण माना जाता था कि लोगों ने उसे अनुभव करने के लिए हर सम्भव प्रयास किया। मानीवाद धर्म *(Manichaeism)* की प्राचीन विधर्मता, जो आत्मा (प्राण) को बुरे शरीर से छुड़ाने पर ध्यान देती थी, का कलीसिया पर शक्तिशाली और दीर्घकालिक प्रभाव था। परमेश्वर की दृष्टि में योग्यता *(merit)* अर्जित करने के साधनों के रूप में वैराग्य के कठोर कार्यों को देखा जाता था, जिसमें आत्म-पीड़न के विचित्र रूप (जैसे स्वयं को कोड़े मारना) भी सम्मिलित थे।

परन्तु केवल दुःख उठाने के उद्देश्य से दुःख उठाने में कोई विशेष योग्यता नहीं है। दुःख की खोज करना मनोवैज्ञानिक विकार जैसे कि स्वपीड़न रति *(masochism)* का संकेत हो सकती है। यह स्व-धर्मीकरण का प्रयास भी हो सकता है जिसमें व्यक्ति पाप-क्षमा वाले अनुग्रह के सेंतमेंत उपहार को ग्रहण करने के स्थान पर, घमण्ड के कारण अपने पापों के लिए स्वयं प्रायश्चित्त करना चाहता है।

दुःख की खोज करने का कोई कारण नहीं है। न ही उससे बचने का प्रयास करने में कोई बुराई है जब तक कि इसमें अभिप्राय पूर्वक ख्रीष्ट के प्रति विश्वासघात सम्मिलित नहीं है। आरम्भिक मसीही शहीद सिंहों से बच सकते थे यदि उन्होंने ख्रीष्ट का खण्डन किया होता, परन्तु इस प्रकार दुःख उठाने से बचना पाप होता। ऐसे उदाहरण केवल आरम्भिक कलीसिया तक ही सीमित नहीं हैं। वर्तमान जगत में कई परिस्थितियों में, विशेषकर सर्वसत्तावादी/एकदलीय *(totalitarian)* देशों में, मसीही लोग ख्रीष्ट के लिए दुःख उठाने को चुनते हैं—और कुछ स्थितियों में नहीं चुनते हैं।

जब हम खाने के लिए भोजन मोल लेते हैं और अपने रोगों को चंगा करने के लिए औषधियों का उपयोग करते हैं तो हम दुःख उठाने से बचना चाहते हैं। यह पाप नहीं वरन् बुद्धिमानी है।

परमेश्वर ने हमें शरीर और आत्मा के भण्डारी के रूप स्वयं का ध्यान रखने के लिए बुलाया है।

इसलिए दुःख उठाने से बचना परिस्थिति के अनुसार सद्गुण भी हो सकता है या फिर पाप भी।

जब एक शिशु मरता है या उसका गर्भपात किया जाता है, तो उसकी आत्मा कहाँ जाती है?

इस प्रश्न के शब्दों से ऐसा लगता है कि गर्भपात और मृत्यु के सम्बन्ध के विषय में कोई अस्पष्टता है। यदि जीवन गर्भधारण के समय आरम्भ होता है, तो गर्भपात मृत्यु का एक प्रकार है। यदि जीवन जन्म तक नहीं आरम्भ होता है, तो निश्चित रूप से गर्भपात में मृत्यु नहीं होती है। प्राचीन शास्त्रीय दृष्टिकोण है कि जीवन गर्भधारण के समय आरम्भ होता है। यदि यह बात सत्य है, तो शिशुओं की मृत्यु और जन्म से पूर्व की मृत्यु के प्रश्नों का एक ही उत्तर है।

जब भी कोई मनुष्य जवाबदेही की आयु से पहले मर जाता है (जो मानसिक क्षमता के अनुसार अलग-अलग होती है), हमें परमेश्वर की दया के विशेष प्रावधान की ओर देखना चाहिए। अधिकाँश कलीसियाएँ विश्वास करती हैं कि परमेश्वर की दया में एक विशेष प्रावधान है। इस दृष्टिकोण में यह नहीं माना जाता है कि शिशु निष्पाप हैं। दाऊद ने घोषणा की थी कि वह पाप में जन्मा और कि पाप में उसका गर्भधारण हुआ (भजन 51:5)। स्पष्ट रूप से वह बाइबल में पाई जाने वाली मूल पाप *(original sin)* की अवधारणा की बात कर रहा था। मूल पाप आदम और हव्वा द्वारा किया गया पहला पाप नहीं है, वरन् उस आरम्भिक अपराध का परिणाम है। मूल पाप हमारी पतित स्थिति को दर्शाता है और यह सभी मनुष्यों को प्रभावित करता है। हम इसलिए पापी नहीं हैं क्योंकि हम पाप करते हैं; वरन् हम इसलिए पाप करते हैं क्योंकि हम पापी हैं। अर्थात् हम पाप करते हैं क्योंकि हम पापी स्वभाव के साथ जन्म लेते हैं।

यद्यपि शिशु उनके द्वारा किए गए पाप के दोषी नहीं हैं, वे मूल पाप से कलंकित हैं। यही कारण है कि हम बल देते हैं कि शिशुओं का उद्धार उनकी प्रकल्पित निर्दोषता *(presumed innocence)* पर नहीं वरन् परमेश्वर के अनुग्रह पर निर्भर होता है।

मेरी कलीसिया विश्वास करती है कि शिशुपन में मरने वाले विश्वासियों के बच्चे परमेश्वर के विशेष अनुग्रह के द्वारा स्वर्ग जाते हैं। अविश्वासियों के बच्चों की नियति को रहस्य के क्षेत्र में रखा जाता है। यह सम्भव है कि उनके लिए भी परमेश्वर के विशेष अनुग्रह का प्रावधान होता है। निश्चय ही हम इसकी आशा कर सकते हैं।

यद्यपि हम इस प्रकार के अनुग्रह की आशा कर सकते हैं, इस विषय में बहुत कम बाइबलीय शिक्षा पाई जाती है। "बच्चों को मेरे पास आने दो। उन्हें मना न करो, क्योंकि स्वर्ग का राज्य ऐसों ही का है" (मत्ती 19:14), यीशु के ये शब्द, हमें कुछ आश्वासन देते हैं परन्तु वे शिशुओं के उद्धार के लिए हमें स्पष्ट प्रतिज्ञा नहीं प्रदान करते हैं।

जब परमेश्वर ने दाऊद और बतशेबा के पुत्र को ले लिया, दाऊद ने विलाप किया, "जब बच्चा जीवित था, मैंने उपवास किया और मैं रोया, क्योंकि मैंने सोचा, 'क्या जाने, यहोवा मुझ पर अनुग्रह करे जिससे बालक जीवित रहे?' पर अब तो वह नहीं रहा। मैं उपवास क्यों करूँ? क्या मैं उसे लौटाकर ला सकता हूँ? *मैं उसके पास जाऊँगा,* पर वह मेरे पास नहीं लौटेगा" (2 शमूएल 12:22-23)।

यहाँ दाऊद ने इस बात पर अपने भरोसे की घोषणा की थी कि "मैं उसके पास जाऊँगा।" यद्यपि सम्भव है कि यह केवल दाऊद की मृत्यु के विषय में है, किन्तु इस बात की अधिक सम्भावना है कि यहाँ वह भविष्य में अपने पुत्र से पुनर्मिलन की आशा की बात कर रहा है। भविष्य के पुनर्मिलन की यह आशा एक महिमामय आशा है, जो नए नियम में पाई जाने वाली पुनरुत्थान की शिक्षा पर आधारित है।

क्या दुःख उठाने में स्वतन्त्र इच्छा की कोई भूमिका है? उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति धुम्रपान करता है और फिर कर्करोग से मर जाता है, क्या उसका दुःख उठाना परमेश्वर की ओर से बुलाहट है? क्या यह ईश्वरीय न्याय है? या क्या यह उस व्यक्ति के जोखिम लेने के कारण संयोगवश हो गई?

यह प्रश्न बताई गई पीड़ा के तीन सम्भावित स्पष्टीकरणों को सूचीबद्ध करता है। इनमें से एक को तो हम पूर्णतः नकार सकते हैं। यदि परमेश्वर सम्प्रभु है, तो कुछ भी केवल संयोग से नहीं होता है। किसी भी प्रकार की संयोगिक घटना परमेश्वर की सम्प्रभु इच्छा के बाहर होगी। यदि कोई भी घटना परमेश्वर की सम्प्रभु इच्छा के बाहर होती, तो परमेश्वर को सम्प्रभु कहना एक विरोधाभास होता। जैसे कि मैंने कहीं और लिखा है, यदि सम्पूर्ण सृष्टि में एक भी ऐसा अकेला अणु है जो परमेश्वर की सम्प्रभुता से स्वतन्त्र होकर घूम रहा है, तो हमारे पास कोई निश्चयता नहीं है कि परमेश्वर द्वारा की गई कोई भी प्रतिज्ञा पूरी होगी। वह एक अकेला अणु ही परमेश्वर की अनन्त योजनाओं में बाधा डालने वाला हो सकता है। केवल जानवरों और मनुष्यों की योजनाएँ ही नहीं, परन्तु सृष्टिकर्ता की योजनाएँ भी पथभ्रष्ट हो सकती हैं।

यदि परमेश्वर सम्प्रभु नहीं है, तो परमेश्वर, परमेश्वर नहीं है। कोई अ-सम्प्रभु परमेश्वर, परमेश्वर ही नहीं है। एक अ-सम्प्रभु परमेश्वर एक नाममात्र राजा के समान होता, जो शासन तो करता है परन्तु राज्य नहीं करता है। यह बात सत्य है कि मनुष्यों के पास स्वतन्त्र इच्छा है, परन्तु हमारी स्वतन्त्र इच्छा सीमित है। यह सर्वदा परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छा द्वारा सीमित होती है। परमेश्वर की स्वतन्त्र इच्छा तो सम्प्रभु स्वतन्त्र इच्छा है। हमारी स्वतन्त्र इच्छा अधीनस्थ *(subordinate)* स्वतन्त्र इच्छा है।

जब मैं कहता हूँ कि दुःख उठाना एक बुलाहट है, मेरा विचार यह है कि परमेश्वर उन सब बातों

पर सम्प्रभु है जो हमारे साथ होती हैं। यह हमारी स्वतन्त्र इच्छा और हमारे उत्तरदायित्व को रद्द नहीं करता है।

प्रश्न अभी भी बना हुआ है कि क्या वर्णित दुःख परमेश्वर की बुलाहट है या फिर परमेश्वर का न्याय? यहाँ हम एक झूठी दुविधा *(false dilemma)* का सामना करते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि दोनों में से एक ही ठीक हो। परमेश्वर द्वारा दुःख उठाने के लिए बुलाहट, उसी समय में न्याय का कार्य भी हो सकता है।

हम उस रात्रि की बुलाहट को स्मरण करते हैं जो शमूएल के पास तब आई जब वह एली के अधीन सेवा कर रहा था। परमेश्वर ने शमूएल पर प्रकट किया कि वह एली के घराने पर अपना पवित्र न्याय लाने वाला था। एली ने फिर शमूएल से विनती की कि वह उसे बताए कि परमेश्वर ने क्या प्रकट किया था: 'यहोवा ने तुझसे क्या बात कही है? मुझसे कुछ भी मत छिपा। उसने जो वचन तुझसे कहे हैं उनमें से यदि तू मुझसे कुछ भी छिपा रखे तो परमेश्वर तुझसे वैसा ही, वरन् उससे भी अधिक करे।' इसलिए शमूएल ने उसे सब कुछ बता दिया, और उससे कुछ भी छिपा न रखा। तब एली ने कहा, 'वह तो यहोवा है। जो उसको भला लगे वही वह करे'" (1 शमूएल 3:17-18)।

एली ने परमेश्वर के न्याय को पहचाना। उसने पहचाना कि वह धर्मी न्याय था। उसने स्वयं को उसके अधीन किया। यहाँ उसने अपनी बुलाहट को स्वीकारा, जो ऐसी ताड़ना सहने की बुलाहट थी जिसमें दुःख उठाना सम्मिलित था।

इसी प्रकार, जब नातान ने दाऊद से कहा कि दाऊद ने पाप किया है तो दाऊद ने पश्चात्ताप किया। दाऊद के जीवन को छोड़ दिया गया, परन्तु उसके पुत्र को नहीं छोड़ा गया: "तब दाऊद ने नातान से कहा, 'मैंने यहोवा के विरुद्ध पाप किया है।' नातान ने दाऊद से कहा, 'यहोवा ने भी तेरे पाप को दूर कर दिया है, तू नहीं मरेगा। फिर भी अपने इस कार्य के द्वारा तू ने यहोवा के शत्रुओं को निन्दा करने का अवसर दिया है। इसलिए तेरा यह पुत्र भी, जो उत्पन्न हुआ है, निश्चय मर जाएगा'" (2 शमूएल 12:13-14)।

बाइबल में हमें बताया गया है कि दाऊद ने बालक के लिए फिर परमेश्वर से विनती की। उसने उपवास रखकर प्रार्थना की। परन्तु परमेश्वर ने कहा 'नहीं'। सातवें दिन वह पुत्र मर गया। दाऊद की प्रतिक्रिया क्या थी? "अतः दाऊद ने भूमि पर से उठकर स्नान किया, तेल लगाया और कपड़े बदले। फिर उसने यहोवा के भवन में जाकर आराधना की" (2 शमूएल 12:20)।

दाऊद ने अपने दुःख के मध्य परमेश्वर की आराधना की। वह निश्चय ही जानता था कि वह परमेश्वर के सुधारात्मक न्याय के अधीन दुःख उठा रहा था। दाऊद ने धार्मिकता से परमेश्वर की बुलाहट को अपनाया।

दाऊद की प्रतिक्रिया अय्यूब की प्रतिक्रिया के समान है जब अय्यूब ने कहा: "मैं अपनी माँ के

गर्भ से नंगा निकला और नंगा ही चला जाऊँगा, यहोवा ने दिया और यहोवा ही ने लिया: यहोवा का नाम धन्य हो" (अय्यूब 1:21)।

कई लोगों ने मृत्यु से सजीव किए जाने के पश्चात् जिन सूक्ष्म प्रक्षेपण, "सुरंग-समान" अनुभवों का वर्णन किया है, उन्हें आप कैसे समझाएँगे।

इस घटना की पूरी व्याख्या देना मेरे लिए सम्भव नहीं है। इस पर काफी शोध हो चुका है, लेकिन परिणाम, कम से कम कहने के लिए, परिकल्पनात्मक ही हैं। मैंने सुना है कि नैदानिक मृत्यु के पश्चात् सीपीआर या अन्य उपायों द्वारा पुनर्जीवित किए गए लोगों में से 50 प्रतिशत किसी प्रकार के विचित्र अनुभव की बात करते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें ऐसा लगा कि वे छत से नीचे देख रहे थे और उन्होंने अपने शरीर को लेटा हुआ देखा जब डॉक्टर या नर्स कार्य कर रहे थे। कुछ लोगों ने कहा कि वे एक बड़े सुरंग में जा रहे थे जो अद्भुत प्रकाश से भरी हुई थी।

ऐसे अनुभव के अधिकाँश वर्णन सकारात्मक रहे हैं। परन्तु अन्य लोगों ने कहा कि उनका अनुभव भयानक और अशुभ था जिनके कारण वे इस बात के विषय में सोचने के लिए बाध्य हुए कि मृत्यु के पश्चात् उनके साथ क्या होगा।

इन अनुभवों को धार्मिक रीति से समझाया जाना इस तथ्य से जटिल हो जाता है कि विश्वासी और अविश्वासी लोग दोनों ने ही उन सकारात्मक अनुभवों का वर्णन किया है।

इन परिघटनाओं को कई प्रकार से समझाने के प्रयास किए गए हैं। एक है कि यह एक प्रकार का मतिभ्रम *(hallucination)* है जो औषधियों या मस्तिष्क में लघु परिपथ *(short circuits)* के कारण होता है, जैसा कि पुर्वानुभव भ्रान्तीयों *(déjà vu)* को समझाया जाता है। इसको समझाने का एक और ढंग इस बाइबलीय अभिपुष्टि पर आधारित है कि मृत्यु के पश्चात् भी जीवन है। मसीहियों के रूप में हम विश्वास करते हैं कि आत्मा मृत्यु के पश्चात् भी जीवित रहती है। शारीरिक जीवन के रुक जाने के पश्चात् भी व्यक्तिगत अस्तित्व बना रहता है। भले ही हम अच्छे हों या बुरे, छुड़ाए गए या नहीं, आत्मा का जीवन बना रहता है।

मुझे ये वर्णन रुचिकर लगते हैं और भविष्य में इनके वैज्ञानिक विश्लेषण को देखना चाहता हूँ। परन्तु मैं धनी मनुष्य और लाज़र के दृष्टान्त को अपने सामने रखता हूँ, जिसमें यह चेतावनी पाई जाती है, "यदि वे मूसा और नबियों की नहीं सुनते तो वे उसकी भी, जो मृतकों में से जीवित होकर उनके पास जाए नहीं सुनेंगे" (लूका 16:31)

लोग भूत-सिद्धि करने वालों के माध्यम से मरे हुए लोगों से सम्पर्क बनाने का प्रयास क्यों करते हैं? क्या ऐसे प्रयास वास्तव में कार्य करते हैं?

मृत्यु के पश्चात् जीवन के बने रहने के लिए हम ठोस और स्पर्शनीय प्रमाण की लालसा करते हैं। हमें आश्वासन चाहिए कि कोई व्यक्ति मरने के पश्चात् लौट आया है, या कम से कम कि उसने हमें मृत्यु पार से कोई सन्देश भेजा है। परन्तु अवैध माध्यम से आश्वासन प्राप्त करने के ऐसे प्रयास जोखिम से भरे हुए हैं।

प्रेत विद्या का किया जाना, जिसे "प्रेतात्मवाद" *(spiritualism)* कहा जाता है, दिखाता है कि मृत्यु के उस पार से जानकारी प्राप्त करने के लिए मनुष्यों की इच्छा कितनी गहरी है। प्रेतात्मवादियों *(spiritualists)* के प्रेताह्वान बैठक *(séances)* भूत-सिद्धि-संचार, मेज़ के खटखटाने और बाह्य द्रव्य *(ectoplasm)* के भूत जैसे आकारों के माध्यम से इस प्रकार की जानकारी देने की प्रतिज्ञा करते हैं।

पुराना नियम इस प्रकार के कार्यों को परमेश्वर के सामने घृणित कहता है। इस्राएल देश में इसके लिए मृत्यु-दण्ड का प्रावधान था। नया नियम भी पुराने नियम के समान तन्त्र-मन्त्र और जादू-टोना के विरुद्ध है, जैसा कि हम प्रेरितों के काम की पुस्तक में उस समय देखते हैं जब प्रेरित ऐसी विधियों का सामना करते हैं।

यह रुचिकर है कि बाइबल में एक कहानी का वर्णन पाया जाता है जिसमें प्रतीत होता है कि एनदोर की भूत-सिद्धि करने वाली स्त्री शाऊल राजा के कहने पर शमूएल नबी के भूत को बुलाती है (1 शमूएल 28)। सुनने में वृत्तान्त ऐसा ही लगता है कि वास्तव में किसी मृतक व्यक्ति से सम्पर्क किया गया था। परन्तु क्या वहाँ यही हुआ था?

मैं इस वृत्तान्त को समझने के तीन सम्भव ढंगों को देखता हूँ। पहला, यह एक शैतानी आश्चर्यकर्म का विवरण है। दूसरे शब्दों में उस मायाविनी ने शैतान की सामर्थ्य से शमूएल को बुलाया होगा। बाइबल कहती है कि शैतान के पास "चिह्न और झूठे आश्चर्यकर्म" करने की सामर्थ्य है (2 थिस्सलुनीकियों 2:9)। परन्तु यहाँ बल *आश्चर्यकर्म* शब्द पर नहीं वरन् *झूठे* विशेषण पर है। शैतान सच्चे नहीं वरन् झूठे आश्चर्यकर्म करता है। और मृत्यु की कुँजियाँ परमेश्वर के पास हैं न कि शैतान के पास। यदि शैतान के पास सच्चे आश्चर्यकर्म करने की सामर्थ्य होती भी, तो वह अपनी सामर्थ्य को वहाँ उपयोग नहीं कर सकता जहाँ परमेश्वर ने उसे करने की अनुमति नहीं दी।

दूसरा, यह वृत्तान्त केवल उस घटना का एक सच्चा विवरण भी हो सकता है जैसा कि वह प्रतीत हुई थी। बाइबल प्रायः "दृश्यघटनाविज्ञानीय" *(phenomenological)* भाषा का उपयोग

करती है, अर्थात् ऐसी भाषा जो घटनाओं का ऐसे वर्णन करती है जैसे वे *आँखों को प्रतीत होती* हैं। इस परिदृश्य में शमूएल का तथाकथित बुलाया जाना सम्भवतः चतुराई से की गई कोई चाल हो सकती है जिसे शाऊल ने वास्तविक माना।

तीसरा, सम्भवतः वृत्तान्त यहाँ पर एक वास्तविक भूत-सिद्धि के द्वारा बुलाई गई आत्मा को प्रस्तुत कर रहा। बाइबल इस बात की पूर्ण पुष्टि नहीं करती है कि शमूएल को वास्तव में मृत्यु से बुलाया गया था, परन्तु वह इसका खण्डन भी नहीं करती है। परन्तु, यदि मायाविनी ने शमूएल को सच में बुलाया भी, तो उसकी सफलता का यह अर्थ नहीं है कि प्रेतात्मवाद उचित है। एनदोर की मायाविनी कुछ ऐसा कार्य करने की दोषी थी जो इज़राइल में मृत्युदण्ड देने योग्य अपराध था, भले ही वह कपटपूर्ण हो या वास्तविक।

मेरा मानना है कि शमूएल को बुलाना वास्तव में हुआ ही नहीं, वरन् यह एक छलभरी चाल थी। मेरा मानना है कि एनदोर की मायाविनी छल कर रही थी, और मैं सोचता हूँ कि इस प्रकार के सभी भूत-सिद्धि करने वाले ऐसा ही करते हैं। यह निर्विवादित है कि कई प्रेतात्मवादियों को छल करने वालों के रूप में उजागर कर दिया गया है परन्तु किसी की भी प्रमाणिकता सिद्ध नहीं हुई है।

यदि हम मृत्यु के उपरान्त के जीवन की पुष्टि चाहते हैं, तो जादू-टोना या तन्त्रविद्या के संसार से भी उत्तम एक स्थान है जहाँ हम इसे ढूँढ़ सकते हैं। हम दार्शनिकों की परिकल्पनाओं, तन्त्रविद्या करने वालों की निरर्थक बातों और मायावादियों के हस्तकौशल से बढ़कर आगे जा सकते हैं। हम नए नियम के पास, यीशु के शब्दों और कार्यों के पास जा सकते हैं। उसके शब्द छल की बातों से परे हमें गम्भीर, ऐतिहासिक सत्य के क्षेत्र में लाते हैं, और उसके कार्य (उसके आश्चर्यकर्म) उसके शब्दों को प्रमाणित करते हैं।

वचन सूचकाँक

उत्पत्ति

3:15 16
4:16–17 118
50:20 31

निर्गमन

28:15 125

गिनती

11:15 8
12:9–10 30

व्यवस्थाविवरण

11:26–28 129

1 शमूएल

3:17–18 142
28 144

2 शमूएल

12:13–14 142
12:20 142
12:22–23 141

1 राजा

6:20 124
17:19 87

अय्यूब

1:21 142
2:8–10 32
3:11–13 8
6:8–9 135–36
13:15 33
14:14 73
16:2–5 32

भजन संहिता

23:4 54
27:13 10, 56
42:1–2 121
46:1–3 116–17
46:4 117
51:5 140
94:3 30
130:3 64

सभोपदेशक

3:1–2a 49
3:12 37
3:14 37
7:2–3 40
7:13 37, 41
9:1 37

यशायाह

1:3 138
40:6 72
53 19, 20
53:3 18, 41
53:11 8
60:29 126

यिर्मयाह

8:11 60
20:14–15 8

20:18 8
23:16–17 61

यहेजकेल

3:17–19 59
47:8–12 128
48:35 119

मत्ती

1:21 62
3:7 62
4:19 86
5:6 121
5:8 131
7:28–29 92
11:28–30 3
16:15 15
16:16 15
16:17–18 15
16:21 15
16:22 15
16:23 15
19:14 140
25:31–46 61
26:37 13
26:38 16
26:39 16
28:18 91

मरकुस

9:24 88
14:58 126

लूका

2:29–30 135
2:34–35 16
2:48 88
2:49 16, 88
7:11–15 94
8:17 61
8:40–42 94
8:49–56 94
12:2–3 61
16:22 56
16:25–26 105–6
16:27–28 106
16:31 143
22:37 20
22:42 17
22:44 16
23:30 62
23:35 94
23:41 138
23:43 106

यूहन्ना

1:14 119
2:16 88
2:19–22 126
3:31–34 91
4:10–14 121
4:22 123
7:16 91
7:28–29 91
7:44–46 92
8:12 127
8:24 59
8:26–28 91
9:1–3 29
11:24 93
11:25–26 93
11:44 94
13:21 85
13:33 86, 89
13:36 86
14 85, 87
14:1 87
14:1–3 85
14:2 88, 89
15:11 41
20:15 95
20:19 112
20:26 112
20:27 111–12

प्रेरितों के काम
8:26–35 18–19
9:4 22
रोमियों
5:3–5 35
8:18 44, 132
8:19–21 139
8:22–23 8
1 कुरिन्थियों
13:11 90
15:3–8 101
15:12 96
15:13 96
15:14 96
15:15 97
15:17 97
15:18 98
15:19 100
15:20–23 109
15:29 99
15:30–32 99
15:32 100
15:35–38 109–10
15:39–41 110
15:42–44 110–11
15:45–49 112–13
15:50–54 113–14
15:58 102
2 कुरिन्थियों
1:8–10 10–11
4:8–10 1
4:17–5:5 109
11 99
इफिसियों
1:15–19 133
2:20 123
फिलिप्पियों
1:19–24 108
1:21–24 136
1:23 108
कुलुस्सियों
1:24 6, 20, 21
1 थिस्सलुनीकियों
1:10 62
4:13–18 57–58
2 थिस्सलुनीकियों
2:9 144
2 तीमुथियुस
2:11–12 21
4:7 52
इब्रानियों
2:3 65
3:12–19 65
3:19 65
4:4–11 67
4:14–16 67
9:11 118
9:27 49, 66
10:1 21
10:10 21
11:9–10 118
11:13–16 67
1 पतरस
1:6–9 7
4:12–13 6
4:15–16 6
4:19 6
1 यूहन्ना
3:1–2 130
प्रकाशितवाक्य
1:17–18 50
4:3 122
6:9–11 106
13 116
17 122
19:6 82
21:1 115

21:2	117	21:18	124
21:3	118	21:19–20	124–25
21:4	119	21:21	124, 125
21:5	120	21:22	126
21:6	120	21:23	126
21:7–8	121	21:24–27	127
21:9–11	122	22:1–2	127
21:12–13	122	22:3	128–29
21:14	123	22:4	129
21:15–17	123	22:5–6a	131–32

विषय सूचकाँक

Abel, हाबिल, 67
abortion, गर्भपात, 140
abounding in the work of the Lord, प्रभु के कार्य में सर्वदा बढ़ते जाना, 102
Abraham, अब्राहम, 105–6
Adam, आदम, 113
adoption, लेपालकपन, 121
affliction, कष्ट, 44
afterlife, मरणोत्तर जीवन, 73, 103–4, 115
age of accountability, जवाबदेही की आयु, 140
agriculture analogy, किसानी-आधारित उपमा, 110
Alpha and Omega, अल्फा और ओमेगा, 121
American Indians, अमरीकी निवासी, 73
animals, death of, जानवरों की मृत्यु, 138–39
Antichrist, ख्रीष्टविरोधी 121, 128, 131
Apostles' Creed, प्रेरितों का विश्वास वचन, 109
Aristotle, अरस्तू, 95
asceticism, वैराग्य, 139
atonement, प्रायश्चित्त, 22, 51, 98
Augustine, ऑगस्टीन, 51
authority, of Jesus, यीशु का अधिकार, 91–93

Babylon, बाबुल, 122
baptism, for the dead, मृतकों के लिए बपतिस्मा, 99
beatific vision, आनन्दप्रद दर्शन, 129, 130
Ben–Hur (film), बेन-हर (चलचित्र), 131
Bible, "phenomenological" language of, बाइबल की "दृश्यघटनाविज्ञानीय" भाषा, 144
bitterness, कड़वाहट, 53
body, resurrection of, देह का पुनरुत्थान, 109–13

Cain, कैन,118
Calvin, John, कैल्विन, जॉन, 51
Cebes, सेब्स, 76
character, चरित्र, 35
childishness, बचपना, 90
children of unbelievers, अविश्वासियों के बच्चे, 140
church, as body of Christ, ख्रीष्ट की देह के रूप में कलीसिया, 21–22
Cicero, सिसरो, 95
city, image of, नगर का चित्रण, 117–18
cognition, बोध, 138
comfort, सान्त्वना, 18, 54, 93, 137
consciousness, चेतना, 77
consolation, सान्त्वना, 93, 98, 119–20
consummation, of divine redemption, ईश्वरीय छुटकारे का सम्पन्न होना, 129
continuity of conscious awareness, सचेत जागरूकता की निरन्तरता, 77
corruption, विनाश, 113–14
courage, साहस, 84
creation, redemption of, सृष्टि का छुटकारा, 115–16, 138
curse, removal of, शाप का हटाया जाना, 128–32

Damascus Road, दमिश्क का मार्ग, 22
Dante Alighieri, दाँते एलीगियरी, 98
darkness, banishment of, अन्धकार का हटाया जाना, 131–32
David, दाऊद, 10, 51, 54–55, 64, 141, 142
Day, Doris, डे, डॉरिस, 73
death मृत्यु,
  of a Christian, मसीही का, 39
  as consequence of sin, पाप के परिणामस्वरूप, 30

with dignity, गरिमा के साथ, 9, 48–49, 52
as gain, लाभ के रूप में, 108
of a pessimist, निराशावादी की, 39
as separation, अलगाव के रूप में, 86
and spiritual state, और आत्मिक दशा, 59
as a vocation, बुलाहट के रूप में, 49–52, 54
depression, अवसाद, 137
desire, इच्छा, 78–79
despair, निराशा, 7–8, 11, 83, 137
and suicide, और आत्महत्या 9
dignity, गरिमा, 48, 52
disciples, चेले, 87, 89
disease, रोग, 5, 49
disobedience, अनाज्ञाकारिता, 129
Dostoevsky, Fyodor, दोस्तोयेव्स्की, फ़्योदर, 78, 80, 82
doubt, सन्देह, 1, 88, 132
dualism, द्वैतवाद, 50
duty, कर्तव्य, 78–79
dying, in faith vs. in sin, विश्वास में अथवा पाप में मरना, 58–67

Eastern religion, पूर्वी धर्म, 74
Ecclesiastes, सभोपदेशक, 37–45, 49, 81
education, शिक्षा, 90
Egyptians, मिस्री, 73
either/or fallacy, झूठे विभाजन का तर्कदोष, 29–30, 97
Eli, एली, 142
Elijah, एलिय्याह, 86–87
Enoch, हनोक, 67
Epicureanism, भोगवाद 100
eternal vs. temporal, अनन्त अथवा अल्पकालिक, 109
ethics, नीतिशास्त्र, 79, 83
Ethiopian eunuch, कूश देश का खोजा, 18–19
euthanasia, इच्छामृत्यु, 9
evil, triumph over, बुराई पर विजय, 31–32, 38
exousia, *एक्सूसिया,* 92, 93
eyewitness testimony, and resurrection, प्रत्यक्षदर्शियों की साक्षी और पुनरुत्थान, 100–102
faith, विश्वास, 1, 64, 87–88, 133
blind, अन्धा, 34–35
implicit, सहज, 34
purified by suffering, दुःख द्वारा शुद्ध किया गया, 7
fall, पतन, 113, 129
false dilemma, fallacy of, झूठी दुविधा का तर्कदोष, 29–30, 31, 97, 142
false hope, झूठी आशा, 99–100
false prophets, झूठे नबी, 60–61
false witness, झूठी साक्षी, 97
Falwell, Jerry, फॉलवेल, जेरी, 43
family of God, परमेश्वर का परिवार, 121
Father's house, पिता का घर, 88–89
free will, स्वतन्त्र इच्छा, 141
"fruitful moment," "फलदायक क्षण," 33
futility, व्यर्थता, 121
future, भविष्य, 73–74

Garden of Eden, अदन की वाटिका, 127
Garden of Gethsemane, गतसमनी की वाटिका 16, 17–18, 23, 85
Gerstner, John, गर्स्टनर, जॉन, 58–59
glory, महिमा, 110–11
God, परमेश्वर
existence of, का अस्तित्व, 83
face of, का मुख, 131
and future, और भविष्य, 73
as God of the living, जीवितों का परमेश्वर, 56
goodness of, की भलाई, 38
hand of, का हाथ, 44
holiness of, की पवित्रता, 124
as just, धर्मी, 63
mercy of, की दया, 64
omnipotence of, की सर्वशक्तिमत्ता, 50, 82

omniscience of, का सर्वज्ञान, 82
providence of, का ईश्वरीय-प्रावधान, 42–44
sovereignty of, की सम्प्रभुता, 7, 37–38, 41–42, 44–45, 50, 136, 141
as trustworthy, की विश्वसनीयता, 34
will of, की इच्छा, 7, 17–18
gold, of New Jerusalem, सोना, नए यरूशलेम का, 124
good, and evil, भलाई, और बुराई, 50
Graham, Billy, ग्राहम, बिली 60, 136
Graham, Tom, ग्राहम, टॉम 59
Great Shepherd, महान् चरवाहा, 54–55
Greek alphabet, यूनानी वर्णमाला, 120
Greeks, यूनानी, 73, 74–76
grief, शोक, 1, 5

Hades, पाताललोक, 73
hallucination, मतिभ्रम, 143
Hamlet, हैमलेट, 103–4
healing, चंगाई, 50, 51, 128
Hearst mansion, हर्स्ट मैनशन, 124
heaven, स्वर्ग, 88–91, 113 नया आकाश और नई पृथ्वी; नया यरूशलेम भी देखें
Herder, Johann, हर्डर, योहान्न, 33
Hippocratic Oath, हिप्पोक्रेट्स की शपथ, 9
hope, आशा, 35, 84, 98, 133
house of mirth, उत्सव का घर, 40–41
house of mourning, शोक का घर, 40–41, 44–45
human life, sanctity of, मानव जीवन की बहुमूल्यता 10
humility, नम्रता, 18
"hypothetical imperative," "कल्पित कर्तव्यादेश" 79

illness, अस्वस्थता, 5
terminal, प्राणघातक, 48
image of God, परमेश्वर का स्वरूप, 130–31, 138
imitation of Christ, ख्रीष्ट का अनुसरण करना, 138
incarnation, देहधारण, 14, 119
incorruption, अविनाशी 111, 113–14
infant death, शिशु की मृत्यु, 140–41
injustice, अन्याय, 30, 63–64
instinct, मूल वृत्ति, 138
intermediate state, मध्यवर्ती अवस्था, 104–9

Jairus' daughter, याईर की बेटी, 94
Jeremiah, यिर्मयाह, 8, 60–61, 136
Jerusalem, यरूशलेम, 118, 122–23
Jesus Christ, यीशु ख्रीष्ट
ascension of, का स्वर्गारोहण, 58
as Author and Finisher of our faith, हमारे विश्वास का कर्ता और सिद्ध करने वाला, 121
authority of, का अधिकार, 91–93
birth of, का जन्म, 58
as conqueror of death, मृत्यु पर विजेता, 51
as cornerstone, कोने का पत्थर, 123
death of, की मृत्यु, 58, 107
exaltation of, की महिमा, 21
humiliation of, का अपमान, 21
merit of, का मूल्य, 21
passion of, का दुःख-भोग, 13
prayer of, की प्रार्थना, 17–18
resurrection of, का पुनरुत्थान, 58, 94–95
return of, का पुनः आगमन, 57–58, 121
righteousness of, की धार्मिकता, 64
suffering of, का दुःख उठाना, 13–16, 23
"tabernacled," "निवास किया", 119
teaching on afterlife, मरणोत्तर जीवन की शिक्षा, 85–91
as temple, मन्दिर, 126–28
jewels, of New Jerusalem, नए यरूशलेम के बहुमूल्य पत्थर, 125
Jews, यहूदी, 73
Job, अय्यूब, 8, 29–34, 38, 135–36, 142
John the Baptist, यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला, 62–63,

91
Joseph, यूसुफ, 31–32, 51
joy, in suffering, दुःख में आनन्द, 41, 45
judge, न्यायाधीश, 81–82
judgment, न्याय, 43, 62–63, 81, 115, 129, 141, 142
justice, न्याय, 31, 63–64, 78, 80–81
  proximate, निकटस्थ, 81
  ultimate, मूलभूत, 78, 80, 81
justification, धर्मीकरण, 64

Kant, Immanuel, कान्ट इमानुएल, 63, 79, 80, 81, 83, 101, 102
Kierkegaard, Søren, कीर्कगार्ड, सॉरन, 8

last judgment, अन्तिम न्याय, 61–63
laughter, and sorrow, 41
Lazarus, death of, लाज़र की मृत्यु, 51, 93–94
liberal Christianity, उदारवादी मसीहियत, 95, 96
life after death, मृत्यु के बाद का जीवन, 56, 73, 80.
life support, ordinary and extraordinary means, साधारण और असाधारण जीवन अवलम्ब के साधन, 10
light, ज्योति, 126–27
love, प्रेम, 133
Luther, Martin, लूथर, मार्टिन, 21, 51

MacLaine, Shirley, मक्लेन, शर्ली, 74, 76
magic, टोना, 145
Manichaeism, मानी धर्म, 139
Martha, मार्था, 93
martyrs, शहीद, 22, 106
Marx, Karl, मार्क्स, कार्ल, 4
Mary, मरियम, 93
Mary Magdalene, मरियम मगदलीनी, 95
masochism, स्वपीड़न रति, 139
McClure, Don, डॉन मक्ल्यूर 55–56
medical profession, चिकित्सा पेशा, 9
Mediterranean Sea, भूमध्य सागर, 116
mediums, भूत-सिद्धि करने वाले, 143–45
Melville, Herman, मेलविल, हरमन, 40
Meno, मेनो, 75
Michelangelo, माइकल एंजेलो, 33
Miriam, मरियम, 30
moral obligation, नैतिक बाध्यता, 78, 79, 80
Moses, मूसा, 8, 51, 136
mystery, रहस्य, 140
myth, and reality, मिथ्या और वास्तविकता, 90

Nathan, नातीन, 142
necromancy, प्रेत विद्या, 144
new Adam, नया आदम, 113
new heaven and new earth, नया आकाश और नई पृथ्वी, 115–16, 131–32
New Jerusalem, नया यरूशलेम, 117–19, 120, 122–25, 126–28
nihilism, विनाशवाद, 83
Noah, नूह, 67
Norse, स्कैंडिनेवियाई लोग, 73
Nunc Dimittis, *नुन्क डिमिट्टिस*, 135

occult, तन्त्रविद्या, 145
ointment, बहुमूल्य इत्र, 38–39
"Old Man River" (song), "ओल्ड मैन रिवर" (गीत), 39
original sin, मूल पाप, 140
"ought," "कर्तव्य," 78–81
out-of-body experiences, सूक्ष्म प्रक्षेपण, 143

pain, पीड़ा, 1, 4, 5, 6, 44, 49, 105, 120, 131
participating in Jesus' suffering, यीशु के दुःख में भाग लेना, 20–23
Pascal, Blaise, पास्कल, ब्लेज़, 103, 104
Paul, पौलुस, 3, 51
  on despair, निराशा के विषय में, 10–11
  on intermediate state, मध्यवर्ती अवस्था के विषय

में, 108–9
on the resurrection, पुनरुत्थान के विषय में, 96–102
on suffering, दुःख उठाने के विषय में, 1, 20–21
peace, in mourning, शोक में शान्ति, 41
"pearly gates," "मोतियों के फाटक," 125
perplexity, over suffering, दुःख के कारण उलझन 5, 7–8, 10
persecution, सताव, 1, 44, 137
perseverance, अटलता, 35, 52–54
pessimism, निराशावाद, 39
Peter, पतरस, 86–87
rebuke of, की फटकार, 14–16
on suffering, दुःख उठाने के विषय में, 6
Phaedo, *फेडो,* 74–75
Pharisees, फरीसी, 62
Philip, फिलिप्पुस 18–19
Philistines, पलिश्ती, 117
Pittsburgh, पिट्सबर्ग, 125
Plato, प्लेटो, 74–76, 81, 101, 102
Poe, Edgar Allan, पो, एडगर ऐलन, 99
prayer, प्रार्थना, 17–18
preaching, and resurrection, प्रचार, और पुनरुत्थान, 96–97
Protevangelium, *प्रोटोएवैंगेलियुम*, 16
purgatory, पापशोधन-स्थल, 66
Pythagoreans, पाईथागोरसवादी, 74

rapture, मेघारोहण, 58
reality, and myth, वास्तविकता, और मिथ्या, 90
recognition, in heaven, स्वर्ग में पहचाना जाना, 113
recollection theory, स्मरण का सिद्धान्त, 75
redemption, of creation, सृष्टि का छुटकारा, 115–16, 138
Reformation, धर्मसुधार, 21
reincarnation, पुनर्जन्म, 74–77
Rembrandt, रेमब्रैन्ट, 33
repentance, पश्चात्ताप, 65
responsibility, and divine sovereignty, उत्तरदायित्व और ईश्वरीय सम्प्रभुता, 141
resurrection, पुनरुत्थान, 93–94, 95, 141
of body, देह की, 109–13
rich man and Lazarus, धनी मनुष्य और लाज़र, 105–6
Rip Van Winkle, रिप वैन विंकल, 105
Rodin, रोडैन, 33
Roman Catholic Church, रोमन कैथोलिक कलीसिया, 21, 66

Sadducees, सदूकी, 62
salvation, उद्धार, 62, 64–65, 137
Samaritan woman, सामरी स्त्री, 121
Samuel, शमूएल, 142, 144, 145
Satan, शैतान, 144
and suffering, और दुःख, 49–52
sea, in new heaven and new earth, नए आकाश और नई पृथ्वी में समुद्र, 116–17
séances, प्रेताह्वान बैठक, 144
self-flagellation, स्वयं को कोड़े मारना, 139
self-interest, स्वार्थ, 78
self-justification, स्व-धर्मीकरण, 65
self-pity, आत्मदया, 53
"senseless tragedy," "निरर्थक त्रासदी," 42–43
September 11 terrorist attacks, सितम्बर 11 का आतंकवादी आक्रमण, 42
shame, and suffering, लज्जा, और दुःख उठाना, 6
sharing the suffering of Christ, ख्रीष्ट के दुःख उठाने में सहभागी होना, 137
Sheol, अधोलोक, 73
Simeon, शमौन, 135
sin, and suffering, पाप, और दुःख उठाना, 29–31, 138, 140
sleep, death as, नींद के रूप में मृत्यु, 105
Socrates, सुकरात, 74–76, 81, 83, 95
sorrow, शोक

end of, का अन्त, 119–20
and laughter, और हँसी, 41
soul, प्राण, 74, 76, 138
soul sleep, प्राण निद्रा, 105, 107
spiritual body, आत्मिक देह, 111–13
spiritualism, प्रेतात्मवाद, 144–45
Sproul, Charles, स्प्रोल, चार्ल्स, 71–72
steadfastness, अटलता, 102
stillborn, मृत जन्मा, 98
Stoicism, स्तोईकीवाद, 2
"streets of gold," "सोने की सड़कें" 125
submission, अधीनता, 18
subordination, अधीनता, 18
suffering, दुःख उठाना, 1, 23, 44, 131
avoiding, से बचना, 139
of criminals, अपराधियों का 6
as a crucible, भट्टी, 7
joy of, का आनन्द,45
as judgment, न्याय के रूप मे, 142
and sin, और पाप, 29–31, 138, 140
as vocation, बुलाहट के रूप में, 141
suffering servant, दुःख उठाने वाला दास, 16, 18–20
suicide, आत्महत्या, 9, 136–37

tears, आँसू, 119–20
temple, मन्दिर, 88, 124
temporal vs. eternal, अल्पकालिक और अनन्त, 109
Ten Commandments, दस आज्ञाएँ, 97
theism, ईश्वरवाद, 83
theophany, ईश्वरदर्शन, 130
thief on the cross, क्रूस पर डाकू, 106–7, 138
Thomas, थोमा, 111–12
Tiamat, तियामत, 116
tragedy, त्रासदी, 42–44, 49
transformation, of bodies, देह का रूपान्तरण 113–14
"transmigration of the soul," "प्राण का देहान्तरण," 74
treasury of merits, योग्यताओं का कोष, 21
tree of life, जीवन का वृक्ष, 128
tribulation, क्लेश, 35
trust, भरोसा, 88

unbelief, अविश्वास, 65–66
unforgivable sin, अक्षम्य पाप, 137

Valhalla, वालहला, 73
valley of the shadow, घोर अन्धकार की तराई, 54–56
vanity, व्यर्थता, 121
Via Dolorosa, *दुःख का मार्ग*, 16, 21, 23
virtue, of suffering, दुःख उठाने का सद्गुण, 139–40
virtues, सद्गुण,133
vocation, बुलाहट, 49, 134
death as, मृत्यु की, 49–52, 54
suffering as, दुःख की, 141

wall of Jerusalem, यरूशलेम की शहरपनाह, 122–23
Wallace, Lew, वॉलेस, लू, 131
"why" of suffering, दुःख उठाने का "क्यों,' 31, 33–34, 43
widow of Nain, नाइन नगर की विधवा, 94
widow of Zarephath, सारपत की विधवा, 86–87
wisdom, बुद्धि, 40, 44, 134
wisdom literature, बुद्धि साहित्य, 38–39, 40
witch of Endor, एनदोर की भूत-सिद्धि करने वाली, 144–45
witness, साक्षी, 22

लेखक के विषय में

डॉ. आर.सी. स्प्रोल लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड, फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर, और रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष, और *टेबलटॉक* पत्रिका के कार्यकारी सम्पादक थे। उनका रेडियो कार्यक्रम, *रिन्यूइंग योर माइंड* अभी भी संसार भर के सैकड़ों रेडियो स्टेशनों पर प्रतिदिन प्रसारित किया जाता और ऑनलाइन भी सुना जा सकता है।

वे एक सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे, जिनमें *द होलीनेस ऑफ गॉड, चोज़ेन बाय गॉड* और *एवरिवन्ज़ अ थियोलोजियन* सम्मिलित हैं। उन्हें संसार भर में पवित्रशास्त्र की अचूकता की सुस्पष्ट रक्षा तथा परमेश्वर के लोगों के लिए उसके वचन पर दृढ़ विश्वास के साथ खड़े होने की आवश्यकता के लिए पहचाना गया था।

रेफर्मेशन ट्रान्स्लेशन फेलोशिप को 1949 में रिफॉर्म्ड प्रेस्बिटेरियन के सुसमाचार प्रचार-प्रसारकों द्वारा दक्षिण चीन में आरम्भ किया गया। धर्मसुधारवादी (रिफॉर्म्ड) संसाधनों की आवश्यकता को देखते हुए, उन्होंने अनुवादकों के एक संघ का आरम्भ किया जो आज तक बना हुआ है। बीते वर्षों में आर.टी.एफ. ने सैकड़ों संसाधनों को चीनी भाषा में अनुवादित किया, और साथ ही साथ उन्होंने लाखों पुस्तकों को प्रकाशित किया जिससे कि चीन देश में और विश्व में धर्मसुधारवादी विश्वास फैल सके। साथ ही साथ, 2022 में आर.टी.एफ. के अनुवाद का कार्य अतिरिक्त भाषाओं में फैला: स्पेनी भाषा, उर्दू, हिन्दी, नेपाली, जपानी, पाश्तो, और पुर्तगाली।

आर.टी.एफ. के ये सब संसाधन http://www.rtf-usa.com/ पर निःशुल्क उपलब्ध हैं।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें:

rtfdirector@gmail.com.

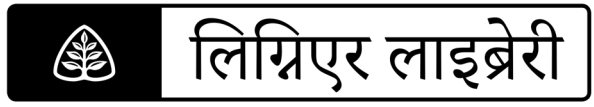

लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ एक अन्तरराष्ट्रीय मसीही शिष्यता संस्था है जिसको डॉ आर.सी. स्प्रोल ने 1971 में संस्थापित किया था जिससे कि जितने अधिक लोगों तक सम्भव हो सके उन तक परमेश्वर की पवित्रता को उसकी पूर्णता में उद्घोषित करें, शिक्षा दें और रक्षा करें। लिग्निएर लाइब्रेरी की मोहर सम्पूर्ण विश्व तथा कई भाषाओं में विश्वसनीयता का चिह्न बन गयी है।

महान आदेश द्वारा प्रेरित होकर, लिग्निएर, शिष्यता के संसाधन को छपे हुए तथा डिजिटल माध्यम से बाँटता है। विश्वसनीय पुस्तक, लेख और वीडियो शिक्षा श्रृंखला चालीस से अधिक भाषाओं में अनुवादित या रिकॉर्ड किए जा रहे हैं। हमारी अभिलाषा है यीशु ख्रीष्ट की कलीसिया का समर्थन करें मसीहियों की यह जानने में सहायता करने के द्वारा कि वे क्या विश्वास करते हैं, वे क्यों विश्वास करते हैं, उन्हें उसके अनुसार कैसे जीना चाहिए, और उसे कैसे बाँटना चाहिए।

HI.LIGONIER.ORG

मार्ग सत्य जीवन

ऑडियो-वीडियो: भारत में कलीसिया की उन्नति के लिए हिन्दी में प्रचार एवं लेखों की ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग उपलब्ध हैं। इसका उद्देश्य है कि विश्वासी तथा कलीसियाएँ सुसमाचार एवं वचन की समझ में बढ़ें और विश्वास में परिपक्व हो सकें। आप इन्हें यूट्यूब youtube.com/@MargSatyaJeevan पर देख व सुन सकते हैं।

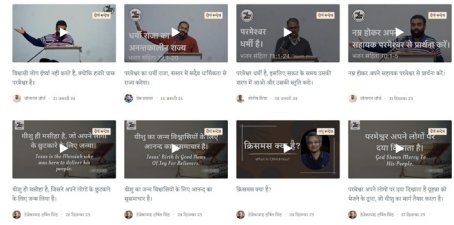

बाइबलीय लेख: margsatyajeevan.com/articles/ पर हिन्दी में खरी शिक्षा पर आधारित लेख उपलब्ध हैं। ये लेख वचन की मुख्य शिक्षाओं को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करते हैं जिससे कि एक नया विश्वासी भी खरी शिक्षा के ज्ञान में वृद्धि करे और पवित्रता का जीवन जिए।

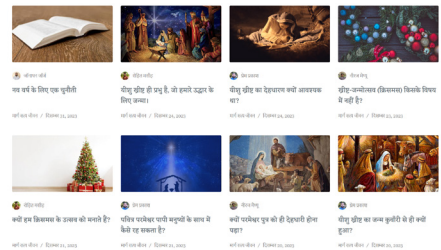

बाइबलीय पुस्तकें: हिन्दी में विश्वासयोग्य बाइबलीय पुस्तकों का अभाव होने के कारण, आपके लिए वचन पर आधारित पुस्तकों को उपलब्ध कराया गया है। आप margsatyajeevan.com/books/ पर कुछ योगदान देने के द्वारा पुस्तकों को प्राप्त कर सकते हैं। हमारी आशा है कि इनके द्वारा आप परमेश्वर के गुणों को देखेंगे, कलीसिया के महत्व को समझेंगे और ख्रीष्ट की समानता में बढ़ेंगे।

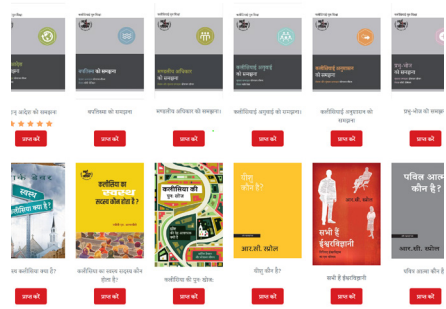

अधिक जानकारी के लिए:

फोन नम्बर: 9696110134
https://margsatyajeevan.com
ई-मेल: enquirymsj@gmail.com

यूट्यूब: Marg Satya Jeevan
इंस्टाग्राम@margsatyajeevan
facebook.com/margsatyajeevann

सत्य वचन सेमिनरी

पास्टरीय सेवकाई के लिए प्रशिक्षण

वर्तमान समय में वचन पर आधारित कलीसियाओं की बड़ी आवश्यकता है, और कलीसियाएँ वचन पर आधारित तब होंगी जब उनके अगुवे बाइबल के अनुसार योग्य तथा उपयुक्त रीति से प्रशिक्षित होंगे। सत्य वचन सेमिनरी इस उद्देश्य के लिए अस्तित्व में है कि पुरुषों को बाइबल के ज्ञान में, स्थानीय कलीसिया की समझ में, व्यावहारिक सेवा के अनुभव में, और ख्रीष्टीय चरित्र में बढ़ाने के द्वारा कलीसियाओं की सहायता करे। यह तीन वर्षीय, आवासीय कार्यक्रम है जिसमें एम.डिव (M.Div) स्तर की पढ़ाई होती है।

सेमिनरी की कुछ विशेषताएँ:

- स्थानीय कलीसिया द्वारा संचालन
- कलीसिया के पास्टरों द्वारा निर्देशन
- स्थानीय भाषाओं में सेवा का प्रोत्साहन
- योग्यता-प्राप्त प्रोफेसरों द्वारा शिक्षण
- व्यावहारिक सेवकाई करने के अवसर
- सम्मेलनों/प्रशिक्षणों में जाने के अवसर
- ईश्वरविज्ञानीय पुस्तकालय की उपलब्धता

पाठ्यक्रम के कुछ विषय:

- पुराने नियम का सर्वेक्षण
- नए नियम का सर्वेक्षण
- विधिवत् ईश्वरविज्ञान
- बाइबलीय ईश्वरविज्ञान
- व्याख्याशास्त्र एवं उपदेश कला
- नए नियम में पुराने नियम का उपयोग
- विभिन्न बाइबलीय पुस्तकों का अर्थनिरूपण
- कलीसियाई इतिहास
- बाइबलीय परामर्श
- आपत्तिखण्डनशास्त्र
- अन्य धर्मों का अध्ययन
- बाइबलीय मूल भाषाओं (यूनानी एवं इब्रानी) का अध्ययन

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें +91 9450810781

आवेदन प्रपत्र भरने के लिए www.svsem.org वेबसाइट पर जाएँ।

सत्य वचन चर्च
पास्टरीय प्रशिक्षुता (इन्टर्नशिप)

परमेश्वर के वचन के अनुरूप पास्टरों की तैयारी के लिए, बाइबल के अध्ययन के साथ-साथ, व्यावहारिक सेवकाई में अनुभव तथा अनुभवी पास्टरों द्वारा शिष्योन्नत्ति की आवश्यकता होती है। भावी पास्टरों में निवेश करने हेतु सत्य वचन चर्च का पास्टरीय प्रशिक्षुता कार्यक्रम पुरुषों को अवसर प्रदान करता है कि वे सत्य वचन चर्च के अगुवों की देख-रेख में स्वयं को सेवकाई के लिए तैयार कर सकते हैं। प्रशिक्षु सत्य वचन चर्च के सदस्य बनते हैं, कलीसिया के अगुवों के साथ समय व्यतीत करते हैं, पुस्तकों को पढ़ते हैं, और विभिन्न प्रशिक्षणों में भाग लेते हैं।

प्रशिक्षुता की विशेषताएँ:

- वचन के ज्ञान में बढ़ना।
- पास्टरीय सेवा को निकटता से देखना।
- कलीसिया के जीवन में सम्मिलित होना।
- स्थानीय कलीसिया के महत्व को समझना।
- कलीसियाई सेवकाई के सौभाग्यों तथा चुनौतियों को निकटता से देखना।
- व्यावहारिक सेवकाई के अवसर।
- सेवकाई में पासबानों द्वारा निर्देशन।
- उत्साहवर्धक एवं सुधारात्मक टिप्पणियाँ प्राप्त करना।
- सम्मेलनों में भाग लेने के अवसर।
- भविष्य की सेवा से सम्बन्धित सम्मति प्राप्त करना।
- सम्भवतः कलीसिया द्वारा पुष्टि प्राप्त करके सेवकाई के लिए भेजा जाना।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

+91 86043 09392

आवासीय शिष्यता-कार्यक्रम

आवासीय शिष्यता- कार्यक्रम सत्य वचन चर्च की एक सेवा है जिसके द्वारा भविष्य में कलीसिया के स्वास्थ्य के लिए वर्तमान में जवान भाइयों में निवेश किया जाता है। इसका उद्देश्य है कि जवान भाई 3-4 वर्षों के लिए चर्च के साथ रहकर अपनी पढ़ाई के साथ-साथ वचन के ज्ञान और परिपक्वता में बढ़ें।

कौन भाग ले सकता है? यह कार्यक्रम जवान ख्रीष्टीय पुरुषों के लिए है जो बारहवीं की पढ़ाई कर चुके हैं, स्नातक की पढ़ाई करना चाहते हैं, तथा जिनका परिवार और कलीसिया उनके इस कार्यक्रम में भाग लेने के समर्थन में हैं।

लक्ष्य: आशा है कि इस कार्यक्रम के द्वारा भाई:

i. परमेश्वर के वचन के ज्ञान और ख्रीष्टीय परिपक्वता में बढ़ेंगे।
ii. ख्रीष्टीय अगुवाई तथा कलीसियाई सेवकाई के लिए उत्साहित होंगे।
iii. अपनी स्नातक की पढ़ाई पूरी करेंगे।
iv. व्यावहारिक प्रतिभाओं तथा योग्यताओं में बढ़ेंगे। (अग्रेंजी बोलना, कम्प्यूटर चलाना, गाड़ी चलाना)
v. व्यक्तित्व विकास तथा बौद्धिक विकास में उन्नति करेंगे।

अधिक जानकारी के लिए सम्पर्क करें

+91 8604309392/ +91 9696110134

पीड़ा का स्थान

ऐसा प्रतीत होता है कि दुःख प्रायः हमें अचम्भित कर देते हैं। एक दिन हम स्वस्थ, सुखी और खुश होते हैं। और अगले ही दिन हम पाते हैं कि हम अस्वस्थ या चोट से ग्रसित, संघर्षरत और परेशान हैं। हमारे जीवनों में जो पीड़ा आती है, वह हमारे स्वयं के या किसी प्रिय जन के दुःख उठाने के कारण हो सकती है। भले ही उसका स्रोत कोई भी हो, हमने नहीं सोचा था कि हमारे साथ ऐसा हो सकता है। और बहुधा, जटिल परिस्थितियों के कारण हम परमेश्वर की भलाई पर सन्देह करते हैं।

इस उत्कृष्ट पुस्तक में, डॉ. आर.सी. स्प्रोल कहते हैं कि हमें दुःख द्वारा अचम्भित नहीं होना चाहिए; इसके विपरीत इस जीवन में हमें पीड़ा और दुःख की अपेक्षा करनी चाहिए। कुछ लोगों को वास्तव में दुःख उठाने की “बुलाहट” दी जाती है, और हम सब को मृत्यु में परम दुःख का सामना करने के लिए बुलाया गया है। परमेश्वर अपने वचन में प्रतिज्ञा करता है कि हमारे जीवन में कठिन समय आएँगे, पर वह यह भी प्रतिज्ञा करता है कि वह हमारी भलाई और उसकी महिमा के लिए दुःखों को हम पर आने देता है, और कि वह कभी भी हमें उतना अधिक नहीं देता है कि हम उसकी सहायता के साथ उसे सह न पाएँ।

डॉ. स्प्रोल उनको, जो दुःख में से होकर जा रहे हैं और उनको जो दुःख सहने वालों की सेवा करते हैं, ठोस बाइबलीय परामर्श और सान्त्वना देते हैं, ऐसा परामर्श जो विश्वासियों की सहायता करे कि वे परीक्षा के समयों में एक ऐसे परमेश्वर पर विश्वास में स्थिर रहें जो प्रेमी और भला दोनों है।

डॉ. आर.सी. स्प्रोल लिग्निएर मिनिस्ट्रीज़ के संस्थापक, सेंट एंड्रयूज़ चैपल, सैनफोर्ड फ्लोरिडा के संस्थापक पास्टर थे एवं रिफॉर्मेशन बाइबल कॉलेज के प्रथम अध्यक्ष थे। वे सौ से अधिक पुस्तकों के लेखक थे जिनमें *सभी हैं ईश्वरविज्ञानी* भी सम्मिलित है।

मार्ग सत्य जीवन
ख्रीष्टीय विचारों का संग्रह
लिग्निएर लाइब्रेरी
ISBN: 9788196962739
9 788196 962739
धर्म / मसीही जीवन / मृत्यु, शोक, वियोग